नवीन संन्यासी

[सचित्र]

बाबू प्रभातकुमार मुखोपाध्याय बार-एट्-लॉ
की बँगला पुस्तक का अनुवाद।

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।



प्रथम संस्करण] १९२३

Published by
K Mittra,
at The Indian Press, Ltd,
Allahabad

Printed by
Bishweshwar Prasad,
at The Indian Press, Ltd

नवीन संन्यासी



पहला परिच्छेद

"बाबूजी, बाबूजी, जरा मुँह खोलिए, इस दवा को पी लीजिए।"

एक पचीस वर्ष का युवा पुरुष काँच के छोटे से गिलास में दवा लिये, मरणासन्न पिता की चारपाई के पास बैठ कर बड़ी अधीरता से यह बात कह रहा था।

"बाबूजी, सुनते नहीं ? एक बार आँख तो खोलिए।"

किन्तु बूढ़े को होश नहीं। मानों उसने कुछ सुना ही नहीं।

चैत का महीना है। दोपहर का समय होगा। खुली खिड़की से मन्द मन्द बयार घर के भीतर आ रही है। बूढ़े की चारपाई के समीप ही एक कुरसी के ऊपर चोगा-चपकन पहने हुए एक सुविज्ञ डाक्टर बैठे हैं। युवक उनकी ओर देख कर बोला—अब क्या किया जाय ?

डाक्टर—इनके दोनो होठों को धीरे धीरे हटा कर मुँह में दवा डाल दीजिए।

युवक—अच्छा, मैं इनका मुँह खोलता हूँ, आप अपने हाथ से दवा पिला दीजिए।

डाकूर बावू ने झट उठकर युवा के हाथ से गिलास ले लिया। युवक ने अपने दोनो हाथों से ज्योंही पिता का मुँह खोलने की चेष्टा की त्योंही वृद्ध ने आँखें खोलदीं। एक लम्बी साँस लेकर उसने कहा—अयँ—

युवक—यह औषध पी लीजिए।

वृद्ध चित पड़ा हुआ था। वह करवट बदल फिर एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर बेटे के मुँह की ओर देख कर बोला—औषध ! अब औषध का क्या काम है ? मेरी औषध अब तो गङ्गाजल है। थोड़ा सा गङ्गाजल मुँह मे डालदो। बड़ी प्यास लगी है।

युवक ने डाकूर बावू के मुँह की ओर देखा। उन्होने कहा—कोई हर्ज नहीं।

युवक तुरन्त उठकर गङ्गाजल लेने बाहर गया। बरामदे में उसकी रोती हुई स्त्री और पड़ोस की कुछ औरते मुँह उदास किये खड़ी थीं। युवक गङ्गाजल ले आया।

गङ्गाजल पीने से बूढे को कुछ होश हो आया। उसने पलक खोल सतृष्ण नयनो से ताक कर कहा—मोतीलाल ?

"उसको तार दिया है। आता ही होगा। उसके आने में अब देर नहीं है।"

वृद्ध ने टूटे स्वर मे कहा—देर नहीं है ? अब देर नहीं है ? बेटा—मालूम होता है, अब ज्यादा देर न होगी।

वृद्ध फिर धीरे धीरे बेहोश हो गया।

वृद्ध का नाम ब्रजनन्दन श्रीवास्तव है। ये एक छोटे से जमींदार हैं—सालाना आमदनी बीस बाईस हजार रुपये की होगी। जिस गाँव की इस घटना का वर्णन हो रहा है उसका नाम कमलपुर है। यह आजमगढ़ जिले में है। उक्त युवक, ब्रजनन्दन का ज्येष्ठ पुत्र है—नाम है गोपीकान्त। यह वृद्ध की पहली स्त्री से उत्पन्न है। पहली स्त्री की मृत्यु होने पर ब्रजनन्दन ने ढलती जवानी में फिर दूसरा ब्याह किया। यह स्त्री भी दो वर्ष के एक बालक को छोड़ अकाल में ही संसार से चल बसी। इसी के पुत्र का नाम मोतीलाल है। ब्रजनन्दन वैष्णव-सम्प्रदायी थे। उनकी इच्छा थी कि इस लड़के का नाम नन्दकिशोर किंवा लक्ष्मीनारायण या ऐसा ही कुछ भगवान् के नाम पर रक्खें—किन्तु उनकी दूसरी स्त्री ने घोर आपत्ति करके मोतीलाल ही नाम रख दिया। इसके पूर्व, इस वंश में, विष्णु के नाम के सिवा कभी किसी दूसरे नाम को जगह न मिली थी। किन्तु 'वृद्धस्य तरुणी भार्य्या' ने इस नियम को न माना। वृद्धावस्था की सन्तान जान कर मोतीलाल पर ब्रजनन्दन का स्नेह कुछ अधिक था। मोतीलाल की उम्र इस समय अठारह वर्ष की होगी। वह प्रयाग के कालेज में बा० ए० कक्षा में पढ़ रहा है।

भगवान् के नाम पर नामकरण न होने पर भी मोतीलाल खूब निष्ठावान् और स्वधर्मप्रेमी है। नित्यकर्म्म, पूजा-पाठ किये बिना वह कभी जल ग्रहण नहीं करता। इसी उम्र में उसने गोभी-

गाजर खाना तक छोड दिया है । पर गोपीकान्त अपने घर में मछली और बन्धु-बान्धवों के घर मास मजे में जाहिरा तौर से खाता है । जूता पहने ही जल पीता है और मुसलमान खान सामा के हाथ की बनाई चाय पीते भी लोगों ने उसे कई बार देखा है । कभी कभी बनारस या कलकत्ते जा कर साथियों से मिलकर दारू भी पीलेता है । इसी प्रकार की एक और अपकीर्ति की भी ख्याति है । एक और गुप्त विषय के सम्बन्ध में लोग जहाँ तहाँ कानाफूसी करते हैं । अभी हमने उसे छिपा रक्खा है—किन्तु ये सब बातें बहुत दिनों तक छिपी नहीं रहतीं । किसी समय नक़ारा बज ही जाता है ।

दिन के तीसरे पहर एक बैलगाडी आकर सदर फाटक पर खडी हो गई । गाडी से मलिन वेश धारण किये सूखे मुँह मोती लाल उतरा । भीतर प्रवेश करते ही गोपीकान्त ने आकर कहा—"भाई ! तुम आ गये ?" मोती ने उसके पैर छूकर सभयकण्ठ से पूछा—पिताजी कैसे हैं ?

गोपीकान्त—अभी तक तो हैं । परन्तु मालूम होता है रात नहीं कटेगी ।

मोती खडा होकर चुपचाप आँसू बहाने लगा ।

गोपीकान्त ने बडे प्यार से भाई के आँसू पोछ कर कहा—मालूम होता है, तुमने कुछ खाया पिया नहीं है ।

"नहीं ।"

"प्रयाग से कब चले ?"

"आठ बजे ।" ने कहा—

"कुछ जलपान कर लिया था न ?"

"जी हाँ—पूजा-पाठ करके कुछ खा लिया था ।"

इतने में वहाँ व्रजनन्दन की विधवा बहन—मोती की फूफू आकर खड़ी हुई। मोती के प्रणाम करने पर फूफू ने उसकी ठुड्डी हाथ से छूकर आशीर्वाद दिया और कहा—अहा, मेरे बेटे का बदन सूखकर आधा रह गया है। बेटा! हाथ मुँह धोओ, कपड़े बदल डालो। मैं रसोइया से रसोई बनाने को कह आती हूँ। तब तक कुछ जलपान करलो।

मोती—पहले पिताजी को देख आऊँ।

"बहुत ठीक समय पर आ गये। जो तुम आज न आते, कहीं कल आते, तो इन्हें देख पाते या नहीं, यह भगवान् जाने। अहा, भैया जब होश में आते हैं तभी पूछते हैं, 'मोती आया? मेरा मोती आया'?"—यह कह कर फूफी आँचल से आँखें ढाँपकर रोने लगी।

जूता उतार कर, पैरों की आहट बचाकर दोनों भाई पिता की रोग-शय्या के समीप गये। मोती ने देखा, पिता की वह सूरत-शकल अब नहीं है। उनका वह विशाल शरीर सूख कर खटिया में लग गया है। सारे शरीर की हड्डियाँ निकल आई हैं।

मोती ने शय्या के पास जाकर चैतन्यरहित पिता के दोनों पैरों पर अपना सिर रक्खा। दस वर्ष की एक बालिका

गाजर खाना ह आ ले, वृद्ध के सिरहाने बैठकर हवा कर रही थी। मछली और का एक बालक उनके पैर के तलुए को धीरे धीरे हाथ खाता रगड रहा था। मोती ने लडके से कहा—तुम उठो, मैं स इनके पैर दाबता हूँ।

कुछ देर में मोती की भौजाई उस कोठरी में आई। उसने मोतीलाल से कहा—चलो बाबू, तुम्हारे लिए रसोई बन गई।

मोती—ठहरो, मैं अभी नहीं खाऊँगा।

तब भावज, स्नेह-पूर्वक उसका हाथ पकड कर, कुछ जोर के साथ उसे लिवा ले गई।

भोजन आदि के अनन्तर मोती फिर पिता के पास आकर उनकी सेवा करने लगा।

रात के नौ बजे व्रजनन्दन को होश हुआ। उन्हें करवट बदलते और आँखे खोलते देखकर गोपीकान्त ने कहा—पिताजी, मोती आया है।

वृद्ध—मोती, मेरा प्यारा बेटा मोती कहाँ है?

"मैं यहाँ तो हूँ" कहकर मोती ने पिता का जीर्ण शीर्ण हाथ अपने दोनों हाथों के बीच में रख लिया।

वृद्ध—मेरा कण्ठ बहुत सूख गया है। मोती, थोडा गङ्गाजल तो दे।

मोती झटपट उठ कर पिता के मुँह मे गङ्गाजल देने लगा। जल पीने से वृद्ध को कुछ विशेष चैतन्य हो आया।

दो तीन बार दीर्घ निःश्वास त्याग कर उसने कहा—गोपी !

"हाँ पिता जी, मैं हाजिर हूँ।"

"नन्दलाल कहाँ है ?"

गोपीकान्त के छोटे लड़के का नाम नन्दलाल था। उम्र उसकी तीन वर्ष की होगी। नन्दलाल को गोद में लिये उसकी माता शय्या के समीप आकर खड़ी हो गई। गोपीकान्त ने कहा—यह नन्दलाल आगया। सोया हुआ है।

ब्रजनन्दन ने कहा—और बहू ?

मोती—वे सोये हुए नन्दलाल को गोदी में लिये सामने खड़ी हैं।

"शारदा कहाँ है ? उसका बेटा कहाँ है ?"

"भैया, मैं तो आपके पास ही बैठी हूँ। अपने भानजे विनोद के लिए क्या किये जाते हो ?"—कह कर बहन रोने लगी।

वृद्ध ने कहा—रोओ मत। सोच किस बात का है ? गोपी है, मोती है—वही तुम्हारे बेटे को सँभालेंगे।

कुछ देर चुप रह कर वृद्ध ने फिर गङ्गाजल माँगा।

जल पीकर कहा—तुम सभी मौजूद हो ?

गोपीकान्त—हाँ, पिता जी, हम सभी यहाँ मौजूद हैं।

तब वृद्ध धीरे धीरे एक एक बात अलग अलग उचारण करके कहने लगा—

भजो रे मन राधे सुन्दर श्याम ।
यही नाम सर्वस्व हमारे सुखद सदा अभिराम ।
पाप-विनाशी पुण्य-प्रकाशी सकल मोद के धाम ॥

इस प्रकार भगवान् का नाम सुनते सुनते गहरी रात में वृद्ध के देह-पिञ्जर से प्राण-पखेरू उड़ गया ।

भैया
”

दूसरा परिच्छेद

पूर्वोक्त घटना को पाँच वर्ष हो गये। इतने में मोती-लाल ने कालेज की पढाई समाप्त करके एम० ए०, एल-एल० बी० की उपाधि प्राप्त कर ली। भाई के अनुरोध से वकालत करने के लिए वह आजमगढ में एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक रहा भी—किन्तु मुवक्किलों के न जुटने और वह पेशा पसन्द न होने के कारण घर लौट आया है। शास्त्रचर्चा और पूजा पाठ में ही उसका अधिक समय कट जाता है।

इस बीच में गोपीकान्त ने भाई का विवाह कर देने की कई बार चेष्टा की। किन्तु मोती राजी ही न होता था। उसके दो कारण थे, प्रथम तो गृहस्थ धर्म में अनिच्छा दूसरे भाई से अलग होने की आशङ्का। मोती सोचता था कि मरते समय पिताजी आज्ञा दे गये हैं कि स्त्री की बात में पड कर भाई के साथ प्रेम-भङ्ग न करना। इसलिए उसने यही निश्चय कर रक्खा था कि ब्याह न करना ही अच्छा है। वह मन मे कहता था, अभी तो यही ख़याल है कि भाई के विरुद्ध स्त्री हजार कहती रहे, पर उस बात को मैं कभी मानूँगा ही नहीं, किन्तु कार्य के समय, स्त्री के प्रेमपाश में फँस कर या जवानी के गर्व न्ध होकर जो न करना चाहिए वही कर बैठूँगा। तब मे गति

'ऐसी ही बनी रहेगी, इसका क्या निश्चय है ? इन सब बखेड़ों के कारण उस मार्ग में न जाना ही अच्छा है ।

मोतीलाल विवाह से स्वयं विमुख है, किन्तु गाँव के लोग—विशेष कर अड़ोस पड़ोस की बूढ़ी स्त्रियाँ—कहा करती हैं, गोपीकान्त बाबू हृदय से नहीं चाहते कि उनके भाई का ब्याह हो। आखिर हैं तो सौतेले ही भाई । वे क्यों ऐसा चाहेंगे ? सगा भाई होता तो क्या ऐसा होने पाता ! उसका ब्याह कभी का हो गया होता । लड़के को जहाँ तक लिखना-पढ़ना था पास करना चाहिए था, सब कर चुका है । जैसा गुण है वैसा ही सुन्दर रूप है । पूरी जवानी पर आगया है । अहा ! ऐसे सोने के चाँद को कुँवारा देख कर किसका जी नहीं दुखेगा ? कौन ऐसी मौसी, फूफी, चाची या और कोई अपनी होगी जिसकी छाती नहीं फटेगी ? हाय ! यदि आज वह बूढ़ा बाबू (व्रजनन्दन) जीता रहता तो—इत्यादि ।

गाँव में कोई सकेत-लेखक न रहने पर भी उपर्युक्त सब बातें गोपीकान्त बाबू की स्त्री के कान तक पहुँच जाती थीं । इससे अधीर होकर वह अपने स्वामी को, देवर का झटपट ब्याह कर देने के लिए, दिक करने लगी । इस दफे गोपीकान्त इलाहाबाद में भाई के लिए एक वैवाहिक सम्बन्ध की बात स्थिर कर रहा है। लड़की का बाप बड़ा धनवान् है । उससे खूब नकद रुपया मिलने की आशा है। बड़े बड़े महाजनों के साथ उसका कारोबार है। बहुतेरे वकील बाबुओं से उसका सम्बन्ध है । विवाह

होजाने पर वह जमाई को प्रयाग ले जायगा श्रीरन्तु बडे भैया प्रैक्टिस करने की विशेष रूप से सुविधा करा दे सकेगा।"नें।"
कान्त चाहता भी न था कि भाई निकम्मे की भाँति घर पर बैठा रहे। इससे उसकी कुछ हानि भी है। भाई इलाहाबाद में जाकर वकालत करे, तभी वह सुखी होगा। किन्तु कन्यावाले की एक बडी कडी शर्त है। वर खूब सुन्दर होना चाहिए। इसके लिए जितना रुपया लगे, वे खर्च करने को तैयार हैं। आज ही वे लोग वर देखने आवेंगे। यदि उन्हें लडका पसन्द आगया तो जैसे हो सकेगा वैसे गोपीकान्त अपने भाई को व्याह करने के लिए राजी करेगा।

क्वाँर का महीना है। आकाश और धरती में सूर्य की विमल किरणें खेल रही हैं। अन्दर महल के बाग में, तालाब के किनारे, एक पेड के नीचे कुशासन पर मोतीलाल बैठा है और बढिया चश्मा लगाये योगवाशिष्ठ ग्रन्थ को मन लगा कर पढ रहा है। बगल में, कुशासन के ऊपर, काँच की नसदानी रक्खी है। उसकी पीठ पर सुनहले अक्षरों में लिखा है—हरिनाम सत्य। मोती जहाँ बैठा था उसके समीप ही तालाब के पानी में कितने ही कमल खिले थे। उन पर भ्रमर गूँज रहे थे। जल में हंस तैर रहे थे। किन्तु इन रमणीय दृश्यों पर मोतीलाल की तनिक भी दृष्टि न थी। वह अपने पढने ही में मग्न था।

पूर्व परिच्छेद में हम लोगों ने मोतीलाल को बालक के

ऐसी ॰था । अब इन पाँच वर्षों में वह पूर्ण रूप से युवा खेलेगा है । श्रोठ के ऊपरी भाग पर मूँछ की श्याम रेखा अपूर्व शाभा दे रही है । हजामत की हुई दाढी का अग्र भाग मानसिक दृढता का परिचय दे रहा है । दोनो आँखें धीरता और गम्भीरता से भरी हुई हैं । सकुचित रेखाओं से समावृत ललाट पर चिन्ता का चिह्न झलक रहा है ।

बहुत देर होगई । मोतीलाल के कान मे सहसा यह शब्द आ पडा—छोटे भैया ।

पुस्तक पर से नजर उठा कर मोतीलाल ने पीछे की ओर घूमकर देखा । एक बारह वर्ष का लडका कह रहा है—"छोटे भैया ।" लडके का नाम विनोदचन्द्र है । यह मोतीलाल का फुफेरा भाई है ।

"छोटे भैया, घर चलिए ।"

मोती ने कुछ खफा होकर पूछा—क्यों ?

"बडे भैया बुलाते हैं ।"

"जरा ठहर कर आऊँगा । अभी जाओ ।"

लडके ने कहा—नहीं, अभी चलिए । बैठक में न मालूम कौन दो आदमी आये हैं । बडे भैया ने मुझसे कहा है—जा, तू अपने 'छोटे भैया' को झट से बुला ला देर न हो ।

यह सुनकर मोतीलाल कुछ देर तक बालक के मुँह की ओर स्थिर दृष्टि से देखता रहा, फिर बोला—क्यों ! दो आदमी क्यो आये हैं ?

वे क्यों आये हैं—यह लडका जानता था। किन्तु बडे भैया ने मना कर दिया था, इसीसे उसने कहा—"क्या जानें।" किन्तु उसके कण्ठस्वर से भूठ बोलने की सी ध्वनि निकल पडी।

मोतीलाल ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—छि छि विनोद ! तू भूठ बोलता है ? छि छि ।

लडका चुपचाप खडा रहा। उसे चुप देखकर मोतीलाल न कहा—तूने पोथी मे नहीं पढ़ा है कि भूठ बोलना बडा दोष और भारी पाप है ? पिता का सत्य पालने के लिए रामचन्द्र राजकुमार होने पर भी वन को गये थे। क्यों, नहीं पढा है ? पूर्वकाल के हिन्दू सत्य के आगे प्राण का भी तुच्छ समभते थे। उन्होंने खुशी से जान देदी, पर भूठ न बोले। क्या तुमने यह कभी नहीं सुना ? तुम भी वही हिन्दू-सन्तान हो, इसे क्यों भूल गय ? भूठ बात बोलने की भीरुता और कायरपन ने तुम्हे आज कलङ्कित कर दिया। आह ! बडे दुख की बात है ! बडी लज्जा का विषय है विनोद, छि छि छि ।

इन वाक्य-बाण से व्यथित होकर लडका रो पडा। उसकी दोनों आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। मोतीलाल की तीव्र दृष्टि को सह न कर सकने पर वह दोनों हाथों से अपना मुँह ढककर सिसक सिसक कर रोने लगा।

"रो, जो पाप किया है उसे आँखो के पानी से धोकर फिर पवित्र हो। पाप की कालिमा कवल आँखो के जल से ही धोई जाती है और वह किसी भी तरह नहीं धुलती।" यह

कहकर मोतीलाल ने फिर योगवाशिष्ठ में चित्त लगाया। लड़का सकोच से सिर झुकाकर चला गया।

कुछ काल बीता। दूर से पायजेब की झनझनाहट सुनाई दी। मोतीलाल ने सिर उठाकर उस ओर देखा कि भतीजी प्रभावती आ रही है। देखकर फिर उसने पढने में मन लगा लिया।

वाक्यहीन पुतली की भाँति नीची नजर किये प्रभा पास में आ खड़ी हुई।

कुछ देर बाद पुस्तक पर से नजर उठाकर मोती बोला—प्रभा, क्या है ?

प्रभा—काका जरा घर चलिए, बाबूजी बुलाते हैं।

"क्यो बुलाते हैं ?"

"दो जने आये हैं।"

"वे कौन हैं ?"

"यह तो मैं नहीं जानती—वे बैठक में बैठे हैं।"

मोतीलाल ने मन ही मन कहा—"हूँ।" फिर बालिका नैतिक परीक्षा लेने की इच्छा से उसने पूछा—वे दोनो कहां आये हैं ?

"प्रयागराज से।"

"क्यों ?"

इस पर बालिका जरा भी दुविधा मे नहीं पड़ी।

साफ साफ कह दिया—"आपको देखने के लिए ।" विनोदचन्द्र के तिरस्कार की बात उस से छिपी नहीं थी ।

मोतीलाल ने भौं सिकोड कर कहा—क्यों, क्या देखेंगे ? मैं बाघ हूँ या भालू ?

प्रभा ने मुस्कुरा कर कहा—आपके व्याह की बात तय करने आये हैं ।

प्रभा के मुँह पर यह हँसी देखकर मोती का जी जल उठा । बडों के आगे प्रभा की यह ढिठाई, यह चपलता, यह ओछापन एक बारगी असह्य है। इसीसे वह लाल आँखे करके कठोर स्वर से बोला—प्रभा ।

काका का रोष भरा भाव देख प्रभा ने हतबुद्धि होकर सभय दृष्टि से उसकी ओर देखा ।

"प्रभा ! तू हँसी क्यों ?"

बालिका कुछ न बोली । किन्तु उसकी दोनों आँखों में उदासी छा गई ।

मोतीलाल गम्भीर भाव से यो कहने लगा—तेरे चाचा के व्याह की बात क्या तेरे लिए हँसी-मजाक की बात है ? क्या तू अब भी नहीं जानती कि बडो के आगे कैसा व्यवहार करना चाहिए ? क्या इस सम्बन्ध मे तेरी माँ तुझे कभी कोई शिक्षा नहीं देतीं ? कभी कभी तुझको रामायण, महाभारत पढते देखता हूँ । क्या तूने रामायण महाभारत से यही उपदेश पाया है ? धिक्कार है तेरी बुद्धि को !

प्रभा के विशाल नेत्रों में आँसू भर आये। वह काँपते हुए धीमे स्वर में बोली—मैं तो आपके ब्याह की बात से नहीं हँसी।

"तो किस बात से हँसी?"

"आपने कहा—'मैं बाघ हूँ या भालू'—यह सुनकर मेरे मन मे आया कि बाघ भालू क्या कभी आँख में चश्मा लगा कर पोथी पढता है? इसीसे मुझे हँसी आगई।" यह कहते कहते प्रभा की आँखों से आँसू टपकने लगे।

बालिका की अवस्था देखकर मोतीलाल का हृदय कुछ द्रवित हुआ। क्रोध को रोक कर उसने फिर योगवाशिष्ठ के पृष्ठ पर दृष्टि डाली।

किन्तु प्रभा गई नहीं, खडी रही। आँचल से आँखें और मुँह पोंछ कर वह चुपचाप चाचा से उत्तर पाने की अपेक्षा करने लगी। उसे वहाँ खडी देखकर मोतीलाल ने कहा—"जाओ न, खडी क्यों हो रही?" इस दफे उसका स्वर पहले की भाँति कठोर न था।

प्रभा—चलिए काका।

"मुझे पढने क्यों नहीं देती हो?"

"फिर पढियेगा, अभी तो चलना ही होगा।"

"मैं बार बार सबसे कह चुका हूँ कि मैं ब्याह नहीं करूँगा तो फिर क्यों मुझे देखने आये हैं?" यह कह कर मोती पुस्तक में मन लगाने की वृथा चेष्टा करने लगा।

प्रभा—काका, मैं यह नहीं जानती। आपको जो कहना

हो वह अभी पिताजी से चलकर कह आइए। चलिए, उठिए।

'जाकर क्या करूँगा? फायदा ही क्या होगा?"

"काका एक बार चलिए।"

तब मोती ने चश्मा खोल कर पाकेट में रख लिया। नसदान से थोड़ा सा नास ले, पुस्तक बगल में दबा, हाथ में आसन लेकर वह उदास मुँह से प्रभा के साथ साथ घर की ओर चला।

तीसरा परिच्छेद

बाबूजी की बैठक आज खूब गुलजार है। इलाहाबाद से जो दो बाबू वर देखने को आये हैं उनमें से एक तो कन्या का छोटा चाचा है—नाम है वीरेश्वरसहाय, और जो साथ में आया है वह इनका कोई सम्बन्धी नहीं, मित्र है। इनका नाम श्यामानन्द है। ये इलाहाबाद के किसी गैर-सरकारी स्कूल में अध्यापक का काम करते हैं। पूर्वकाल में नवयुवक वर को देखने के बहाने मोटे हिसाब से उसकी परीक्षा लेने की चाल थी। इस वर के सम्बन्ध में यद्यपि कन्यावाले जानते हैं कि लड़के ने एम० ए०, एल्-एल० बी० पास किया है और यह बात सरकारी गैजेट में भी छप चुकी है इसलिए परीक्षा लेने की कोई आवश्यकता नहीं, इसके सिवा ऐसे सुयोग्य वर का परीक्षक मिलना भी कठिन है, तथापि कन्या के पिता ने साथ में एक विद्वान् व्यक्ति को भेजना अच्छा समझा है।

वीरेश्वर बाबू और पण्डित श्यामानन्दजी बैठक में बैठे हैं. गोपीकान्त उनके पास बैठ कर बातें कर रहे हैं। मुहल्ले के दो एक रईस और बन्धुवर्ग भी आ जुटे हैं। हुक्के के धुवें से सारा कमरा आमोदित हो रहा है। हुक्के की गुड़गुड़ाहट के साथ साथ तरह तरह की गप्पें उड़ रही हैं। सब के मुँह से गप के गोले छूट रहे हैं। केवल अध्यापक महाशय चुपचाप

बैठे हैं। वे बीच बीच में सुँघनी सूँघ लेते हैं, और दूसरों की विनोदवार्ता सुन कर मीठी हँसी से मनको अपने हृदय की सरसता का परिचय दे रहे हैं।

समय हो गया, पर अब भी मोतीलाल नहीं आया। यह देख गोपीकान्त स्वयं उठ कर अन्दर गया। आँगन में प्रवेश करते ही देखा आगे आगे उसकी कन्या प्रभावती, पीछे पीछे बगल में पोथी दबाये और हाथ में कुशासन लिये मोतीलाल आ रहा है। भाई को देखते ही गोपीकान्त ने कहा—"अब तक कहाँ थे? एक बार कमरे में चलो। मैं कब से तुम्हें बुला रहा हूँ, आदमी पर आदमी भेज रहा हूँ। इसका तुम्हें ज़रा भी ख्याल नहीं।"

मोतीलाल ने जब से सुना है कि उसको देखने के लिए इलाहाबाद से लोग आरहे हैं तब से उसका जी जल रहा था। मन के क्रोध को यथासम्भव छिपा कर वह विनीत भाव से बोला—भाई जी, बैठक में जाने का ऐसा क्या विशेष प्रयोजन है?

"हाँ, प्रयोजन है। इलाहाबाद से दो सज्जन आये हैं, उनसे वार्तालाप करना होगा।"

"क्या वे मेरे व्याह की बात करने आये हैं?"

कुछ देर चुप रह कर गोपीकान्त ने कहा—हाँ।

"मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि मैं व्याह नहीं करूँगा, तो क्यों उनको—"

तीसरा परिच्छेद

बाबूजी की बैठक आज ख़ूब गुलज़ार है। इलाहाबाद से जो दो बाबू वर देखने को आये हैं उनमें से एक तो कन्या का छोटा चाचा है—नाम है वीरेश्वरसहाय; और जो साथ में आया है वह उनका कोई सम्बन्धी नहीं मित्र हैं। इनका नाम श्यामानन्द है। ये इलाहाबाद के किसी गैर-सरकारी स्कूल में अध्यापक का काम करते हैं। पूर्वकाल में नवयुवक वर को देखने के बहाने मोटे हिसाब से उसकी परीक्षा लेने की चाल थी। इस वर के सम्बन्ध में यद्यपि कन्यावाले जानते हैं कि लड़के ने एम० ए०, एल-एल० बी० पास किया है और यह बात सरकारी गैज़ेट में भी छप चुकी है, इसलिए परीक्षा लेने की कोई आवश्यकता नहीं; इसके सिवा ऐसे सुयोग्य वर का परीक्षक मिलना भी कठिन है तथापि कन्या के पिता ने साथ में एक विद्वान व्यक्ति को भेजना अच्छा समझा है।

वीरेश्वर बाबू और पण्डित श्यामानन्दजी बैठक में बैठे हैं। गोपीकान्त उनके पास बैठ कर बातें कर रहे हैं। मुहल्ले के दो एक रईस और बन्धुवर्ग भी आ जुटे हैं। हुक्के के धुएं से सारा कमरा आमोदित हो रहा है। हुक्के की गुड़गुड़ाहट के साथ साथ तरह तरह की गप्पें उड़ रही हैं। सब के मुँह से गप के गोले छूट रहे हैं। केवल अध्यापक महाशय चुपचाप

ठे हैं। वे बीच बीच में सुँघनी सूँघ लेते हैं, और दूसरों की विनोदवार्ता सुन कर मीठी हँसी से मनके अपने हृदय की सरसता का परिचय दे रहे हैं।

समय हो गया, पर अब भी मोतीलाल नहीं आया। यह देख गोपीकान्त स्वयं उठ कर अन्दर गया। आँगन में प्रवेश करते ही देखा आगे आगे उसकी कन्या प्रभावती, पीछे पीछे बगल में पोथी दबाये और हाथ में कुशासन लिये मोतीलाल आ रहा है। भाई को देखते ही गोपीकान्त ने कहा—"अब तक कहाँ थे? एक बार कमरे में चलो। मैं कब से तुम्हें बुला रहा हूँ, आदमी पर आदमी भेज रहा हूँ। इसका तुम्हें जरा भी खयाल नहीं।"

मोतीलाल ने जब से सुना है कि उनको देखने के लिए इलाहाबाद से लोग आरहे हैं तब से उसका जी जल रहा था। मन के क्रोध को यथासम्भव छिपा कर वह विनीत भाव से बोला—भाई जी, बैठक में जाने का ऐसा क्या विशेष प्रयोजन है?

"हाँ, प्रयोजन है। इलाहाबाद से दो सज्जन आये हैं, उनसे वार्तालाप करना होगा।"

"क्या वे मेरे ब्याह की बात करने आये हैं?"

कुछ देर चुप रह कर गोपीकान्त ने कहा—हाँ।

"मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि मैं ब्याह नहीं करूँगा, तो क्यों मुझको—"

पर और दोनो हाथों की उँगलियों में चार पाँच रत्न-जटित अँगूठियो पर लक्ष्य किया। फिर हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया और कुछ दूर पर जा बैठा ।

उक्त बाबूजी ने मोतीलाल के मुँह की ओर देखकर कहा—आपका नाम क्या है ?

मोती ने अपने चश्मे के भीतर से प्रश्नकर्ता के ऊपर तीव्र दृष्टिरूपी दो अग्निबाण फेंक कर कहा—मेरा नाम मोतीलाल श्रीवास्तव । मेरे पिता का नाम महामहिम ईश्वर-सम परमपूज्य श्रीयुत व्रजनन्दनजी था। बीस पुरुषों तक के नाम मेरे कण्ठस्थ हैं। और जो कुछ पूछना हो पूछिए, किन्तु मैं ब्याह नहीं करूँगा ।

इस अनभिलषित उत्तर से कमरे भर के सभी लोग सन्नाटे में आ गये। जो हुक्का पी रहे थे उनके हुक्के की गुड़-गुड़ाहट बन्द हो गई। गोपीकान्त ने लज्जा से सिर झुका लिया।

बाबू महाशय सभा की निस्तब्धता भङ्ग करके बोले—ओफ, मैं यह नहीं जानता था।

मोतीलाल उन्हें नमस्कार करके खड़ाऊँ चटकाता हुआ घर से बाहर हो गया।

जिनके हाथ में हुक्का था उन्हों ने फिर धीरे धीरे तम्बाकू पीना आरम्भ किया। वीरेश्वरसहाय ने कहा—इस तरह बुलाकर हम लोगों का अपमान करना क्या अच्छा है ?

गोपीकान्त ने कहा—मैं क्या कहूँ, मैं तो कुछ कहने लायक

भी न रहा। मैंने तो अच्छा सोच कर ही इस काम में हाथ डाला था। आप बड़े लोग हैं। सोचा था, यह विवाह होने से लड़के के हक में अच्छा होगा। किन्तु देखता हूँ, समय ऐसा आगया है कि अपने भाई का उपकार करने की चेष्टा करना भी भारी मूर्खता है।

एक पड़ोसी रईस ने कहा—बहुत दिनों से सुनता आता हूँ "विद्या ददाति विनयम।" इतना लिख पढ़कर मोतीलाल ऐसा उद्धत हो गया, यह बड़े दुःख की बात है। हम लोगों ने जो बहुत नहीं लिखा पढ़ा, यह एक प्रकार से अच्छा ही किया।

अध्यापक ने कहा—असल बात नहीं जानते! आज कल स्कूल-कालेजों में विद्या तो खूब पढ़ाई जाती है, किन्तु उनके साथ नीति की शिक्षा कुछ भी नहीं दी जाती। यह उसीका फल है।

वीरेश्वर-महाय बोले—अच्छा तो अब हमको जाने की आज्ञा दीजिए।

गोपीकान्त ने कहा—देर बहुत हो गई। स्नान भोजन करके जाते तो अच्छा होता।

'क्षमा कीजिए, अब यहाँ घड़ी भर भी ठहरने को जी नहीं चाहता। बड़ी ही लज्जा मालूम होती है। हम आपको कुछ दोष नहीं देते—सब हमारे भाग्य का दोष है। स्टेशन के समीप हमारे एक मित्र हैं, वहीं जाकर स्नान भोजन करेंगे। अरे—कोचवान कहाँ गया?"

गोपीकान्त के भी मन की अवस्था ऐसी न थी कि इन आगत व्यक्तियो को जिद कर के रोक ले । उसके मन में यही होता था, एक बार मोती से भेट हो तो मैं उसे खूब फटकारूँ । क्रोध मे उसका कण्ठ रुँधा जाता था । साँस जल्दी जल्दी चल रही थी ।

गाडी जुतने पर दोनो बाबू रवाना हुए । पडोसी लोग भी इस घटना की बातें करने के दु सह आवेग को हृदय मे रोक कर धीरे धीर पैर उठाते हुए अपने अपने घर की ओर गये ।

गोपीकान्त भूखे बाघ की भाँति भाई की खोज मे चला ।



चौथा परिच्छेद

मोतीलाल महल के भीतर प्रवेश कर एकबारगी दो-मंजिले पर अपने सोने की कोठरी में चला गया। उसकी फूफी, भौजाई और प्रभावती आदि ने उत्सुक दृष्टि से उनकी ओर देखा। भौजाई ने दिल्लगी के तौर पर कुछ पूछना चाहा था, किन्तु मोती बाबू के मुँह और आँखों का भाव देख कर वह चुप हो रही।

कुछ ही देर बाद गोपीकान्त भीतर आया। वह फूफी को देख कर बोला—मोती कहाँ गया?

"ऊपर गया है। क्यों, क्या हुआ? उन लोगों ने मोती को पसन्द कर लिया?"

"यह पीछे कहूँगा" कह कर गोपीकान्त कोठे पर गया। इधर-उधर खोज-ढूँढ कर अन्त में मोती के शयन गृह में प्रवेश करके देखा, खुली खिड़की के पास खड़ा होकर वह अन्य-मनस्क भाव से आकाश की ओर देख रहा है। खिड़की के नीचे बाग है—बाग के बीच में पेड़ों से घिरा हुआ एक तालाब है।

गोपीकान्त ने कमरे में प्रवेश करके द्वार बन्द कर दिया। भाई के पास खड़े होकर उसने खिड़की की राह से तालाब की ओर झाँक कर देखा। घर की रसोई बनाने वाली पानी में उतर कर स्नान कर रही है और सूने में सकोच-रहित हो, अपने

शरीर को मल मल कर धो रही है। यह पाचिका एक ब्राह्मण की कन्या अनाथा, नवयौवना विधवा है। गोपीकान्त ने एक बार तालाब की ओर और एक बार भाई की ओर सन्दिग्ध भाव से देखा। इसके बाद रूखे स्वर से कहा—मोती, तुम्हारा मतलब क्या है ?

भाई की ओर एक बार देख कर, बिना कुछ उत्तर दिये, मोती चुपचाप खड़ा रहा।

ज्येष्ठ भाई ने फिर पूछा—तुम्हारा अभिप्राय क्या है, कहते क्यो नहीं ?

मोती ने स्थिर भाव से कहा—मैं व्याह नहीं करूँगा—यह तो बहुत दिन पूर्व ही आप को सूचित कर चुका हूँ।

"माना कि व्याह न करोगे, किन्तु घर पर आये हुए सज्जनों का अपमान तुमने क्यो किया ? वह अपमान उनका नहीं, मेरा हुआ। मुझी को तुमने अपमानित किया है।"

मोती चुप हो रहा। गोपीकान्त क्रुद्ध होकर बोला—जवाब क्यो नहीं देते ?

मोती ने कहा—आपको अपमानित करना मेरा उद्देश्य नहीं था।

"यह उद्देश्य न था तो तुम्हारा क्या उद्देश्य था ? क्या तुम उनका अपमान करना चाहते थे ? जो सज्जन आदरपूर्वक घर पर बुलाये गये थे उनका उद्धत भाव से तिरस्कार करना ही तुम्हारा उद्देश्य था ? इतने दिनो से तुमने यही सीखा पढा है ?

यही तुम्हारे विद्या पढ़न का फल है ? यही तुम्हारी शिष्टता का आदर्श है ? छि छि । धिक्कार है तुम्हारी समझ को।"

मन के क्रोध को प्राणपण से दबा कर मोती ने शान्त भाव से कहा—उन लोगों ने क्या हमारा अपमान नहीं किया ?

गोपी बाबू ने मुँह फुला कर कहा—उन्होंने हमारा क्या अपमान किया ? हमारे सदृश सामान्य अवस्थावाले आदमी के घर में लड़की देने का जो प्रस्ताव किया था इससे हमारा सम्मान हुआ या अपमान ?

मोती ने लम्बी साँस लेकर कहा—कहिए, आपको कैसे समझाऊँ ?

'मुझे कैसे समझाओगे ? खोलकर सब बात कहने ही से मैं समझ सकता हूँ। हिन्दी मेरी मातृभाषा है—यदि हिन्दी में कहोगे तो कुछ समझ भी सकूँगा। क्या तुम मुझे ऐसा मूर्ख, ऐसा दिहाती, ऐसा निर्बोध समझते हो कि मैं एक सीधी सी बात भी नहीं समझ सकता ? तुमने कालिज में पढ कर बहुत कुछ पास किया है—मैंने सेकन्ड क्लास ही तक पढा है। किन्तु यह तो शेक्सपियर नहीं, मिल्टन नहीं, वेदान्त भी नहीं, और धर्मशास्त्र भी नहीं है, फिर क्यों नहीं समझ सकूँगा ? एक बार कुछ कह कर देखो भी तो, मैं समझता हूँ या नहीं। इसमें क्या तुम्हारा गौरव घट जायगा या तुम्हारी विद्या का ह्रास होगा ?"

इतने में पाचिका (रसोई बनाने वाली) स्नान करके,

जल से भरा पीतल का घडा बगल मे लिये, हिलती डोलती हुई पेडों की छाँह से होकर आरही थी। समीपवर्ती होने पर, एक बार झरोखे की ओर दृष्टि करके, उसने अपने खुले हुए सिर के ऊपर कपडा डाला। यह गोपीकान्त बाबू की दृष्टि से छिपा न रहा।

मोती ने कहा—आप कहते हैं, हमारे सदृश अवस्था वाले के घर में उन्होंने लडकी देना चाहा था। देना क्यों चाहा था? वे आये थे मुझको देखने और पसन्द करने के लिए। जैसे मैं बाजार की कोई बिकाऊ चीज या घोडा होऊँ जो मेले में बिकने के लिए आया होऊँ! पसन्द आवेगा तो पूरा दाम देकर खरीद लेगा। कहिए, यह क्या अपमान नहीं है?

गोपीकान्त कुछ नरम होकर बोला—तुम चाहे जो कहो, परन्तु इसमें अपमान की कोई बात नहीं है। विवाह स्थिर होने के पहले लडकेवाले लडकी को और लडकीवाले लडके को देखते हैं—यह प्रथा तो बहुत दिनों से चली आरही है। पसन्द होने या न होने ही के लिए तो घरदेखी वरदेखी होती है। जब दोनो को पसन्द हो जाता है तभी ब्याह की बात पक्की होती है। इसमे अपमान क्या है?

मोती कुछ न बोला। झरोखे के पास ही बाहर एक झखाड आम का पेड है। उस पर बैठ कर बहुतेरे पक्षी किलोलें कर रहे हैं। एक बन्दर उस पेड पर कूद कर, डाल पकड कर झूलने लगा। सारे पक्षी उड कर भाग गये। कुछ देर चुप रह

कर भाई ने कहा—तुम विवाह नहीं करोगे, क्या यही तुम्हारी प्रतिज्ञा है ?

"जी हाँ ।"

"क्यों नहीं करोगे, कुछ सुनूँ भी तो ?"

"इच्छा नहीं ।"

"यह तो तुम्हारी विचित्र इच्छा है"—कहकर गोपीकान्त चारपाई पर बैठ गया और कहने लगा—"तुम्हारी यह इच्छा तो संसार से निराली है । जो संसारी मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहना चाहेगा उसके लिए विवाह करना ही धर्म है । क्या तुम नहीं जानते कि हिन्दू के लिए विवाह एक संस्कार होता है ? इधर तुम पूरे धार्म्मिक भी बनते हो ।"

मालूम नहीं बेचारा मोती आज किसका मुँह देखकर उठा है, सवेरे से ही खटपट होना आरम्भ हुआ है । एक भी बात उसके लिए प्रीतिकारक न हुई । धैर्य धारण करके चलना उसके लिए कठिन हो उठा । तथापि जहाँ तक उससे होसका, वह अपने मानसिक वेग को रोककर बोला—संसारी लोगों को विवाह अवश्य ही करना चाहिए—यह मेरी धारणा नहीं है ।

गोपीकान्त ने जरा स्वर बिगाड कर कहा—अच्छा, मान लिया कि तुम विवाह नहीं करोगे, किन्तु विवाह न करके तुम अपने चरित्र को शुद्ध तो रख सकोगे न ?

मोतीलाल ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया । यह प्रश्न

मोती ने गम्भीरतापूर्वक कहा—अभी कुछ स्थिर नहीं किया है। यदि आप सहज ही अच्छे मार्ग पर नहीं आवेंगे तो मुझे कुछ कठोर उपाय का अवलम्बन करना होगा।

युवक के चेहरे पर दृढ प्रतिज्ञा का भाव देखकर गोपीकान्त का मुँह एक अनिश्चित शोच मे विवर्ण होगया। फिर समीपवर्ती पलँग पर बैठ कर बाँये हाथ से अपनी दोनो आँखो को ढक कर, सताये हुए साधु की भाँति, कहने लगा—

"यह होगा ही। क्यों नहीं होगा? कलिकाल है न। इस समय सब उलटा ही तो होता है। पूर्वकाल में छोटा भाई बड़ भाई को पिता और गुरु के तुल्य समझ कर उसकी भक्ति करता था। अब छोटा भाई बड़े को धर्मोपदेश देता है, उसे धार्मिक बनाने की चेष्टा करता है, तथा अनेक प्रकार से उसे शुद्ध करता है। यह न हो तो फिर कलिकाल क्या कहलावेगा। पहले गुरु-निन्दा करना महापाप समझा जाता था। गुरु की निन्दा करने से लोगों की जीभ कट कर गिर जाती थी। अब छोटे बड़े का विचार ही उठ गया। सभी अपने आप प्रधान होगये। मैंने भूल की जो तुमसे कुछ कहा। लो अब जाता हूँ। तुम्हारा समय व्यर्थ नष्ट न करूँगा। पापी के संसर्ग मे रहने से तुम्हें पाप लग जायगा।" यह कह कर गोपीकान्त पलँग से उतर, किवाड खोल कर, चलता हुआ। द्वार की बाईं ओर नीचे उतरने की सीढी थी। देखा, उसकी स्त्री उसी सीढी से झट झट पैर उठाती हुई नीचे उतर रही है।

बाहर कमरे में जाकर देखा कि एक अधेड़ अपरिचित व्यक्ति मौजूद है। नई धोती, नया अँगरखा, नई चादर और नया जूता पहने है। बगल में नया छाता, एक हाथ में बैग और दूसरे हाथ में हुक्का लिये है। उसके सिर के अग्रभाग के बाल उड़ गये हैं। मूँछ-दाढ़ी के बाल वैसे घने नहीं पर कोई कोई पके हैं। रङ्ग काला है। गोपी बाबू को देखते ही उसने धरती में सिर टेक कर प्रणाम किया।

गोपी बाबू—तुम कौन हो?

आगत व्यक्ति ने उत्तर दिया—हुजूर! बादेदार का नाम रौनकलाल है।

"घर कहाँ है?"

"गाजीपुर जिले में।"

"किस मतलब से आये हो?"

दोनों हाथ जोड़ कर, दीनता भरे स्वर से उस व्यक्ति ने कहा—हुजूर से परवरिश पाने के मतलब से आया हूँ।

"कौन काम कर सकते हो?"

"जमीदारी सरिश्ते का सभी काम कर सकता हूँ।"

गोपी बाबू की जमीदारी में एक नौकर की जगह खाली थी। उसने कुछ सोच कर कहा—"अच्छा, अभी कचहरी में जाकर ठहरो और स्नान भोजन करो। फिर इस विषय में जो कहना होगा तुमसे कहूँगा।" यह कह कर, एक नौकर को साथ दे, आगत व्यक्ति को कचहरीवाले घर में भेज दिया।



नाहर कमरे में जाकर देखा कि एक अधेड़ अपरिचित व्यक्ति मौजूद है। —पृ० ३५

लेकर, प्रत्येक को उसकी पोशाक लौटा दो। जल में आने के समय ये इन कपड़ों को पहने आये थे। सभी को अपने अपने घर तक का तीसरी श्रेणी का, रेल-भाड़ा और खुराकी दी गई। फाटक खोल दिया गया और वे सब कैदखाने से बाहर निकले।

इनमें एक आदमी का नाम रौनकलाल था। उसकी उम्र पैंतालीस वर्ष की होगी। पूस महीने में इसको जेल हुआ था—इसीसे इस भादों मास की गरमी में भी इसके गले में ऊनी गुलूबन्द, देह में सनात का कोट और उसके ऊपर एक काले रङ्ग की मर्ज की चादर थी।

बाहर आकर रौनक चारों ओर साकाङ्क्ष दृष्टि से देखने लगा। उसे आशा थी कि शायद कोई आत्मीय उसे लेने के लिए आया होगा। कितनों ही के आये भी थे, किन्तु उन आगत व्यक्तियों में रौनक ने अपना एक भी आत्मीय नहीं देखा। तब उसने एक लम्बी साँस लेकर फाटक के ऊपर बने हुए सरकारी मकान पर दृष्टि डाली। जेलर उसी में रहता था। उन दिनों जेल के ऊँचे दर्जे के कर्म्मचारियों को दो एक कैदी, घर का काम-धन्धा करने के लिए, दिये जाते थे। छः सात महीने से जेलर के घर पर रौनक बर्तन माँजने और चौका आदि देने के काम में नियुक्त था। और कैदियों को पत्थर तोड़ना, चक्की चलाना, और बाग की जमीन को जोतना कोड़ना आदि अनेक परिश्रम-साध्य काम करने पड़ते थे, किन्तु रौनकलाल दो-चार बर्तन मल कर

पाँचवाँ परिच्छेद

यहाँ कुछ दिन पूर्व की कई एक घटनाओं का उल्लेख करना आवश्यक है।

भोर का समय है। इलाहाबाद के बड़े क़ैदख़ाने के भीतर, फाटक के पास पन्द्रह कैदी इन्तज़ारी में खड़े हैं। वे आपस में हँसी-दिल्लगी कर रहे हैं। उन लोगों का मन खूब प्रसन्न है। क़ैदख़ाने से आज उन सबों के छुटकारा पाने का दिन है। जेलर के आते ही ये लोग छुट्टी पा जायँगे।

सात बज गये। जेलर साहब आ पहुँचे। द्वाररक्षक, पहरा देने वाला सिपाही सहमा ठिठक कर खड़ा हो गया। कन्धे से बन्दूक उतार कर उसने झुक कर फौजी कायदे से उन्हें सलाम किया। फाटक-जमादार झट पट फाटक का ताला खोल कर जेलर को भीतर ले आया।

जेलर के भीतर आने पर मातहत कर्मचारी लोग काग़ज़-पत्र हाथ में लेकर उनके पास आये।

आज जिन कैदियों के कैद से छूटने का दिन है उनके नाम की लिस्ट हाथ में लेकर जेलर ने, उपस्थित प्रत्येक कैदी के गले से लटकती हुई काठ की चकती पर खुदे हुए नम्बर और तारीख को बड़ी सावधानी से मिला कर देखा। फिर बगल वाली एक कोठरी में उन सब को ले जाकर, अँगूठे की छाप

लेकर, प्रत्येक को उसकी पोशाक लौटा दी। जेल में आने के समय वे इन कपड़ों को पहने आये थे। सभी को अपने अपने घर तक का, तीसरी श्रेणी का, रेल-भाड़ा और खुराकी दी गई। फाटक खोल दिया गया और वे सब कैदखाने से बाहर निकले।

इनमें एक आदमी का नाम रौनकलाल था। उसकी उम्र पैंतालीस वर्ष की होगी। पूस महीने में इसको जेल हुआ था—इसीसे इस भादों मास की गरमी में भी इसके गले में ऊनी गुलूबन्द, देह में बनात का कोट, और उसके ऊपर एक काले रङ्ग की मर्ज की चादर थी।

बाहर आकर रौनक चारों ओर साकाङ्क्ष दृष्टि से देखने लगा। उसे आशा थी कि शायद कोई आत्मीय उसे लेने के लिए आया होगा। कितनों ही के आये भी थे, किन्तु उन आगत व्यक्तियों में रौनक ने अपना एक भी आत्मीय नहीं देखा। तब उसने एक लम्बी साँस लेकर फाटक के ऊपर बने हुए सरकारी मकान पर दृष्टि डाली। जेलर उसी में रहता था। उन दिनों जेल के ऊँचे दर्जे के कर्म्मचारियों को दो एक कैदी, घर का काम-धन्धा करने के लिए, दिये जाते थे। छ सात महीने से जेलर के घर पर रौनक बर्तन माँजने और चौका आदि देने के काम में नियुक्त था। और कैदियों को पत्थर तोड़ना, चक्की चलाना, और बाग की जमीन को जोतना कोड़ना आदि अनेक परिश्रम-साध्य काम करने पड़ते थे, किन्तु रौनकलाल दो-चार बर्तन मल कर

ही छुट्टी पा जाता था। इसके सिवा महीने में उसे कुछ मिल भी जाता था। कभी कभी कुछ प्रसाद भी पाता था। नौकरों से मेल करके उसने एक हुक्का मँगा रक्खा था। काम करते समय अवसर पा कर वह बड़ी गुप्त रीति से तम्बाकू पी लेता था। जेल के कैदियों को यह सब सुयोग मिलना बहुत दुर्लभ है। इसलिए एक बार ऊपर जाकर उसने मालकिन (जेलर की स्त्री) और अन्यान्य लोगों से भेट कर लेना चाहा।

रौनक बाहर की सीढ़ी से ऊपर गया। रसोईघर के पास खड़ा होकर बोला—मालकिन।

"क्या है रौनक—आज तुम्हारी रिहाई हुई?" कहती हुई जेलर की स्त्री घर से बाहर आई।

"हाँ मालकिन—आपके आशीर्वाद से।"

"अच्छा हुआ। आज ही घर जाओगे?"

"जी हाँ।"

"तुम्हारा घर कहाँ है?"

"गाजीपुर जिले में।"

"घर पर तुम्हारे कौन कौन हैं?"

"स्त्री और दो लड़कियाँ थीं। अब इस छः वर्ष के भीतर कौन है और कौन नहीं, यह भगवान् जानें।"

जेलर की स्त्री ने कहा—हैं, सब हैं। घर जाने पर तू सबको देखेगा। तुझे देख कर उन्हें अत्यन्त हर्ष होगा।

इतने में जेलर के लड़के और लड़कियाँ वहाँ आकर खड़ी

होगई। आज रौनकलाल को जेल से छूटा हुआ देख कर सभी खुश हुए।

जेलर की स्त्री ने कहा—देख,—छः वर्ष में तूने छुटकारा पाया है। अब, देखना, फिर कभी चोरी डकैती नहीं करना।

"चोरी-डकैती तो मैंने कभी नहीं की। हाँ, फौजदारी की थी।" यह कह कर रौनक सीना तान कर मन्द मन्द हँसने लगा।

दो एक बातों के बाद रौनक ने मालकिन को प्रणाम करके जाने की आज्ञा माँगी।

मालकिन ने कहा—अभी न जाओ तो क्या होगा। भोजन करके उस वक्त चले जाना।

'माँ, इसके लिए आप चिन्ता न करें। आपही का दिया खाता हूँ। त्रिवेणी स्नान करके माधवजी का दर्शन करूँगा—वहीं कुछ जलपान करके स्टेशन जाकर गाड़ी पर सवार हो जाऊँगा।" यह कह कर रौनक चल पड़ा।

रौनकलाल का घर गाजीपुर जिले में गंगा के किनारे वीरपुर गाँव में था। वहाँ के जमींदार बाबू शिशुपालसिंह इसे बहुत चाहते थे। जमींदारी के काम में मानो रौनक ही उनका दहिना हाथ था। ऐसा कोई बुरा काम नहीं जो मालिक की आज्ञा से रौनक पूरा न कर सके। दगा करने में, जाल करने में, झूठा मुकद्दमा खड़ा करने में, बात न माननेवाली रैयत का सर्वस्व लूटने में, न्याय चाहनेवाली प्रजाओं के घर जलाने में

रौनक़ सिद्धहस्त था। कोई मामला मुक़दमा दायर होने पर पैरवी का सम्पूर्ण भार उसी के ऊपर रहता था। वह कुछ कुछ कानून भी जानता था। फौजदारी और दीवानी आदि कानून की हिन्दी-पुस्तकें रौनक नित्य देखता रहता था। उसको कुछ यह पहले ही पहल कैद की सजा नहीं हुई है। एक दफे लठैतों को साथ ले एक रैयत का सर्वस्व लूट लेने के अपराध में उसे डेढ़ वर्ष कैद की सजा हुई थी। यह दस बारह वर्ष की बात है। इस बार उसे जेल होने का कारण यह है कि एक पड़ोसी जमींदार के साथ सरहदी तकरार के सबब एक भयानक दंगा हो गया था। उसमें विरुद्ध पक्ष के दो आदमियों का खून हो गया था। घोड़े पर सवार, सरेआम नंगी तलवार हाथ में लिए रौनकलाल खुद अपनी सेना की पीठ पर था। अपराध साबित होने पर वह दौरा सुपुर्द किया गया। हाकिम ने उसे दस वर्ष द्वीपान्तर वास की आज्ञा दी। अपील करने पर हाईकोर्ट के दयालु जज ने उस दण्ड के बदले छ वर्ष सपरिश्रम कारावास का हुक्म दिया था।

यथासमय रौनक देश को लौटा। गाँव में प्रवेश करके पहले ही सुना कि उसके पूर्व प्रभु शिशुपालसिंह, कोई छ महीने हुए, संसार से विदा हो गये। उनका बेटा धर्मपालसिंह अब पिता की गद्दी पर है।

रौनक ने अपने पुश्तैनी मकान की जगह पर जाकर देखा कि घर गिर पड़ा है। टूटी फूटी ईंटों का ढेर लगा है। उस

कमरे में छोटी टेबल के नजदीक कुरसी पर बैठकर "प्राचीन भारत में बन्दूक थी या नहीं" इस सम्बन्ध में एक गम्भीर गवेषणापूर्ण पुरातन तत्त्व-विषयक प्रबन्ध लिख रहे थे। उस समय वहाँ और कोई नहीं था। इस प्रबन्ध की रचना में उन्हें अँगरेजी की एक पुस्तक और एशियाटिक सोसाइटी की लेखमाला से मदद लेनी पड़ी थी। रौनक को देखकर उन्होंने लिखना बन्द करके कागज कलम को मेज पर रख दिया। नीचे दरी बिछी थी, उसी पर बैठ कर रौनक बोला—"सरिश्ते के सब कामों की देख-भाल आप स्वयं करते हैं, यह बहुत अच्छी बात है। स्वर्गीय मालिक भी यही करते थे। ऐसा न करते तो सम्पत्ति की इतनी उन्नति कैसे होती? हाँ, अभी किस महाल के कागजात का मुलाहजा हो रहा था?"

बाबू ने मुस्कुरा कर कहा—नहीं, अभी मैं जमींदारी का कागज नहीं देखता था, एक निबन्ध लिख रहा था।

चेहरे पर हर्ष और आश्चर्य का भाव लाकर रौनक ने कहा—सही है! काव्य करना क्या सबसे हो सकता है? पहाड़पुर के दीवानजी में अद्भुत सामर्थ्य था। भगवती की स्तुति के वे ऐसे बढ़िया बढ़िया गीत बनाते थे जिन्हें सुन कर लोग भक्ति से विह्वल हो रो देते थे। हुजूर किस विषय का काव्य बना रहे थे?

कागज उलटाते उलटाते बाबू ने कहा—यह गीत कवित्त नहीं है। मैं पुरातन तत्त्व का एक

लिए उसके स्वभाव की आलोचना करने का सुयोग रौनकलाल को कभी नहीं मिला। साधारणतया वह जानता था कि इस जमाने के शिक्षित युवक देवता, गुरु और पुरोहित के प्रति विशेष भक्ति न रखन पर भी लोगों के साथ नैतिक व्यवहार करने में बडे प्रवीण होते हैं। इसीसे उसे कुछ चिन्ता हुई कि नई शिक्षा से शिक्षित जमीदार के पास जाकर दरबार करने से कोई फल होगा या नहीं। किन्तु पेट की आग बडी तीव्र होती है। एक दिन रास्ते मे धर्मपाल बाबू को देख कर रौनक ने भक्तिपूर्वक उन्हे प्रणाम करके अपना परिचय दिया।

धर्मपाल बाबू—परिचय देने की जरूरत नहीं। मैं तुमको जानता हूँ। कब घर आय ?

"घर आये यही तीन चार दिन हुए हैं। हुजूर के पास एक बार आने की बडी लालसा लगी थी, परन्तु आने का साहस नहीं होता था।"

"मुझसे कोई काम है ?"

"हुजूर मे कुछ प्रार्थना करनी है।"

"अच्छा तो किसी दिन आजाना।"

"एकान्त मे बातचीत करने की सुविधा होती है।"

"वही होगा। दिन का तीन चार बजे किसी दिन आ सको तो मजे मे बातचीत होगी।"

दूसरे दिन तीन बजे देवी-देवताओं का स्मरण करके रौनक जमीदार साहब से मिलने चला। धर्मपाल बाबू उस समय एक

दिया। तानेदार के पास अब कोई जवाब ही न र दिया कि इतने दिन हम लोगों में यह कोई न जानता था। इसीसे तो था उसे हूँ, रावण के समान वीर—जिसके पास राक्षसों की ही सेना थी—उसे तीर-धनुष से मार डाला—यह कभी हो सकता है? तोप, बन्दूक़ जरूर थीं। इतने दिनों तक यह बात कोई नहीं जानता था। जानेगा कहाँ से? अधिकांश लोगों की दौड़ तो भाषा रामायण ही तक है। हुजूर की तरह सब लोग संस्कृत-रामायण थोड़े ही पढ़े हैं? संस्कृत जानकर भी ऐसा निबन्ध लिखना कितने मनुष्य जानते हैं? वाह! वाह! ऐसा ही होना चाहिए। लिखन-पढ़न की चर्चा रखना बहुत ही अच्छा है। आज-कल तो बड़े बड़े लोगों का यही सिद्धान्त है। जिन लोगों ने अच्छा इल्म हासिल किया है उन लोगों को क्या अब खसरा, खतियान, जमावासिलबाक़ी की बही लेकर सिर खपाना अच्छा लगता है? खूब पक्का होशियार नौकर रख लेने ही से काम चल जाता है। जितने बड़े बड़े जमींदार हैं वे सभी आज-कल कलकत्ते की सैर करते हैं। उन्होंने कितनी ही सभाएँ स्थापित की हैं, कितने ही व्याख्यान दिये हैं और ज्ञान की कितनी ही बातों का प्रचार किया है। कोई कोई तो लाट साहब के कौंसिल के मेम्बर तक हो गए हैं। लाट साहब के पास कौंसिल की भाँति स्पीच देते हैं—देश के कितने ही उपकार करते हैं। हुजूर ने खासी विद्या लाभ की है; यदि कलकत्ते जाकर कुछ चेष्टा करें तो आप भी कौंसिल हो सकते हैं।

"कौन तत्त्व ?"

"पुरातन तत्त्व ।"

"सरकार! समझ में नहीं आया । यह नया ही शब्द सुन रहा हूँ ।"

जमींदार बाबू ने कहा—पुराने समय की खोज को ही पुरातन तत्त्व कहते हैं । जैसे यह थोड़ा सा लिखा है 'प्राचीन भारत में बन्दूक थी या नहीं' । मैंने इस निबन्ध में साबित किया है—थी—बल्कि राजा दशरथ के समय से भी लोग तोप बन्दूक चलाना जानते थे ।

गैनक—हुजूर! यह क्या कहते हैं ? नहीं, नहीं । राजा दशरथ के जमाने में बन्दूक कहाँ थी ? बन्दूक तो शायद ये अँगरेज ही यहाँ लाये हैं । वे लोग तो धनुष-बाण से काम लेते थे । यही तो मैंने रामचरित में और अनेक नाटकों में भी देखा है ।

बाबू मन ही मन कुछ खुश हो कर बोले—नहीं, प्राचीन भारत में बन्दूक थी । रामायण में उसका प्रमाण मिलता है । अयोध्या नगरी का वर्णन करते समय वाल्मीकि ने लिखा है—"सर्वयन्त्रायुधवती शतघ्नी शतसंकुला" अर्थात् अन्यान्य अस्त्रों के साथ एक सौ शतघ्नियाँ थीं । शतघ्नी तोप के सिवा और कुछ नहीं हो सकता । जो एक बार चलाये जाने पर सैकड़ों मनुष्यों का संहार कर वह 'शतघ्नी' है ।

यथासाध्य मुँह फैला कर गैनक अचम्भे का भाव दिखाता हुआ बोला—महाराज! आपने तो मुझे एकबारगी चुप कर

दिया। तामेदार के पास अब कोई जवाब ही न रहा, दिया कि इतने दिन हम लोगों में यह कोई न जानता था। इसीसे तो था उसे हूँ, रावण के समान वीर—जिसके पास राक्षसों की ही सेना थी—उसे तीर-धनुष से मार डाला—यह कभी हो सकता है? तोप, बन्दूक जरूर थी। इतने दिनों तक यह बात कोई नहीं जानता था। जानता कहाँ से? अधिकांश लोगों की दौड़ तो भाषा रामायण ही तक है। हुजूर की तरह सब लोग संस्कृत-रामायण थोड़े ही पढ़े हैं? संस्कृत जानकर भी ऐसा निबन्ध लिखना कितने मनुष्य जानते हैं? वाह! वाह! ऐसा ही होना चाहिए। लिखने-पढ़ने की चर्चा रखना बहुत ही अच्छा है। आज कल तो बड़े बड़े लोगों का यही सिद्धान्त है। जिन लोगों ने अच्छा इल्म हासिल किया है उन लोगों को क्या अब खसरा, खतियान, जमावासिलबाकी की बही लेकर सिर खपाना अच्छा लगता है? खूब पक्का होशियार नौकर रख लेने ही से काम चल जाता है। जितने बड़े बड़े जमींदार हैं वे सभी आज-कल कलकत्ते की सैर करते हैं। उन्होंने कितनी ही सभाएँ स्थापित की हैं, कितने ही व्याख्यान दिये हैं और ज्ञान की कितनी ही बातों का प्रचार किया है। कोई कोई तो लाट साहब के कौंसिल के मेम्बर तक हो गये हैं। लाट साहब के पास कोयल की भाँति खींच देते हैं—देश के कितने ही उपकार करते हैं। हुजूर ने खासी विद्या लाभ की है, यदि कलकत्ते जाकर कुछ चेष्टा करें तो आप भी कौंसिल हो सकते हैं।

"कौन्च चश्मे के भीतर से धर्मपालसिंह कुतूहल के साथ रौनकलाल की ओर देखने लगे। थोड़ी देर चुप रह कर बोले—तुमको मुझसे क्या कहना था ?

रौनकलाल सिर नीचा करके नह से शतरञ्जी का सूत उधड़ते उधड़ते कहने लगा—

"मैं क्या कहूँगा, आप तो सब जानते ही हैं। मैं जन्म से ही आपके घर का पला हूँ, आपही का आश्रित हूँ। अपने मुँह से कहना तो डींग मारना है, आपने सुनाही होगा, मैं बूढ़े सरकार का दहना हाथ था। मुझसे बिना सलाह लिये वे कभी कोई काम नहीं करते थे और मैंने भी उनके लिए क्या नहीं किया। यही जो छ वर्ष जेल काट कर आया हूँ, सो किसके लिए ? बिलासपुर को तो आप जानते हैं ?"

धर्मपालसिंह—बिलासपुर ? वह कहाँ है ?

"बिलासपुर आपही के इलाके में है। दुर्गापुर से करीब एक मील होगा।"

"होगा, मुझे याद नहीं आता।"

"उस बिलासपुर गाँव को महेश चौधरी ने नीलाम में खरीद लिया था। भला एक मौरूसी जायदाद को एक आदमी झट खरीद ले, क्या यह कभी बरदाश्त हो सकता था ? इस गाव से सालाना पाँच छ सौ रुपये की आमदनी थी। हमने कौशल से किया क्या—इस बिलासपुर के उत्तर कुछ दूर छोटे कौम वालों की दस पाँच घर की बस्ती थी, हमने उसी को अमल

विलासपुर कायम किया और लोगों में जाहिर कर दिया कि यही नीलाम हुआ है। और जो असल विलासपुर था उसे दुर्गापुर का एक अंश कायम कर दिया। इतना ही नहीं, तेरह चौदह वर्ष की खसरा-बही सब बदल डाली। इसके बाद दारोगा को मिला कर १४५ धारा की कार्रवाई करवा दी।"

धर्मपाल बाबू ने कहा—सो क्या ?

जमींदार के बेटे की इस अज्ञता से मन ही मन आश्चर्य मान कर रौनक ने कहा—आप तो जानते ही होंगे, फौजदारी के कानून की १४५ धारा में लिखा है—यदि किसी जमीन के दखल की बात लेकर दो व्यक्तियों में विवाद हो और शान्ति भङ्ग की सम्भावना हो तो पुलिस की रिपोर्ट देखकर और दखल का सबूत लेकर मैजिस्ट्रेट एक पक्ष का दखल साबित करके दूसरे पक्ष से कहेगा 'यदि तुम्हारा हक उस जमीन पर आता है तो तुम अदालत जाओ।' दारोगा ने रिपोर्ट दी दखल हमारा ही है। उधर मुकद्दमा दायर हुआ इधर वे लोग मालगुजारी वसूल करने आये। हम लोग लाठी, गड़ासा, तलवार लेकर मुकाबिला करने गये। खूब मारपीट हुई। उस पक्ष के दो आदमी जान से मारे गये। हम लोगों ने दोनों लाशें छीन कर दो घुड़सवारों को थाने दौड़ा दिया और उन्हें यही इजहार लिखाने को सिखला दिया कि 'दूसरे फरीक ने हमारी तरफ के दो आदमियों को जान से मार डाला है।' दो घुड़सवारों को क्यों भेजा, यह तो आप समझ ही गये होंगे ?

धर्मपाल बाबू ने कहा—क्यों ?

"आपकी उम्र नई है, इसीसे आप ये सब छक्क-पंजे नहीं जानते। जमींदारी चलाने के लिए बहुत पेचीली बुद्धि की जरूरत है। यदि कोई दङ्गा-फसाद हो जाय तो जिस पक्ष का इजहार थाने मे पहले लिखाया जाय उसी पक्ष को अदालत मे बड़ी सुविधा होती है। जैसे हो थाने मे पहले पहुँचना जरूरी है। अगर एक ही आदमी थाने मे भेजा जाय और दैवयोग से रास्ते मे उस पर कोई विपद आ पड़े, वह बीमार हो जाय, तो दूसरे पक्ष का आदमी थाने मे पहुँच कर इजहार लिखा सकता है। इससे मुकदमा कमजोर होने का भय है। इसी लिए दो आदमी भेजे गये। जो हो, थाने मे हमी लोगों का इजहार पहले पहुँचा। दारोगा को बहुत रुपया घूस देकर अपना मुकदमा सच और विपक्षी का मुकदमा झूठ कह कर आखिरी रिपोर्ट दिलाई। उसी की तरफ के मुजरिमों का चालान हुआ। किन्तु धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म होती है—उस पक्ष के सभी लोगों की रिहाई हो गई। उलटा मुझी पर मुकदमा चलाया गया। हम लोगों को जेल हुआ। ओफ्! इन छ वर्षों में जो कष्ट भोगा है वह आप को क्या बताऊँ। किन्तु आपका नमक खाया था, आप लोगों के लिए जान हाजिर है, जेल जाना क्या बड़ी बात है। जरूरत होने पर फिर जेल जाने को तैयार हूँ। इसमे रौनक कभी पीछे पैर देनेवाला नहीं।"

इतना कह कर रौनक चुप हो रहा। आशा थी, उसकी वीरता, बुद्धि-कौशल और आत्मत्याग के इस ज्वलन्त वर्णन से धर्मपाल एक-दम हाथ में आ जायगा। किन्तु उसका वैसा कुछ भाव न देखकर वह किञ्चित् निराश हुआ।

धर्मपाल कुछ और ही बात सोचते हुए अपने लिखित प्रबन्ध के पन्ने उलटा रहे थे। उन्हें चुप देखकर रौनक़ ने कहा—जेल से आकर देखा, मेरा घर-बार सब गिर पड़ा है। कहीं बैठने को जगह नहीं रही। अत्यन्त शोचनीय अवस्था में पड़ गया हूँ। अब हुजूर यदि कोई काम मेरे हाथ में दें तभी मेरा गुजारा हो सकता है।

धर्मपालसिंह—देखो, अब वह जमाना नहीं है। जमीदारों के ऊपर इन दिनों सरकार की बड़ी कड़ी नजर रहती है। अब दगा फसाद करने में कुशल नहीं है। इसीसे मैंने इलाके के सब लठैतों को जवाब दे दिया है। क़ानून और अदालत की मदद से जहाँ तक जो हो सकेगा, उसी पर सन्तोष करूँगा।

रौनक छोड़ने वाला शख्स न था। बोला—इस सम्बन्ध में भी आप इस अधम का जोड़ा नहीं पावेंगे। मालिक के समय में मामिले मुकद्दमे की जितनी कार्रवाइयाँ होती थीं, उनका भार मेरे ही ऊपर था।

धर्मपाल—मामिला मुक़द्दमा देखने के लिए अलबत्त एक अच्छा आदमी मुझे चाहिए। एक लॉ-एजेन्ट नियुक्त करने का

इरादा है। तुम मामिले मुक़दमे का काम अच्छी तरह कर सकते हो ?

यह सुन कर रौनक का हृदय उत्साह से फूल उठा। वह बड़ी उमङ्ग के साथ कहने लगा—

"यह बात मैं अपने मुँह से क्या कहूँ ? मालिक मुझसे जब तब कहा करते थे—'रौनक, अगर तुम अँगरेज़ी जानते तो वकील होते, फिर तो जैकमन साहब भी तुमसे हार मानते।' मैं अपनी तारीफ अपने ही मुँह से क्या करूँ। मेरा काम ही मेरी तारीफ़ का पक्का सबूत है। एक दफे की बात कहता हूँ। हुज़ूर के ब्याह के समय सभी गुमाश्तों के नाम एक परवाना जारी हुआ कि हर एक रैयत से सालाना फी रुपये लगान पर एक आने के हिसाब से वसूल करके भेज दे। हलीमपुर में हरिदास एक धन-जन-सम्पन्न ग्वाला था। वह सरकारी रिआया था। गुमाश्ता उससे चन्दा माँगने गया। उस कमबख्त ने कहा—'जाओ, चन्दा नहीं दूँगा। यह सब बेकानूनी है। जमीदार की जमीन जोतता हूँ सो मालगुजारी देता हूँ। चन्दा वसूल करनेवाले वे कौन हैं ?'—यह सुनकर मालिक तो मारे क्रोध के एक-दम आग-बबूला हो गये। उन्होंने मुझको बुलाकर कहा—'रौनक, उस साले बदमाश को तुम बरबाद कर सकते हो ? उसकी इतनी हिमाक़त ? छोटा मुँह बड़ी बात। मुझे कानून की धमकी दिखाता है ? साले की सारी सम्पत्ति लूट कर उसके घर में आग लगा सकते हो ?' मैंने

हाथ जोड़कर कहा—'धर्मावतार ! आपका हुक्म पाने से मैं क्या नहीं कर सकता हूँ ? किन्तु इससे भी बढ़कर मैं ऐसा उपाय करता हूँ जिससे वह पाजी आपका इलाका छोड़कर भाग जायगा । बढ़िया बढ़िया जमीन वह बहुत थोड़ी जमारन्दी में दबाये हुए है । उस जमीन का यदि दूसरे किसान के साथ बन्दोबस्त कर दिया जाय तो बहुत ज्यादा मालगुजारी वसूल हो सकेगी ।' आखिर सोच-विचार कर मैंने उसके नाम का सोलह सौ बासठ रुपये का तमस्सुक बनाया ।"

धर्मपाल—जाल किया ?

"हाँ, हुजूर जो कहें । जमींदारी की रक्षा करने के लिए यह सब न हो तो काम कैसे चले ?"

"इसके बाद ।"

"इसके बाद उस तमस्सुक का मुकदमा दायर हुआ । पेशी के तीन चार दिन पहले ही से मैं सब साक्षियों को सपरिश्रम तालीम देने लगा । उस तरफ से जो जिरह होगी उसका उत्तर भी सोच सोचकर उनको सिखा दिया था । कहाँ बैठकर तमस्सुक लिखा गया, कै बजे लिखा गया, दावात कलम कौन लाया, कलम कैसा था, लिखनेवाला किस ओर मुँह करके बैठा था, कातिब की उम्र क्या थी, उसका रङ्ग कैसा था, पहले मसविदा बना लिया या एकबारगी लिखा, किस रंग का कुरता पहिरे था, सिर पर टोपी थी या मुरैठा इत्यादि प्रश्नों का एकसा उत्तर सब गवाहों को सिखा पढ़ाकर ठीक

किया। मुक़द्दमा खूब मार्के के साथ चला। सब गवाहों को मैंने पहले ही सिखा दिया था—पूछने पर कहना कि 'हरिदास ने लकड़ी के कलम से सही की थी।' प्रथम साक्षी ने यही कहा। दूसरा गवाह जिरह करने पर हतबुद्धि हो गया, वह कह बैठा कि लोहे के कलम से सही की थी।—मन में कहा, बस, मामला बिगड़ गया। धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः। किन्तु झट एक बात सूझ गई। चटपट बाहर गया जहाँ बड़ के पेड़ के नीचे और सब गवाह बैठे थे। उन्हें मैंने सिखा दिया कि अगर पूछें तो कहना, लकड़ी के भोंथरे कलम के मुँह में लोहे का निब लगाकर हरिदास ने दस्तख़त किया था। उसका वकील भी गधा था। दो साक्षियों में इतना बड़ा फ़र्क़ पाकर उसे यहीं छोड़ देता। सो नहीं, उसने तीसरे साक्षी से भी यही प्रश्न किया। जिस जिससे पूछा गया, सबों ने वही उत्तर दिया। वकील का मुँह काला होगया। मुझे डिगरी मिली। वह रुपया नहीं दे सका। तमका घर द्वार, खेत-बाड़ी, सब नीलाम करा कर गले में हाथ दे उस बदमाश ग्वाले को अपनी ज़मींदारी से निकाल दिया।"

धर्मपाल—क्या उसकी ओर से दस्तख़त भी तुम्हीं ने बनाया था?

"हाँ हुज़ूर। हरिदास गोप के जवाबदावे पर और वकालत-नामे पर उसका जो हस्ताक्षर (दस्तख़त) था उससे हाकिम ने मिला कर देखा तो ठीक एक सा मिल गया।"

धर्मपाल बाबू ने आश्चर्यभरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। फिर पूछा—क्या तुम दूसरे के दस्तखत की ठीक नकल कर सकते हो?

रौनक ने उत्साहपूर्वक कहा—जी हाँ—हूबहू। आप दस्तखत कीजिए, मैं उसकी नकल किये देता हूँ।

धर्मपाल ने एक कागज लेकर उस पर अपना नाम लिख दिया। रौनक ने उसे अच्छी तरह ध्यान से देखा और पाँच मिनट के भीतर बजिन्स नकल कर दी। यह देख कर धर्मपालसिंह स्तब्ध हो गये। रौनक ने समझा, बाबू साहब का मन इस बार जरूर कुछ पिघला है।

कुछ क्षण के अनन्तर धर्मपालसिंह बोले—आश्चर्य की बात है। तुमने यह विद्या कैसे सीखी?

अपनी प्रशंसा से सकुचित हो कर मीठी हँसी हँसता हुआ रौनक बोला—हुजूर! यह मेरी एक ईश्वरदत्त शक्ति है। मैंने इसे सीखा नहीं।

कुछ देर चुप रह कर रौनक ने पूछा—तो हुजूर का हुक्म क्या होता है?

धर्मपालसिंह ने कहा—अच्छा, एक सप्ताह के बाद आओ, तब हुक्म दूँगा।

"जो आज्ञा धर्मावतार" कह कर रौनक उठा और बाबू को सलाम करके प्रसन्न मुख से घर गया।

उसके चले जाने पर धर्मपाल बाबू ने अपने दीवान को

बुला भेजा । दीवान के आने पर पूछा—हलीमपुर के हरिदास ग्वाले को आप जानते हैं?

"जी हाँ।"

"अब वह कहा रहता है?"

"उसकी जगह जमीन सब हमने एक डिगरी के द्वारा नीलाम करा कर खरीद ली थी। इसके बाद वह हमारा इलाका छोड़ कर आजमगढ जिले में अपने मामा के घर रहने लगा है।"

"आप उसका पता ठिकाना जानते हैं?"

"जी हाँ।"

"अच्छा उसके उस मुकदमे के कागजात मेरे पास अभी भेज दीजिए।"

मुकदमे के कागज पत्र देख कर दूसरे दिन सबेरे धर्मपालसिंह ने दीवान को हुक्म दिया—एक विश्वस्त कर्मचारी भेज कर हरिदास को छ दिन के भीतर बुलवा दीजिए। और देखिए, यह बात किसी पर जाहिर न होने पावे।

———

मैं कहता हूँ,
पर इसको
दवा

छठा परिच्छेद

रौनक बड़ी गम्भीरता से पैर उठाता हुआ घर आया। रसिकलाल ने पूछा—कहो, रौनक, क्या हुआ? बाबू का स्वभाव कैसा है?

रौनक—छि छि। लिखा पढ़ा आदमी भी कहीं ऐसा जन्तु होता है?

"कैसा?"

"यह तुम्हारा धर्मपाल बाबू, कहते हो बहुत कुछ पास वास कर चुका है—किन्तु जमींदारी के काम में बिलकुल ही बैल है। जमींदार की ओर से जितने लठैत नियुक्त थे उन सबको इसने बरतरफ कर दिया। कहा है कि कानून और अदालत से जहाँ तक जो हो सके वही अच्छा है दङ्गा-फसाद करके प्रजा-शासन करना ठीक नहीं।"

रसिक ने कहा—"प्रजा के ही हितार्थ ऐसा किया है।"

रौनक ही ही कर हँस उठा। बोला—प्रजा के लिए नहीं—प्रजा के हितार्थ नहीं। हाँ, वकील-मुख्तारों का इससे खूब धन आवेगा। मान लो, एक रैयत के पास मालगुजारी बाकी है, मालिक उपद्रव करने नहीं देता, आखिर अदालत की शरण लेनी पड़ेगी। बूढ़े मालिक के समय में प्यादे भेज उसे हाथ बाँधकर

बुला भेजा । ते थे और जूते के हाथ से मालगुजारी वसूल कम टास ग्वाल्पैसे दो पैसे की चूना-हलदी खर्च करने ही से किसानों गाँठ का दर्द जाता रहता था । इसमें जमींदार की आधी पाई भी खर्च नहीं होती थी । अब सुशिक्षित पुत्र की अमलदारी में क्या होगा जानते हो ? मान लो, एक किसान के पास तीन वर्ष का तीस रुपया लगान बाकी है । उसके लिए सदर में जाकर मुन्सिफी में नालिश दायर करनी होगी । वकालतनामे के लिए पहले ही दो रुपये चाहिए, आठ आना वकील के मुहर्रिर की तहरीर के हुए, कोर्टफीस दो रुपये नौ आने और पेशकार साहब को एक रुपया । गवाह-खर्च अलग ही रहा । मजकूरी सम्मन तामील करने आवेगा तो उसे एक रुपया, नहीं तो आठ आना अवश्य देना होगा । इसके बाद पेशी के दिन किसान अपनी गृहस्थी का काम छोड़ कर कचहरी को दौड़ा गया । मुख्तार अगर ईमान के पूरे मिल गये तो उन्होंने राय दी—'जवाब दे दो कि मैं साल ब साल कौड़ी कौड़ी लगान देता आया हूँ, जमींदार का पटवारी रुपया हड़प कर लेने की नीयत से रसीद-फारखती नहीं देता था ।' अब और भारी बखेड़ा खड़ा हुआ । कदाचित् रैयत हार गई तो मय डैमेज मुकद्दमे का जायज खर्च और डिगरी सब मिलाकर तीस रुपये की जगह साठ पैंसठ रुपये हुए । प्रजा ने हल, बैल बेच कर डिगरी अदा कर दी—नहीं तो जगह जमीन सब नीलाम पर चढ़ गई । कहो बाबू यह अच्छा या वह ? दो जूते मार कर लगान वसूल करना

"नहीं ठग सकूँगा? अच्छा बाजी रक्खो। मैं कहता हूँ, बूढ़े सरकार के समय में जो काम किये हैं उन से बढ़कर इसके समय में करूँगा—कम नहीं करूँगा। रोग समझ कर दवा की जाती है। बहाल होते ही पहले हाथ जोड़कर यही कहूँगा—हुजूर, धर्मावतार! आपसे एक निवेदन है। बाबू कहेंगे—क्या? मैं कहूँगा—'हुजूर! आपके पिताजी के समय में मुझे पाँच ही रुपया महीना मिलता था। बाल बच्चे खानेवाले थे। पाँच रुपये में कैसे पेट भरता? इसी से जान-बूझ कर अन्याय से उपार्जन भी करना पड़ता था। रैयत से जबरदस्ती कुछ ज्यादा कर वसूल करके खाता था। सदर में मुकदमा दायर करने जाता तो वकील-मुख्तारों को जो फीस देता था उसमें से कुछ कुछ दस्तूरी मिलती थी। वह क्या वे अपने घर से देते थे? जमींदार से ही लेकर मुझे देते थे। क्या करता, पेट माननेवाला नहीं। किन्तु हुजूर की अमलदारी में जैसा कड़ा इन्तजाम देख रहा हूँ उसमें उपाय नहीं सूझता कि कोई अधर्म करके कुछ पैसा हासिल कर सकूँ। इसलिए प्रार्थना है कि मेरा ऐसा मासिक नियत कर दिया जाय जिससे ताबेदार धर्ममार्ग पर रहकर अपना पेट भर सके।' यह सुनकर बाबू साहब प्रसन्न हो एक दम घुल जायँगे। वे पचास, नहीं तो चालीस रुपया वेतन मुझे अवश्य देंगे।"

रसिकलाल ने कहा—बूढ़े मालिक के समय में तो तुम इससे भी ज्यादा रुपया कमाते थे।

दास के किये हुए कई एक दस्तखतों से मिलान कर देखा तो तमस्सुक की सही हूबहू मिल जाती है।

रौनक आनन्द से फूल कर बोला—ये मेरे दस्तखत देख कर ही तो मैंने तमस्सुक पर वह जाली सही की थी।

धर्मपाल—जिस समय तुमने जाल किया था उस समय के पाँच साल पहले यह स्टाम्प पेपर बिका था। इस पर मोल लेने की वही तारीख देखता हूँ। तुमने इतना पुराना कागज कहाँ पाया?

"हर साल, दर्जन के दर्जन अनेक मूल्य के स्टाम्प पेपर खरीद कर घर में रख देता था। कौन जानता है, किस समय कितने वर्ष के पुराने कागज की जरूरत हो पड़े।"

"अच्छा, और रोशनाई? नई रोशनाई से लिखा था न? अदालत को सन्देह नहीं हुआ?"

रौनक ने मुस्कुरा कर कहा—उसका भी उपाय है। कागज लिख कर कुछ दिन तक बिना साफ किये हुए चावलों के बीच रखना पड़ता है। चावलों का मैल लग कर स्याही और कागज का रङ्ग बदल जाता है। दोनों मुद्दत के पुराने से दीख पड़ते हैं।

धर्मपाल बाबू ने मुस्कुरा कर धीमे स्वर से पुकारा—हरिदास।

बगल वाली कोठरी से परदा हटा कर हरिदास ग्वाला झट आ पहुँचा।



बगलवाली कोठरी से परदा हटाकर हरीदास ग्वाला झट आ पहुँचा ।—पृ० ६२

धर्मपाल ने कहा—क्यों जी गैनक, यही यह हरिदास है?

गैनक का मुँह पीला पड़ गया। उसकी आँखें भयभीत हो गईं। जल्दी जल्दी साँस चलने लगी। सारा शरीर पसीने से भीग गया। उसे मालूम हुआ, मानों एक बे सोची हुई विपद उसे निगलने के लिए दौड़ी आ रही है।

धर्मपालसिंह ने कहा—पहचानते हो न यह वही हरिदास है जिसका सर्वस्व जाल करके नीलाम करा लिया था?

गैनक हतबुद्धि होकर कष्ट से बोला—जी हाँ।

धर्मपाल ने कहा—हरिदास, हम लोगों के द्वारा तुम्हारे ऊपर जो अत्याचार हुआ है उसके लिए मैं बहुत दुखी हूँ। यदि तुम्हारा जी चाहे तो फिर आकर मेरी जमींदारी में रहो। मैं तुम्हारा सब प्रबन्ध कर दूँगा। अपनी तरफ से घर बनवा दूँगा।

हरिदास ने बड़े विनीत भाव से कहा—"हुजूर बड़े ही दयालु हैं, हुजूर गरीब के माँ बाप हैं। मेरी उम्र यदि और भी दस वर्ष कम होती, तो वहाँ से आकर इस रामराज्य में रहने लगता। किन्तु अब बूढ़ा हो गया हूँ। वहाँ कुछ ननिहाल की सम्पत्ति भी मिली है। इसी से किसी तरह बाल-बच्चों का निर्वाह कर रहा हूँ। इस उम्र में गृहस्थी हटा कर आना बड़ा ही कष्टकर होगा" कह कर हरिदास हाथ जोड़ कर खड़ा होगया।

धर्मपालसिंह ने पूछा—अब तुम कहाँ रहते हो?

"आजमगढ़ जिले के गड्डरपुर गाँव में।"

"वहाँ का जमींदार कौन है ?"

"कमलपुर के लाला साहब। वे दो भाई हैं। बड़े गोपी-कान्त बाबू ही जमींदारी देखते हैं।"

"अच्छा, यदि तुमको सुभीता है तो वहीं रहो। हम लोगों के द्वारा जो तुम्हारी क्षति हुई है उसकी यत्किञ्चित् पूर्ति के लिए तुम्हें ५००) देता हूँ। खजानची के नाम यह हुक्म-नामा लिख दिया है। कचहरी से रुपया लेकर घर चले जाना।"

हरिदास ने आनन्द से विह्वल होकर धर्मपाल की चरण-रज ली।

तब धर्मपाल ने रौनक की ओर मुँह करके कहा—"इस जीवन में तुमने अनेक बुरे काम किये हैं। मैं तुम्हें अभी पुलिस के हाथ में दे देता किन्तु तुम हाल ही में छ वर्ष जेल काट आये हो। इसी से अभी तुमको छोड़ दिया। परन्तु तुम्हें यही हुक्म है कि तुम चौबीस घंटे के भीतर मेरा इलाका छोड़कर चले जाओ। जो कभी सुन पाऊँगा कि तुम मेरे इलाके की भूमि को अपवित्र कर रहे हो तो हरिदास ग्वाले से तुम पर जाल करने की नालिश दायर करा दूँगा। मेरे सामने तुमने जो जो बातें स्वीकार की हैं, मैं खुद उसकी गवाही दूँगा।" इस के बाद हरिदास की ओर घूम कर बोले—"क्यों जी, मेरी चिट्ठी पाकर तुम नालिश दायर कर सकोगे न ?"

"जी हाँ, यदि जीता रहूँगा तो आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करूँगा।"

"अच्छा, तो अब तुम दोनों आदमी जा सकते हो।"

रौनक ने घर लौट कर कहा—बाबू लोगों का स्वभाव बड़ा ही विचित्र होता है। एक हफ्ते तक मुझे बिठा रक्खा। आज वहाँ जाकर दो घंटे तक उनके इन्तजार से बैठा रहा तो भी बाबू से भेंट न हुई।

खा पी कर रौनक चटाई पर लेट रहा, पर नींद न आई। रात गहरी होने पर जब सब लोग सो गये तब, धीरे धीरे उठ कर जो कुछ थोड़ा बहुत अपना असबाब था उसकी गठरी बाँध, कन्धे पर रख पैदल ही गाँव छोड़ कर भाग चला। उसके मन में निश्चय हो गया कि संसार में सबसे बढ़कर उसका दुश्मन हरिदास ग्वाला है। बाबू के न कहने पर भी, वह जब चाहे, जाल का मुकद्दमा दायर कर सकता है। अगर बाबू नालिश करें तो हरिदास ही अौवल गवाह होगा। हरिदास जब तक खुद आकर न कहेगा कि इस तमस्सुक पर मेरा दस्तखत नहीं है तब तक मुकद्दमा साबित न होगा। इसलिए शत्रु का दबाना आवश्यक है। और इस अभिप्राय को सिद्ध करने के लिए, हरिदास के जमींदार, कमलपुर के गोपीकान्त बाबू की मातहती में रहकर काम करना ही उत्तम उपाय है।

यह समाचार पाठक पहले ही पढ़ चुके हैं कि रौनक ने कमलपुर पहुँचकर गोपीकान्त बाबू से भेंट की है।

सातवाँ परिच्छेद

गोपीकान्त बाबू की स्त्री का नाम मनोरमा है। उम्र उसकी तीस वर्ष की होगी। उसके एक बेटा और एक बेटी है। बेटे का नाम है नन्दलाल। वह कोई आठ वर्ष का होगा। बेटी का नाम प्रभावती है। पाठकों ने उसे पूर्व परिच्छेद में देखा ही है।

मनोरमा का स्वभाव बड़ाही कोमल है। रुष्ट होते उसे प्राय कभी किसी ने नहीं देखा। मन में कोई दु ख होने पर वह उसे मन में ही छिपा रखती है—मुँह पर नहीं लाती। परम आत्मीय व्यक्ति को छोड़ दूसरा कोई उसके हृदय की गुप्त वेदना की बात नहीं जानता। हर्ष मे भी यही हाल है। शुभ अवसर में वह उतावली नहीं होती। हर्ष का कारण उपस्थित होने पर भी आनन्द से फूल नहीं जाती।

घर में गोपीकान्त बाबू की फूफी रहती है—वही घर की मालकिन है। मनोरमा उसकी अधीनता में रहकर चलती है। हृदय से उसकी भक्ति करती है। किसी दिन ऐसा भाव प्रकाश नहीं करती कि वह जमींदार की गृहिणी है और पति की फूफी उसकी आश्रिता है।

मनोरमा उस दिन सीढी से नीचे उतर, एक कोठरी में गई और शीतल-पाटी बिछाकर लेट गई। लेटे लेटे आकाश-पाताल की कितनी ही बातें सोचने लगी। देवर ने जो कहा

उसका क्या अर्थ है ? स्वामी ने जो देवर की कुछ उलटी सीधी बातें कही थीं उन्हीं का क्या अर्थ था ? देवर ने तो कुछ खुलासा कहा नहीं, "यदि आप बुरी सगत न छोड़ेंगे"—कैसी सगत ? किसकी सगत ? बुरा कौन ? क्या कोई दुश्चरित्र व्यक्ति उनका साथी मिल गया है ? कौन साथी ?—मनोरमा ने बहुत सोच विचार कर देखा, पर किसी बात का कुछ अन्त न पाया। गाँव में उनके मित्रों में तो एक कामिनीकान्त और एक कुमुदचन्द्र है। यही दोनो बैठक में आकर प्राय उनके साथ चौसर खेलते हैं। किन्तु कभी तो कुछ गड़बड़ बात सुनने में नहीं आती। एक मित्र और हैं, वे सुमेरपुर के जमींदार हैं। गत वर्ष दोलोत्सव के समय वे बागवाले मकान में तीन चार दिन ठहरे थे। वे जब तक वहाँ रहे मेरे स्वामी भी उन्हीं के साथ रहे। एक दिन के लिए भी घर नहीं आये। गप सुनी गई थी कि एक दिन नशे में चूर होकर सीढ़ी से उतरते समय सुमेरपुर के जमींदार तलमला कर गिर पड़े, जिससे उनके सिर में सख्त चोट लगी थी। डाक्टर बुलवाया गया था। किन्तु यह तो नहीं सुना कि उनके साथ मिल कर स्वामी ने कोई अनुचित कर्म्म किया है। दोलोत्सव के बाद और भी दो तीन दफे सुमेरपुर के बाबू वाटिका-भवन में आकर रहे थे। किन्तु उनके आने से मेरे पति प्रसन्न तो नहीं, अप्रसन्न अवश्य होते थे। काशी और कलकत्ते के बाबू लोग अपने अपने बागों में जाकर अनेक प्रकार के मनमाने काम करते हैं—मनोरमा इस बात

को जानती थी। कलकत्ते के किसी रईस के साथ उसकी एक सखी का ब्याह हुआ है। उस सखी ने एक दिन मनोरमा को, अपने स्वामी के दुश्चरित्र की, कितनी ही बातें रो रो कर सुनाई थी। 'महीने में शायद ही वह किसी रात स्वामी का दर्शन पाती है। बाबू बगीचे वाले मकान मे ही रहा करते हैं।' यहाँ मेरे पति कभी कभी बगीचे के बँगले में जाते तो हैं किन्तु वहाँ रात भर नही ठहरते। जेठ के महीने मे जब गरमी खूब बढ गई थी तब सबेरे वाटिका-भवन मे जाकर नदी मे स्नान करते थे, दिन भर वहाँ रह कर विश्राम करते और कुछ रात बीतते बीतने घर लौट आते थे।

तो फिर देवर की उस बात का अर्थ क्या है? मेरे स्वामी ने जब व्यङ्ग करके उन्हें कुछ अपवाद लगाया तब देवर ने उत्तर मे कहा—"सबको अपने ही बराबर न समझ लीजिए।" इसी बात से बुरे ससर्ग की बात का प्रसङ्ग निकला। तो क्या मेरे स्वामी ने दु सङ्ग मे पड कर अपने चरित्र को भ्रष्ट कर डाला है?—इसके आगे वह और कुछ न सोच सकी। उसका सिर घूमने लगा। वह आँख मूँद कर बाँई बाँह के ऊपर मस्तक रख बडी देर तक शोच-सागर मे डूबी रही। उसकी मूँदी हुई आँखे धीरे धीरे खुलने लगीं। पलक हटते ही दो बूँद आँसू टपक पडे।

तब मनोरमा को चेत हो आया। यह क्या, मैं दोपहर को आँसू क्यों गिरा रही हूँ। इससे स्वामी का अनिष्ट होगा। वह

झट उठ बैठी। आँचल से आँखें पोछ कर, खुली खिड़की की राह से बाहर की ओर देखा। दोपहर की धूप चमचमा रही थी। सामने एक नीम का पेड़ हवा के झोंके से हिल रहा था। नीम के फूलों की कोमल सुगन्ध ने मनोरमा के मन को कुछ सयत्न किया। वह बैठ कर फिर मन को ढाढ़स दे सोचने लगी—जो सन्देह उन पर है सो झूठ है, बिलकुल झूठ है। वह कभी हो नहीं सकता। देवर ने अवश्य ही किसी अन्य विषय की बात कही होगी, यदि उसी विषय में कहा हो तो वे भूलते हैं। किसी बेजड़ की ख़बर पर विश्वास करके यह बात कही होगी। मनोरमा अपने स्वामी को भली भाँति जानती है—आज बीस वर्ष से उन्हें देख रही है। कभी घृणाक्षर न्याय से भी तो उनपर सन्देह नहीं हुआ। आज यह नई बात क्या सुनती हूँ?—असम्भव है।

किन्तु यह कृत्रिम प्रबोध अधिक देर तक उसके मन में नहीं ठहरा। उसने फिर मन में कहा, यदि यह बात अमूलक है तो देवर ने जब स्वामी को यह अपवाद लगाया तब वे उस बात का प्रतिवाद क्यों नहीं कर सके। मिथ्या कलङ्क की बात सुन कर वे चुटीले साँप की भाँति फुफकार नहीं कर उठे। उन्होंने जो उत्तर दिया, जिस भाव से बातें कीं, उससे तो यही जान पड़ा कि वे अपना दोष प्रकट होने से लज्जित और भीत हैं। तो फिर मैं किस बात को सच मानूँ?

सोचते सोचते मनोरमा की आँखों में फिर आँसू भर आये।

मकान मे चलोगी ? तुम्हारा यह कैसा विचार है ? तुम वहाँ जाकर क्या करोगी ?

"आपके पास रहूँगी। आपका शरीर अच्छा नहीं है, इसलिए आपकी सेवा-शुश्रूषा करूँगी।"

गोपी बाबू के मुँह पर उदासी छा गई। उसने कहा—नहीं, नहीं, हिन्दू घर की बहू-बेटियाँ क्या कभी बागीचे के बँगले में जाती हैं ? क्या तुम मेम साहिबा हो गई ?

मनोरमा—क्यों ? क्या बागीचे वाले मकान में हिन्दू स्त्रियों का जाना मना है ? स्वामी के साथ स्त्री जहाँ चाहेगी जायगी—इसमें दोष क्या है ?

गोपीकान्त विषम दृष्टि से स्त्री के मुँह की ओर देखकर सोचने लगा—मामला क्या है ? फिर कुछ कड़ी आवाज में कहा—नहीं, तुम नहीं जा सकती।

किन्तु उसकी स्त्री ने किसी तरह उसका साथ छोड़ना नहीं चाहा। आखिर गोपीकान्त ने, पुरुष को जैसा चाहिए वैसा क्रोध के साथ, गरज कर—"मेरा हुक्म तुम्हें मानना पड़ेगा। तुम हर्गिज नहीं जा सकती हो" कहा और वहाँ से चला गया।

उसके चले जाने पर मनोरमा बड़ी देर तक उस कोठरी में अकेली बैठी रही। फिर उठकर, आँखें पोंछ कर धीरे धीरे मोतीलाल की कोठरी के सामने जा खड़ी हुई। देखा कि मोतीलाल सायंकालिक कृत्य करके बत्ती बालकर पढ़ने का ठीक



आँखें पोंछ कर धीरे धीरे मोतीलाल की कोठरी के
सामने आ खड़ी हुई।—पृ० ७२

कि कर रहे हैं । मनोरमा वहाँ जाकर सकुचित भाव से बोली—छोटे बाबू, मैं यहाँ बैठूँ ?

"बैठिएगा ? अच्छा आइए, बैठिए" कह कर मोतीलाल ने अपनी चटाई के नज़दीक ही भावज के लिए एक आसन बिछा दिया।

भौजाई ने बैठकर पूछा—उस समय भाई के साथ क्या क्या बातें हो रही थीं ?

"किस समय ?"

"प्रयाग के उन सबों के चले जाने पर, ऊपर के कमरे में दरवाजा बन्द करके।"

मोतीलाल ने एक बार भौंह सिकोड़ कर दूसरी ओर देखा, फिर कहा—मैं ब्याह नहीं करूँगा, इस पर भैया ने क्रोध किया था।

"और क्या क्या बातें हुई थीं ?"

"इसी सम्बन्ध की बातें थीं।"

मनोरमा कुछ देर चुप रही। "छोटे बाबू ! मैं आपसे एक बात पूछती हूँ, उत्तर दीजिएगा ?"—कहते कहते उसकी आँखों में आँसू भर आये।

"भाभी, कौन बात ?"

"आपने अपने भाई से क्या कहा था कि 'मैं सब जानता हूँ। यदि आप बुरी सगति न छोड़ेंगे तो,—"

यह बात सुन कर मोतीलाल सँभल कर बैठा और उत्तर दिया— भाभी, ये बातें आपसे किसने कही हैं ?

"किसी ने नहीं कहीं—मैंने अपने कान से सुनी हैं।"

"कैसे सुनीं ?"

"जब बातचीत हो रही थी तब मैं किवाड के पास बाहर खडी थी। नहीं—नहीं, आप आँख लाल मत कीजिए—उपदेश देने की जरूरत नहीं। आप जो कहिएगा वह मैं जानती हूँ। आप यही कहेंगे कि इस तरह छिप कर दूसरे की बात सुनना अन्याय है, इत्यादि। किन्तु मैं तो आपकी तरह लिखी पढी नहीं हूँ आपकी भाँति धर्म-अधर्म की बात नहीं जानती। आप का ऐसा मुझमे मानसिक बल नहीं है। आपके भाई जब क्रोध से आँखें लाल किये हुए, पागल की तरह, तलमलाते हुए आप को ढूँढने ऊपर आये तब भी मैंने बाहर का कुछ हाल नहीं सुना था। प्रयाग से आये हुए व्यक्ति को आपने क्या कहा और क्या नहीं कहा, यह मैंने कुछ भी नहीं जाना। इसलिए मेरे मन में यह बात जानने की बडी उत्कण्ठा हुई। इसी से वहाँ जाकर चुप चाप खडी हो मैं सुनने लगी। आप लोग जो कहते हैं कि छिप कर किसी की बात सुनना पाप है, सो उस पाप का दण्ड भी मुझे हाथों हाथ मिल गया है। जब से मैंने वह बात सुनी है तब से मेरे मन मे शान्ति नहीं। मेरे हृदय मे तब से मानों आग लग रही है। असल बात आपको कहनी ही होगी।"

मोतीलाल दूसरी ओर देखने लगा। कुछ बोला नहीं।

भौजाई कुछ देर अपेक्षा करके बोली—चुप क्यों हो रहे ?

मोतीलाल ने कुछ कड़ा स्वर करके कहा—भाभी, मैं कुछ न बतलाऊँगा ।

मनोरमा ने फिर कहना आरम्भ किया—"आपने उनसे कहा था—'बड़ा भाई यदि बुरे मार्ग पर चले तो उसे रोकने का अधिकार छोटे भाई को है ।' अच्छा, अगर यही बात है तो क्या स्त्री का यह अधिकार नहीं कि वह ऐसा काम करे जिसमें स्वामी सच्चरित्र हो । बतलाइए, क्या हुआ है । जानने पर मैं प्राणपण से उसके प्रतीकार की चेष्टा करूँगी । मुझसे कोई बात मत छिपाइए । मैं सिर्फ कुतूहलवश यह बात आपसे नहीं पूछती ।" यह कहते कहते उनकी आँखों से आँसू टपकने लगे ।

बेचारा मोतीलाल बड़ी विपद में पड़ा । जिस अभिप्राय से भौजाई उसके पेट की बात जानना चाहती है वह स्वीकार करने योग्य है ।

किन्तु स्त्री के सामने स्वामी के अध पतन की बात कहने की उसकी प्रवृत्ति किसी तरह नहीं हुई । इसलिए उसने कहा—भाभी, इसमें मुझे क्यों लपेटना चाहती हो ? आप को जो कुछ समझना-बूझना हो वह आप भैया से समझ लें । यही अच्छा होगा । वे कहाँ हैं ?

आपके भाई, अभी कुछ देर हुई, बागीचे गये हैं ।

मोतीलाल चौंक कर बोला—"अयँ ! बागीचे वाले मकान

मे गये हैं।" उसका जी क्रोध से जल उठा। आज सवेरे वह घटना होजाने पर भी भैया फिर आज वहाँ गये ! एक दिन भी वे वहाँ की ग़ैरहाजिरी नहीं सह सके ? मोतीलाल की इच्छा हुई कि वह भौजाई को साथ ले वज्र की भाँति वाटिका-भवन में जा गिरे, तभी अपराधी को उचित दण्ड मिले।

भौजाई ने कहा—क्यों छोटे बाबू, इस तरह आप चौंक क्यो उठे ? वहाँ क्या किसी विपद की सम्भावना है ?

"भाभी, मुझ से मत पूछो" कहकर मोतीलाल उठ करके कोठरी से बाहर हो गया।

तब मनोरमा, बत्ती बुझा कर वहीं धरती पर बाण से विधी हुई हरिणी की भाँति लोट लोट कर रोने लगी।

आठवाँ परिच्छेद

रौनकलाल गोपीकान्त बाबू की अधीनता में नाजिर के काम पर बहाल होकर थोड़े ही दिनों में ताड़ गया कि बड़े बाबू का मन छोटे भाई के ऊपर प्रसन्न नहीं है। उनके सामने कोई मोतीलाल की प्रशंसा करता है तो वे भौं सिकोड़ लेते हैं और शिकायत करता है तो खुश होते हैं। इस बात पर वह रोज लक्ष्य करने लगा कि दोनों भाइयों में बातचीत प्रायः बन्द है। एक को देख कर दूसरा दूर ही से खिसक जाता है। पता लगाने पर रौनक को मालूम हुआ कि पहले दोनों भाइयों में किसी तरह का मनमुटाव न था— खूब सद्भाव देखा जाता था। मोती बाबू ब्याह करने को राजी नहीं होते और उन्होंने लड़कीवाले को अपमानित करके विदा कर दिया था—यह बात रौनक ने उसी दिन सुनी थी जिस दिन वह आया था। किन्तु इस बात पर उसे किसी तरह विश्वास नहीं हुआ कि इस एक ही कारण से इतने दिनों तक भाई भाई में वैमनस्य रहेगा। उसने सोचा, इसके भीतर अवश्य कोई न कोई गूढ़ कारण है। और रौनक यह भी नहीं समझ सका कि मोतीलाल के सदृश एक नवयुवक को—जिसको भोजन वस्त्र की कुछ भी कमी नहीं है—विवाह करना इस तरह अस्वीकृत क्यों है। उसके अपवित्र संकीर्ण हृदय में नाना प्रकार के सन्देह उत्पन्न होने लगे।

रौनक ने सोचा, इस रहस्य का भेद खोले विना अभिप्राय सिद्ध न होगा । भीतरी सब समाचार जाने विना वह गोपीकान्त के ऊपर अपना प्रभाव नहीं जमा सकेगा । उसका ख्याल था कि समय पाकर वह गोपीकान्त को अपनी मुट्ठी मे कर लेगा, उसका प्रिय कर्म्मचारी होकर अपना कार्य-साधन करेगा और अपने कण्टक को दूर करेगा। यदि यह न हुआ तो क्या वह पन्द्रह रुपया मासिक और दोनों साँझ दो सेर चावल के लिए ही यहाँ पड़ा रहेगा ? अतएव भीतर की बात को जैसे हो, जान लेना जरूरी है । इस कार्य की सिद्धि के लिए भीतर महल की किसी दासी को हाथ मे कर लेना सबसे बढ़िया उपाय है । यह रौनक जानता था । इसलिए वह कुछ दिन इसी फिक्र में लगा रहा ।

कमलपुर गाँव के बीच में गोपीकान्त बाबू का मकान है । मकान के सामने, सड़क के उस किनारे, एक तालाब है— उस के चारो ओर पक्के घाट बँधे हैं। तालाब के उस पार एक बहुत बड़ा मन्दिर है । उसमें नन्द के दुलारे बाँसुरीवारे श्रीकृष्ण की मोहिनी मूर्ति है । मन्दिर की बाईं ओर कुछ दूर तक मैदान है । वहाँ रोज दोनों शाम हाट लगती है । तालाब के किनारे एक छोटा सा कच्चा घर है । वह चारों ओर टट्टी से घिरा है । टट्टी पर अनेक प्रकार की जगली लताये चढ गई हैं । उसके साथ एक करेले की बेल भी फैली थी। उसके पीले पीले फूलों से वह अंश बड़ा सुहावना लगता था । इस घर मे पहले एक

रैयत रहती थी—वह घर छोड़कर भाग गई। दूसरी जगह कहीं सुभीता न होने पर रौनक ने, बाबू साहब से कहकर, यही घर अपने रहने के लिए ले लिया है। हवेली की दासियाँ पोखर के किनारे किनारे, रौनक के डेरे के सामने से होकर, कभी कभी बाज़ार को जाती थीं, किसी दिन साँझ का श्रीकृष्णजी के मन्दिर में घी-बत्ती या पूजा की कोई और सामग्री देने जाती थीं। रौनकलाल दरवाज़े के बाहर खड़ा होकर, हुक्का हाथ में लिये, तम्बाकू पीते पीते उनकी गति-विधि जाँचा करता था।

रौनक ने गुप्त खोज से मालूम किया कि गोपीकान्त के महल में बसन्ती नाम की एक पुरानी दासी है और उसी का प्रताप सबसे बढ़कर है। वह जाति की ग्वालिन है। उसने यह भी पता लगा लिया कि वह बालविधवा है। गोपालपुर में उसका ब्याह हुआ था। यह गाँव कमलपुर से तीन ही चार कोस दूर है। विधवा होने के कुछ ही दिन बाद बसन्ती बाबू साहब की हवेली में नौकर होगई। उसके नैहर में कोई नहीं है। ससुराल में भी कोई उसकी खोज खबर लेने वाला नहीं। रौनक ने छिपकर इन बसन्ती को देखा। उसका चेहरा देखकर अच्छी तरह समझ गया कि औरत बड़ी ही सीधी है। मुँह उसका गोल है। अन्यान्य दासियाँ हँसी मे उसे चकोतरा नीबू कहती थीं। कपार के बीच में एक गोदना का दाग है। रङ्ग गेंहुआ है। उम्र चालीस वर्ष के करीब होगी। उसे देखकर रौनक ने स्थिर किया कि यह अच्छा शिकार हाथ लगा है। इसे एक बार फन्दे में

फँसा सकूँ तो यह आपही मेरे हाथ की कठपुतली बन जायगी। इसलिए किस उपाय से वसन्तो मेरे पास आ सकेगी, इसी चिन्ता में रौनक का चित्त डूबा रहता था।

जब सम्पूर्ण रूप से षड्यन्त्र का भाव रौनक के सिर पर नाचने लगा तब वह मालिक से एक दिन की छुट्टी लेकर गोपालपुर गया। वहाँ गुप्त रूप से उसने वसन्तो की ससुराल का सब वृत्तान्त, ससुराल के लोगों का नाम, उनके जन्म-मृत्यु की तारीख और जानने योग्य जितनी अन्यान्य बातें थीं वे सब लिखलीं।

दूसरे दिन दस बजे रौनक तालाब में स्नान कर जब घर आ रहा था तब देखा कि महल की एक दासी अपनी बगल में टोकरी दबाये बाजार से लौटी जा रही है। उसे देखते ही रौनक ने कहा—क्या तुम बाबू साहब के महल की नौकरनी हो?

इस अप्रत्याशित प्रश्न से वह औरत ठिठक कर खड़ी हो गई। बोली—हाँ, क्यों?

"तुम कौन ठाकुर हो?"

"मैं मल्लाहिन हूँ।"

"अच्छा मैं तुम से पूछता हूँ, बाबू साहब के महल में कोई अहीरिनी है?"

"हाँ, है—दो अहीरिनियाँ हैं। कहिए क्या उनसे कुछ काम है?"

"गोपालपुर को तो तुम जानती होगी । उस गोपालपुर में हमारे बहुतेरे सम्बन्धी हैं। मैंने सुना था, उन्हीं के घर की कोई औरत इन हवेली में दासी का काम करती है। वह बेचारी बहुत ही कम उम्र में विधवा हो गई थी । स्वामी के घर जाने का भी सौभाग्य उसे प्राप्त नहीं हुआ । ऐसी कोई औरत हवेली में काम करती है ?"

"हाँ, करती है। वसन्ती का व्याह गोपालपुर में हुआ था । वह जाति की अहीरिन भी है । कम उम्र में बेवा भी हो गई थी । आप क्या उसी की बात पूछते हैं ?"

"हाँ, उसका नाम वसन्ती ही है । अपने गाँव से जब आ रहा था तब रास्ते में दो दिन गोपालपुर में ही रह गया। वसन्ती के ससुर का नाम मोहन था । मेरे दादा ने उस मोहन से कुछ रुपया उधार लिया था। अब मेरे दादा भी नहीं है, और मोहन भी संसार से कूच कर गये हैं। मैंने सोचा, बाप दादे का कर्ज रखना ठीक नहीं । वह चुका देना ही उचित है, विशेष कर जब कि हाथ में कुछ रुपया भी मौजूद हो । किन्तु वसन्ती के ससुर का जो चचेरा भाई है उसने रुपया लेने से इनकार कर कहा,—'वह रुपया मैं नहीं ले सकता। तुम कमलपुर जाते ही हो, वहाँ बाबू साहब की हवेली में मेरे जेठे भाई की पतोहू दासी का काम करती है । इन्साफ से वही उनकी हकदार है, उसी को दे देना ।' सो तुम अपनी वसन्ती से जाकर कहो, वह एक दिन किसी वक्त यहाँ आकर रुपया ले जाय ।"

औरत ने कहा—अच्छा, मैं अभी जाकर वसन्ती से कहूँगी।

दो दिन बीते, चार दिन बीते—किन्तु वसन्ती का दर्शन नहीं। सप्ताह बीत गया, तो भी वसन्ती रुपया लेने नहीं आई।

नवदेवी-पूजा का समय उपस्थित हुआ। चौथ तक दफ़्तर का काम जारी था। पञ्चमी को दफ़्तर बन्द हुआ। अमलों को छुट्टी मिली। षष्ठी को पाँच बजे सन्ध्या समय रौनक शयन-गृह के बरामदे में एक चटाई पर बैठा तम्बाकू पी रहा था। इसी समय सदर दरवाजे से एक स्त्री की आवाज सुन पड़ी—नाजिर बाबू हैं ?

"कौन है" कहकर रौनक ने ज्योंही भीतर आने की आज्ञा दी त्योंही वह स्त्री कपड़े से ढकी हुई थाली हाथ में लिये आ खड़ी हुई। रौनक ने देखा, वसन्ती है। मन में कहा, फन्दे में फँसाया तो। किन्तु मुँह पर वह भाव प्रकाश न करके बिलकुल अपरिचित की तरह पूछा—तुम कौन हो ?

"मैं बाबू साहब की हवेली की दासी हूँ।"

"तो तुम बाबू साहब की हवेली में काम करती हो ? आओ, आओ, बैठो। कहो, किधर आई ?"

वसन्ती बैठी नहीं, खड़ी खड़ी बोली—समधी के यहाँ से पूजा का प्रसाद आया था। मालकिन ने कहा, सब अमलों के घर जाकर प्रसाद दे आओ।

"प्रसाद लाई हो ? अच्छा लाओ, यहाँ रक्खो।"

दासी थाल रखकर खड़ी रही।

रौनक ने कहा—मालकिन की बड़ी कृपा है। अच्छा, यह तो बताओ,—तुम लोगों की साथिन बसन्ती नाम की कोई दासी हवेली में काम करती है? वह जाति की अहीरिन है?

बसन्ती ने मन में कहा, अपना परिचय नहीं दिया सो अच्छा ही किया। पहले समझ तो लूँ कि बात क्या है। इसलिए वह बोली—क्यों?

रौनक—बसन्ती तो अपने घर की है। गोपालपुर में जिसके घर उसका ब्याह हुआ था वे हमारे कुटुम्बी हैं। हमारे दादा और बसन्ती के ससुर इन दोनों में बड़ी मित्रता थी।

बसन्ती कपट करके बोली—आपने बसन्ती को कभी देखा भी था?

'देखा क्यों नहीं था, किन्तु यह मुद्दत की बात है। तब उसका ब्याह भी नहीं हुआ था। जब वह दस ग्यारह वर्ष की थी तभी उसे देखा था। उस समय उसका कैसा मनोहर रूप था मानो तुरन्त का खिला गुलाब का फूल हो। किन्तु उस बेचारी का भाग्य अच्छा न था—उसके नसीब में सुख नहीं लिखा था। ब्याह के दो वर्ष बीतते न बीतते वह विधवा हो गई। मेरा भी नसीब फूटा ही था। जिसके साथ जिसका भवितव्य लिखा रहता है उसे कौन मिटा सकता है? नहीं तो आज न बसन्ती विधवा होती और न मुझी को यह कष्ट भोगना पड़ता?" कह कर रौनक ने एक लम्बी साँस ली।

चमन्ती अन्तिम वाक्य का अर्थ कुछ भी नहीं समझी । उसने पूछा—आप यह बात क्यों कहते हैं ?

रौनक़ ने फिर ठण्ढी साँस ले कर कहा—यह सुन कर अब क्या करोगी ? जो हो गया, उसका तो कोई उपाय नहीं है ।

"क्या हो गया ?"

"सुन कर क्या करोगी ? तुम अभी जाकर वसन्ती से कहोगी—उसका मन भी दुखी होगा ।"

वसन्ती का कुतूहल और भी बढ गया। "नहीं, मैं वसन्ती से कुछ न कहूँगी। हर्गिज नहीं । आपकी सौगन्द, नहीं कहूँगी । कहिए क्या हुआ था ?" कह कर वह वहीं बैठ गई ।

तब रौनक़ ने कहना शुरू किया—"यह जो वसन्ती है—उसके साथ तो पहले मेरा ही ब्याह होने की बात थी । सब ठीक ठाक हो गया था । दिन भी मुकर्रर हो चुका था । किन्तु लडकी को अत्यन्त सुन्दरी देख कर मोहन ने मेरे दादा से अनुरोध करके कहा—'भाई साहब, इस लडकी के साथ मेरे छोटे लडके नवीन का ब्याह होने दीजिए—ऐसी लडकी फिर न मिलेगी । यह हमारे गाँव की है । तुम यहाँ से बहुत दूर रहते हो, उन जिलों में कितनी ही खूबसूरत लडकियाँ मिलेगी । वहाँ किसी अच्छी लडकी के साथ अपने लडके का ब्याह कर देना किन्तु जो यह लडकी हाथ से निकल गई तो मेरे लडके के भाग्य में फिर ऐसी नहीं मिलेगी ।' मेरे दादा भी बडे ही सज्जन थे—उनकी आँख में बडी मुरौवत थी । उन्होंने उनकी बात

मान ली। नवीन के साथ वसन्तो का व्याह हो गया। मेरे मन की साध मन ही में रह गई। कहीं मेरा भी व्याह हो गया। कुछ दिन बाद वसन्तो वेवा हो गई। इधर मेरी स्त्री भी मर गई। यदि उसके साथ मेरा व्याह हुआ होता तो न वह विधवा होती और न मेरी ही यह दशा होती। न जानें कितना सुख होता! परन्तु किस्मत! मेरा दौर्भाग्य!" कह कर रौनक ने अपना कपार ठोंका।

यह सुन कर वसन्तो चुप हो रही। रौनक की सूरत-शकल उसे अच्छी नहीं लगी। इसीसे उसके साथ व्याह न होने का अफसोस उसको नहीं हुआ। किन्तु रौनक ने जो बात कही वह वसन्तो को सुनने में बहुत प्रिय लगी। रौनक ने कहा है, छोटी उम्र में गुलाब के फूल की तरह उसका चेहरा खिला था। सो खिला तो सचमुच था। यह सुन कर किस रमणी के कान तृप्त नहीं हो सकते? ऐसा भी एक आदमी संसार में है जो वसन्तो को न पाने से हाथ मल मल कर पछता रहा है। भले ही उसके सिर के बाल उड़ गये हों—भले ही उसकी दाढ़ी-मूँछ खजूर की पत्ती की तरह होगई हो—फिर भी उसके मुँह से यह बात सुनने में अच्छी लगी।

वसन्तो सोचने लगी, अब परिचय देना उचित है या नहीं। परिचय न दे तो दस रुपये की चर्चा कैसे चलेगी? किन्तु रौनक ने मेरी खूबसूरती की तारीफ करके अभी इस प्रसङ्ग को खतम किया है। इसलिए तुरन्त अपना परिचय देने में उसे

साल में छ आने हुए। बीस वर्ष का सूद हुआ एक सौ बीस आना अर्थात् साढे सात रुपया। असल चार रुपया सूद मिला कर हुआ साढे ग्यारह, रुपया। कहो ठीक हुआ न ? आठ आना मुझे रियायत करना होगा। बाकी ग्यारह रुपया तुम पाओगी—कहो, क्या कहती हो ?

"मैं क्या कहूँगी ? जो आपक धर्म में आवे वही कीजिए।"

"ठीक कहती हो। तुम्हारा कहना उचित है। यदि मुझे धर्म का ज्ञान न रहता तो मैं आप ही तुम्हें बुला कर अपने हाथ का रुपया क्यों देता ? अगर मैं तुमसे इस कर्ज का हाल नहीं कहता तो तुम इसका जरा भी पता नहीं जान सकतीं। और जान कर ही क्या कर लेतीं—अगर मेरे बाप का दस्तखती तमस्सुक ही तुम्हारे हाथ में रहता तो तुम क्या करतीं ? उसकी मियाद तो कभी की गुजर गई होती। मियाद की मियाद—उसकी भी मियाद गुजर गई। किन्तु मैं बड़ा ही धर्म-भीरु हूँ। अगर कोई मेरा गला भी काटे तो भी मुझसे अधर्म का काम न होगा। जरा बैठो। बक्स खोल कर देखता हूँ, रुपये पैसे कुछ हैं या नहीं ?"

घर के भीतर जाकर रौनक ने बक्स खोला। बाहर आकर कहा—इसी से कहता था—सब रुपया तो अभी नहीं हो सका। छ रुपया मौजूद हैं, यह लिये जाओ। बाकी ५) किसी से उधार लेकर रक्खूँगा। कल इसी समय आकर ले जाना।"

बसन्ती ने छ· रुपये पाकर, सबको एक एक कर अँगूठे



बाहर आकर कहा—इसी से कहता था—सब रुपया तो अभी नहीं हो सका ।—पृ० ८८

मे अच्छी तरह बजा लिया । उन्हें आँचल के खूँट मे बाँधते बाँधते बोली—कल आऊँ तो वे रुपये जरूर मिल जायँगे ?

"क्यों नहीं मिलेंगे ? तुम्हारे हक के रुपये कहाँ जायँगे ?" कह कर रौनक ने उसकी आशा को पुष्ट कर दिया ।

मुँह में एक पेड़ा डाल कर बोला—वाह, बहुत बढ़िया पेड़ा है—खासा पेड़ा है। वसन्ती, तुम भी दो एक खाओगी ?

वसन्ती ने सिर हिला कर अस्वीकार किया । रौनक ने और दो पेड़े खा कर कहा—बहुत उमदा पेड़ा है। मथुरा जी के पेड़े से भी बढ़ कर है । उन्नाव का भी पेड़ा इसकी बराबरी नहीं कर सकता । वसन्ती, जरा तकलीफ करो, घड़े से एक गिलास पानी ढाल कर तो दो ।

रौनक की ढिठाई बुरी लगने पर भी नकद छ रुपया पाकर वसन्ती का मन पिघल गया था । घड़े से एक गिलास पानी ले कर उसने रौनक के आगे ला रक्खा । रौनक ने एक बार वसन्ती के मुँह की ओर देख कर, एक लम्बी साँस ले, गिलास का पानी बड़ी तृप्ति से पिया। गिलास को नीचे रख, सिर हिला हिला कर मानो अपने मन में कहने लगा—फूटे कपार में भी इतना सुख लिखा था ।

तब तक वसन्ती दरवाजे के पास पहुँच गई थी, वह एक बार पीछे की ओर तिरछी नजर से देख मुस्कुरा कर बाहर हो गई ।

नवाँ परिच्छेद

रौनक के चेहरे पर जो उदासी का बादल छाया था वह वसन्ती के चले जाने पर दूर हो गया और कौतूहल की एक अपूर्व शोभा झलकने लगी। पानदान से एक बीड़ा पान मुँह में रख, हुक्का हाथ मे ले झूम झूम कर वह खूब हँसने लगा और मन मे कहने लगा—"इस औरत को आज खूब चकमे में डाला है। आज रात को इसे नींद न आवेगी। रात भर यही सोचेगी—'अहा, इसी के साथ यदि मेरा ब्याह हुआ होता, तो आज मैं कितने सुख मे रहती। मेरी उम्र कुछ ज्यादा हो गई है सही, तो भी चेहरे पर अब भी रौनक है।' रौनक बड़े चाव से हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। कुछ देर बाद हुक्के को हाथ से रख कर सोचने लगा—आज छ रुपया पानी मे फेंक दिया है। किसी जन्म मे मेरे दादा से इसके ससुर की भेंट नहीं। फिर भी मैंने बड़ी सफाई से कह दिया कि मेरे दादा ने तुम्हारे ससुर से रुपया कर्ज लिया था। इतना ही नहीं, दो पैसे महीने सूद भी देना स्वीकार कर लिया। तो मेरा यह रुपया क्या योंही पानी में चला जायगा? छः गये हैं, पाँच और जायँगे। जायँ। मनुष्य वंसी का चारा भी तो पानी मे फेंकता है। देखें, कितनी बड़ी मछली वंसी में फँसती है। बाक़ी पाँच रुपये अभी मैं उसे थोड़े ही देता हूँ। मुन्शी रौनकलाल

ऐसे बेवकूफ नहीं । अभी कितने ही दिनों तक सब्ज बाग दिखाऊँगा । एक एक कर उसके पेट की बात निकालूँगा । एक एक कर रुपया दूँगा । किन्तु जब कुल रुपया दे दिया जायगा तब? तब देखा जायगा । तब फिर कोई नई चाल चलनी होगी ।

दूसरे दिन सप्तमी की पूजा के बाजे बजने लगे । रौनक ने सवेरे ही उठ कर मुँह हाथ धो स्नान कर लिया । बाबू साहब के मकान से शुरू कर के कई एक जगहों में काली का दर्शन करते करते आधा दिन बिता डाला । दोपहर के बाद बसन्ती के आने का इन्तजार करके बैठे बैठे दो तीन चिलम तम्बाकू जला डाली, किन्तु वह न आई । दूसरा दिन भी बीता, पर बसन्ती का दर्शन न हुआ । नवमी पूजा के दिन अकेला बैठ कर रौनक सोच रहा था । ग्यारह बजे दिन का समय था, तब सदर दरवाजे से बसन्ती का कण्ठस्वर सुन पड़ा—नाजिर बाबू, आज सूद का कुछ रुपया दीजिएगा ?

रौनक ने बाहर आकर कहा—बसन्ती, आओ, आओ।

बसन्ती आँगन में आ खड़ी हुई । रौनक ने कहा—बैठो न, खड़ी क्यों हो ?

"नहीं, अभी तुरन्त लौट जाऊँगी । देर तक बैठने की फुरसत नहीं ।"

"ज्यादा देर नहीं बैठ सकती तो कुछ देर भी तो बैठो । तुम्हारी कैसी बुद्धि है ? मैं रोज तुम्हारे आने की राह देखता था । तुम्हारा तो दर्शन दुर्लभ हो गया ।"

वसन्ती ने [illegible]ा, फिर इसने मायाजाल फैलाना आरम्भ किया। वह [illegible]कर मुस्कुराती हुई बोली—भला पानेवाले के लिए देने वाला राह क्यों देखेगा?

रौनक ने जरा मुँह उदास करके कहा—तुम क्यों न हँसोगी? तुम्हारी उम्र में हम भी बात बात में यों ही हँसते थे। तुमने मुझे आशा देकर निराश कर दिया। ये कई दिन मेरे लिए किस कष्ट से बीते हैं, यह मैं जानता हूँ या मेरा धर्म जानता है।

वसन्ती ने हँसी छिपाने की चेष्टा करके कहा—क्या कष्ट?"

"वह मैं तुमसे क्या कहूँ? मैंने तीन दिन से कुछ नहीं खाया है।"

"क्यों नहीं खाया?"

"एक सपना देखा था, इसी से कुछ नहीं खाया है।"

इस बार वसन्ती का कुतूहल विशेष रूप से जाग उठा—स्वप्न देखा था, इसलिए तीन दिन से नहीं खाया है। अवश्य ही इसके भीतर कोई अद्भुत रहस्य है। उसने पूछा, "क्या स्वप्न देखा?"

रौनक ने सिर हिला कर कहा—यह तुमसे नहीं कहूँगा। तुम सबसे कहती फिरोगी।

वसन्ती ने सोचा—ठीक वही बात है। शायद किसी देवी ने स्वप्न दिया है, तीन दिन उपवास करके अमुक स्थान में खोजने से अमुक जड़ी मिलेगी—या अमुक स्थान खोदने से रुपया

मिलेगा। या ऐसा ही कोई गुप्त विषय होगा। इसलिए वह बड़ी व्यग्रता के साथ बोली—मैं किसी से नहीं कहूँगी। जीभ कट जाने पर भी न कहूँगी।

रौनक़ ने गम्भीरतापूर्वक कहा—स्त्रियों का विश्वास क्या?

बसन्ती—क्यों? स्त्रियाँ क्या ऐसी हलकी होती हैं? इतनी वाहियात होती हैं? स्त्री न रहती तो संसार ही न चलता।

रौनक़ ने कुछ टालमटोल करने का भान दिखा कर कहा—किसी से नहीं कहोगी, सौगन्द खाओ। मेरा पैर छूकर सौगन्द खाओ।

बसन्ती ने एक बार चकित दृष्टि से दरवाज़े की ओर देख कर रौनक़लाल का पैर छूकर क़सम खाई।

तब रौनक़ ने कोमल स्वर से कहना आरम्भ किया—देखो, बसन्ती! तुम तो उस दिन साँझ को रुपया लेकर चली गई और तुम्हारी बात सोचते सोचते मैं यहीं सो गया। उसके बाद जो सपना देखा वह कहता हूँ, सुनो।

बसन्ती कुतूहल भरे स्वर में बोली—हाँ कहिए।

रौनक़ धीरे धीरे यों कहने लगा—स्वप्न यही देखा कि तुम रसोईघर के उसारे में बैठ कर मेरे लिए भात परोस रही हो। तुम लाल किनारे की पीली साड़ी पहने हो, माँग में सेंदुर है, और हाथ में लाख की चूड़ियाँ हैं। थाली में रसोई परोस कर

वसन्ती ने देखा, फिर इसने कियाजाल फैलाना आरम्भ किया। वह हँसकर मुस्कुराती हुई बोली—भला पानेवाले के लिए देने वाला राह क्यों देखेगा ?

रौनक ने जरा मुँह उदास करके कहा—तुम क्यों न हँसोगी ? तुम्हारी उम्र में हम भी बात बात में यों ही हँसते थे। तुमने मुझे आशा देकर निराश कर दिया। ये कई दिन मेरे लिए किस कष्ट से बीते हैं, यह मैं जानता हूँ या मेरा धर्म जानता है।

वसन्ती ने हँसी छिपाने की चेष्टा करके कहा—क्या कष्ट ?"

"वह मैं तुमसे क्या कहूँ ? मैंने तीन दिन से कुछ नहीं खाया है।"

"क्यों नहीं खाया ?"

"एक सपना देखा था, इसी से कुछ नहीं खाया है।"

इस बार वसन्ती का कुतूहल विशेष रूप से जाग उठा—स्वप्न देखा था, इसलिए तीन दिन से नहीं खाया है। अवश्य ही इसके भीतर कोई अद्भुत रहस्य है। उसने पूछा, "क्या स्वप्न देखा ?"

रौनक ने सिर हिला कर कहा—यह तुमसे नहीं कहूँगा। तुम सबसे कहती फिरोगी।

वसन्ती ने सोचा—ठीक वही बात है। शायद किसी देवी ने स्वप्न दिया है, तीन दिन उपवास करके अमुक स्थान में खोजने से अमुक जड़ी मिलेगी—या अमुक स्थान खोदने से रुपया

मिलेगा। या ऐसा ही कोई गुप्त विषय होगा। इसलिए वह बड़ी व्यग्रता के साथ बोली—मैं किसी से नहीं कहूँगी। जीभ कट जाने पर भी न कहूँगी।

रौनक ने गम्भीरतापूर्वक कहा—स्त्रिया का विश्वास क्या?

वसन्ती—क्यों? स्त्रियाँ क्या ऐसी हलकी होती हैं? इतनी वाहियात होती हैं? स्त्री न रहती तो ससार ही न चलता।

रौनक ने कुछ टाल मटोल करने का भाव दिखा कर कहा—किसी से नहीं कहोगी, सौगन्द खाओ। मेरा पैर छूकर सोगन्द खाओ।

वसन्ती ने एक बार चकित दृष्टि से दरवाजे की ओर देख कर रौनकलाल का पैर छूकर कसम खाई।

तब रौनक ने कोमल स्वर से कहना आरम्भ किया—देखा, वसन्ती! तुम तो उस दिन साँझ को रुपया लेकर चली गई और तुम्हारी बात सोचते सोचते मैं यहीं सो गया। उसके बाद जो सपना देखा वह कहता हूँ, सुनो।

वसन्ती कुतूहल भरे स्वर में बोली—हाँ कहिए।

रौनक धीरे धीरे यों कहने लगा—स्वप्न यही देखा कि तुम रसोईघर के उसारे में बैठ कर मेरे लिए भात परोस रही हो। तुम लाल किनारे की पीली साड़ी पहने हो, माँग में सेंदुर है, और हाथ में लाख की चूड़ियाँ हैं। थाली में रसोई परोस कर

तुमने मुझे पुकारा, मैं जाकर खाने बैठा। यह खाइए, वह खाइए कह कर तुम बड़े यत्न से मुझको खिलाने लगीं। जब आधा भोजन हो गया, तब तुम ज्योंही झट से उठ कर मेरे लिए दही लाने गईं त्योंही तुम्हारी साड़ी की फरफराहट और जेवर की झनझनाहट से मेरी नींद टूट गई। उठ कर बड़ी देर तक बिछौने पर चुपचाप बैठा रहा। और दिन अपने हाथ से रात को चूल्हा जलाता और रसोई बनाता खाता था, पर उस दिन कुछ न किया। तुम जो पेड़े देगई थीं, उन्हीं में से दो पेड़े मुँह में डाल कर गिलास भर पानी पी सो रहा। नींद काहे को आवेगी। पड़ा पड़ा सोचने लगा—हाय रे मेरा अभाग्य! यह सभी तो होता पर मेरे अभाग्य ने कुछ न होने दिया। तुम्हारे ही साथ मेरे व्याह की बात हुई थी। सब ठीक ठाक हो गया था। तुम्हीं तो बारहो मास, तीसो दिन, भात रींध कर मुझे खिलातीं और मेरी आँखों के सामने बैठी रहतीं। सारी रात मैं इसी बात को सोचता रह गया। दूसरे दिन भगवती का दर्शन करके आया और आग सुलगा कर ज्योंही रसोई बनाने गया त्यों ही सपने की बात याद आ गई। बस, सब ज्यों का त्यों पड़ा रह गया। रसोई पानी कुछ न हुआ। फिर वही दो पेड़े खा कर एक गिलास जल पी लिया। मन की व्याकुलता से कोई काम न किया—चुपचाप चारपाई पर जाकर सो रहा। दोनो साँझ वही तुम्हारे लाये दो एक पेड़े खाकर तीन दिन से प्राण बचाता आ रहा हूँ।

ऐन दोपहर के सन्नाटे में वसन्ती जादू में जकड़ी सी इस प्रेम-गर्भित मधुर कथा को बड़े ध्यान से सुन रही थी। कथन समाप्त होने पर बोली—क्या कहा, तीन दिन से नहीं खाया ?

"तुम्हारी सौगन्द खा कर कहता हूँ, कुछ नहीं खाया है। तुम्हारी देह छू कर कहता हूँ।" यह कह कर वसन्ती का एक हाथ रौनक ने अपने दोनों हाथों के बीच दाब रक्खा।

वसन्ती का मन पिघल कर पानी हो गया था। इससे रौनक का यह काम उसे अप्रिय नहीं लगा। उसने अपना हाथ छुड़ाने की कोई चेष्टा न की। धीरे धीरे बोली—यह कहाँ की बात है ? इस तरह बिना खाये कै दिन रहोगे ?

रौनक ने आँसू भरी आँखें धरती की ओर स्थापित कर के कहा—जब तक तुम मुझसे पुनर्विवाह न करोगी, जब तक तुम अपने हाथ से रसोई बना कर न खिलाओगी। आज-कल तो विधवा-विवाह खूब हो रहा है।

वसन्ती धीरे धीरे अपना हाथ छुड़ा अपने गाल पर रख कर बोली—राम राम ! आप यह क्या कहते हैं ? विधवा-विवाह ! छि छि ! यह क्या हमें शोभेगा ? हमारी अवस्था बीत गई। मुझे यह बात नहीं सुहाती। कहीं भली औरतें ऐसा करती हैं ?

रौनक ने निन्दा-व्यञ्जक स्वर में कहा—तुम्हें दुनिया की

कुछ भी खबर नहीं। आज-कल तो अच्छे अच्छे लोगों के घर धड़ल्ले से विधवा-विवाह होता है।

वसन्ती—ऐसे अधर्म की बात मत बोलिए। भले घर में विधवा-विवाह होने से कहीं धर्म बच सकता है?

रौनक़ ने बड़ी प्रौढ़ता से कहा—एक बार काशी जाकर बड़े बड़े पण्डित, महामहोपाध्याय और ज्योतिषियों से पूछ देखो।

"पण्डित क्या कहते हैं?"

"कहते हैं कि शास्त्र में विधवा-विवाह लिखा है। विधवा-विवाह में कोई दोष नहीं।"

कुछ देर चुप रह कर वसन्ती बोली—सच कहिए?

"सच नहीं तो क्या मैं झूठ कहता हूँ।"

यह सुन कर वसन्ती चुप हो बैठ रही। रौनक भी उदास मुँह करके चुप हो रहा। थोड़ी देर में बोला—तो तुम क्या कहती हो? मुझसे ब्याह करोगी न? बाप की बुद्धि के दोष से मैं अपने हक़ से ठगा गया।

वसन्ती कुछ न बोली। तब रौनक़ उससे बार बार पूछने लगा। आखिर में वह बोली—छि मुझसे यह बात न कहिए। आप नहा कर भोजन कीजिए। इस तरह भूखे रहना ठीक नहीं।"

यह बात मैं तुमसे न कहूँगा तो किससे कहूँगा? इस संसार में मेरे और कौन है? न माँ है न बाप, न भाई। मैं पहले ही से जानता हूँ कि तुम मेरी बात पर राजी न होगी। मेरे पास

क्या है जो देख कर तुम भूलोगी ? न रूप है, न गुण है, न धन है । अच्छा राजी नहीं होती तो मत हो, पर मुझसे भोजन करने को तो न कहो । मर जाना ही अब मेरे लिए अच्छा है ।" यह कह कर रौनक नीचा सिर करके बैठ रहा ।

बसन्ती ने सान्त्वना के स्वर में कहा—देर हो गई । उठिए । रसोई पानी का ठीक कीजिए । ला, तब तक मैं चूल्हा जलाये देती हूँ । मुझे समय नहीं है । जल्द जाना है ।

रौनक—नहीं बसन्ती, चूल्हा मत जलाओ । मैंने तो प्रतिज्ञा ही की है कि तुम आकर यदि किसी समय रसोई बना दोगी तो खाऊँगा, नहीं तो नहीं ।

"अभी तो मुझे समय नहीं है ।"

रौनक इस वाक्य से प्रफुल्लित होकर बोला—तो उस वक्त ? अच्छा, उस वक्त आकर रसोई कर देना ।

"अच्छा, जो समय मिलेगा तो आऊँगी । अभी तो आप रोटी बना कर खाइए ।"

"कभी नहीं । आज भी तुम्हारा वही पेडा खाकर पानी पिऊँगा । मैं तो उसे भी न खाता, पर यही सोच कर खाता हूँ कि मेरी बसन्ती यह पेडा दे गई है—यह उसी के हाथ का लाया हुआ पकवान है ।"

"अच्छा तो कुछ और भी खाकर पानी पीलो । शरीर को कष्ट नहीं देना चाहिए । मैं साँझ होने पर चुपचाप आऊँगी और तुम्हें रसोई बना कर खिला जाऊँगी । अभी जाती हूँ ।"

बड़ी कृतज्ञता का भाव दिखाकर रौनक बोला—बसन्ती, तुम ने मेरे प्राण बचा लिये। कहां से मेरे जी में जी आया है। किन्तु उस बात का तो कुछ जवाब नहीं दिया।

“किस बात का ?”

“असल बात का। ब्याह की बात का।”

“यह बात उस समय होगी। अभी क्षमा कीजिए” कह कर लज्जा से सिकुड़ कर मुस्कराती हुई बसन्ती चली गई।

दसवाँ परिच्छेद

दमन्ती के चले जाने पर रौनक मुँह में कपडा लगा खिलखिला कर हँसने लगा। फिर धीमे स्वर मे बोला—"इस औरत के साथ मैंने अच्छा प्रणयसूत्र जोडा है। जो हो, इसका हृदय विलक्षण रूप से पिघल गया है, इसमें सदेह नहीं। घर के भीतर पैर रखते ही बोली—'कुछ सूद का रुपया दीजिएगा?' किन्तु प्रजापति देवता की ऐसी महिमा कि ब्याह की बात सुनकर रुपये की बात एक-दम भूल गई।" हाथ में चिलम लेकर रौनक ने देखा, आग बुझ गई है। तब तम्बाकू भरते भरते मन की उमग मे गुनगुनाकर वह गाने लगा—

"फिरति कान कुञ्जन में प्यारी।

कान्ह कान्ह गोहरावति चहुँ दिस पहिरि पीत पट सारी॥

अहा! किसी कवि ने क्याही अच्छा गीत बनाया है।

तम्बाकू भरते भरते रौनक रसोई-घर में गया। आग सुलगाने के लिए हाथ में लकडी लेकर सोचने लगा—मैंने आपही अपने को विपद में डाला है। अभी कैसे रसोई बनाऊँ? चूल्हा जलाते ही तो धुआँ निकलेगा—क्या जाने, कहीं वह औरत देख ले। तब तो सभी पोल खुल जायगी! अब ठीक दोपहर का समय हो गया। भूख से पेट जल रहा है। पेट की आग क्या खाकर बुझाऊँ? लकडी फेंक कर छींके से कटोरदान

उतार कर देखा तो रात की बासी पूरियाँ और तरकारी रक्खी थी। झट स्नान करके, वही खाकर किसी तरह पेट की आग बुझाई। भोजन करके चारपाई पर बैठा और पान चबाते चबाते सोचने लगा—अच्छा न हुआ, एक साँझ आध पेट ही सही। अभी रसोई बनाना ठीक न होता। उस वक़् औरत से कितनी ही कामों की बातें निकालूँगा। लिखा भी तो है—"मिलै न दुख बिन सुख कर राजू।" कुछ कष्ट उठाये बिना काम कैसे चलेगा?

योंही सोच विचार में सारा दिन कट गया। साँझ होने पर बसन्ती धीरे धीरे आ पहुँची। आँचल के भीतर से एक केले का फूल निकाल कर बरामदे में रक्खा।

रौनक़ ने फूल हाथ में लेकर कहा—वाह! बहुत बढ़िया फूल है। यह तुम्हें कहाँ मिला?

बसन्ती ने कहा—आपको केले के फूल की तरकारी भाती है?

"वाह! खूब अच्छी लगती है। आज छ वर्ष से इनकी तरकारी नहीं खाई। कहाँ से लाई हो?"

"आते समय अन्दर के बगीचे से तोड़ कर लेती आई हूँ। रसोई बनाने के लिए बर्तन, दाल-चावल आदि कहाँ है? कुछ नहीं देखती।"

रौनक़ ने ऐसा भाव प्रकाश किया, मानो वह बसन्ती को देख कर ही आकाश का चाँद हाथ में पा गया। बोला—

अब तुम आही गई हो, रसोई हो तो भी अच्छा, न हो तो भी अच्छा।

बसन्ती बोली—जाओ, जाओ, हँसी मत करो। चूल्हा चौका दिखा दो। तब तक अदहन चढ़ा कर केले का फूल काट लेती हूँ। मुझे दस बजे रात के भीतर फिर लौट जाना होगा। मालकिन आने कब देती थी? उस महल्ले में मेरी भतीजी आई है, यह बहाना करके कितनी विनती की है तब कहीं छुट्टी मिली है।

तब रौनक रसोई का सब ठीक ठाक करने लगा। भाण्डार-घर से चावल, दाल, नमक, आटा तेल, मसाला और तर-कारी आदि निकाल लाया। दियासलाई से ईंधन धधका कर चूल्हा जला दिया। बसन्ती चूल्हे के पास बैठ कर रसोई बनाने लगी। रौनक कुछ फासिले पर एक चटाई पर बैठ बड़ी ख़ुशी से तम्बाकू पीने लगा।

रौनक ने बातों ही बातों में, हिकमत से, बसन्ती का बहुत कुछ हाल जान लिया। वह विधवा होने के बाद बीस वर्ष से बाबू साहब की हवेली में काम करती है। उस पर सबका अत्यन्त विश्वास है। नौकरी करके बसन्ती ने कुछ रुपया भी जमा किया है। कुछ रुपया तो उसने ज्यादा सूद पर लोगों को कर्ज दिया है और कुछ पीतल के लोटे में डाल कर कहीं गुप्त स्थान में गाड़ रक्खा है। कहाँ गाड़ रक्खा है, यह जानने के लिए रौनक का जी छटपटाने लगा। परन्तु यह सोच कर कि

कहीं बसन्ती को मुझ पर सन्देह हो, इस विषय में बहुत पूछ ताछ नहीं की। असल मय सूद सब मिला कर कितने रुपये हैं, यह स्पष्ट रूप से नहीं पूछा सिर्फ यही कहा—सूद महीने महीने वसूल करते जाना ही ठीक है। जानती हो, सूद का हिसाब छोड देने से क्या होता है? अन्त में सूद और मूल दोनों चले जाते हैं। सूद बढते दर नहीं लगती। थोडे ही दिनों में मूलधन से सूद बढ जाता है। तब देना भारी हो जाता है। कर्जदार एक साथ असल और सूद चुकाने में असमर्थ हो कर बेईमानी का रास्ता पकडता है। इसलिए सूद महीने महीने चुकता हो जाने से ऋणी असल दे डालने में भी किसी तरह का हीला हवाला नहीं करता। सूद का रुपया पहले ही दे देने से असल रुपया देना भारी नहीं मालूम होता। हर महीन सूद तो लेती जाती हो?

बसन्ती—हां। सब तो महीने महीने नहीं देते। दो चार महीने का जमा होने पर कुछ देते हैं, कुछ बाकी रखते हैं और कोई महीने महीने भी दे डालते हैं।

"मालूम होता है, सूद ज्यादा वसूल नहीं होता। अच्छा, यह तो बताओ, पिछले महीने में तुमने कितना सूद पाया है?"

"गुजरे महीने में? अच्छा, हिसाब करके बताती हूँ। एक से पाया है आठ आना, एक आदमी से एक रुपया। एक से दस आने। और एक ने सवा रुपया दिया है। कितना हुआ?"

रौनक ने कहा—तीन रुपये छ आने । बस, कुल यही तीन रुपये छ आने ! अगर सब महीने महीने सूद दें तो मालूम होता है पाँच छ रुपये से कम न होगा ।

"इतना न होगा । हाँ, महीने में चार रुपया सूद पा जाती हूँ ।"

"अच्छा, तब तो सूद कुछ कम नहीं आता । जान पड़ता है, जिनको दिया है वे लोग अच्छे हैं ।"

"अच्छे जान कर ही तो दिया है ।"

"तो एक काम करो न । जो रुपये गड़े हुए हैं उन्हें उखाड़ कर क़र्ज़ में लगा दो तो क्या महीने में और चार रुपये सूद में नहीं आवेंगे ?"

बसन्ती—चार ही रुपये क्यों आवेंगे ? कुल रुपया क़र्ज़ में दे डालूँगी तब भी चार ही रुपया !

"तब कितना ?"

"पाँच छ रुपये से कम सूद तो किसी हालत में नहीं पाऊँगी । किन्तु मैं सोचती हूँ कि मैं अबला हूँ, जो सब रुपये दूसरों के हाथ में दे दूँगी और अगर रुपया वसूल न होगा, तो अखीर में सिर पर हाथ धर कर रोऊँगी । आदमी का चोला है, कभी भला रहा कभी न रहा, यदि यह नौकरी ही न रही तो खाऊँगी क्या ?"

रौनक ने सिर हिला कर कहा—हाँ, यह बात ठीक है । तब वह रुपया गड़ा ही रहने दो—उसको उखाड़ने की ज़रूरत

नहीं। वह अच्छी जगह में तो है? देखो, खूब सावधान होकर रहना। मुझसे जो कहा सो कहा, और किसी से मत कहना जिसमें कोई यह बात न जाने।

"नहीं,—मैं ऐसी बेवकूफ नहीं हूँ" कह कर बसन्ती मिल पर मसाला पीसने लगी।

रौनक ने मनही मन हिसाब किया—उस दिन इसने कहा था, "मैं फी रुपये दो पैसे सूद पर रुपया उधार देती हूँ। कभी कभी रुपये की जरूरत देख कर चार पैसा भी सूद लेती हूँ।" मोटे हिसाब से यदि ढाई पैसे फी रुपये सूद का हिसाब जोड़ता हूँ तो पचीस रुपये का सूद हुआ करीब एक रुपया, और एक सौ रुपये का सूद चार रुपये के लगभग हुआ। इस हिसाब से मालूम होता है, सौ रुपये से दो चार घट बढ़ कर्ज में दिया गया है। और, यही डेढ़ पौने दो सौ रुपया धरती में गड़ा होगा। अभी नहीं, कुछ दिन बाद—यह गड़ा हुआ रुपया उखाड़ कर अपने सन्दूक में रख दूँगा तो वह हिफाजत से रहेगा।—यह सोचते सोचते रौनक के होठों पर कुछ हँसी आ गई, किन्तु दिये की टिमटिमाहट में उसे बसन्ती ने नहीं देखा।

इसके बाद क्रम क्रम से बाबू साहब की हवेली का जिक्र छिड़ा। रौनक ने पूछा—अच्छा, छोटे बाबू विवाह क्यों नहीं कराते?

"ससारी धर्म में मन नहीं है, इसी से नहीं कराते। छोटे बाबू को हम लोग देवता करके मानती हैं। वे रात दिन पूजा-

पाठ में ही लगे रहते हैं। ब्याह का तो सब ठीक ठाक हो गया था। प्रयाग से जो छोटे बाबू को देखने आये थे वे बहुत बड़े आदमी थे। बड़े आदमी क्या, एक तरह के राजा ही थे। किन्तु छोटे बाबू ने दो चार ऊँची नीची बात कह कर उन्हें खदेड़ दिया। तभी से दोनों भाइयों में अनबन है। मालिक मालकिन में भी बनाव नहीं।"

रौनक बड़ी उत्सुकता के साथ बोला—मालिक मालकिन में अनबन! क्यों?

"अच्छा, कहती हूँ" कह कर बसन्तो दाल में मसाला डाल कर सँभल बैठी और धीमे स्वर में कहने लगी—

जिस दिन प्रयाग से लड़की वाले लड़का देखने आये थे उस दिन मैंने देखा कि मालकिन दिन भर उदास मुँह किये घूमती रहीं। किसी से कुछ नहीं बोलीं। और दिन तो बड़े बाबू अन्दर आकर ही खाते-पीते थे, और ऊपर जाकर सोते थे, पर उस दिन बाबू साहब ने बाहर ही खाया, और बाहर ही सो गये। मैंने मन ही मन कहा—इन्हें क्या हुआ है। लक्षण तो अच्छे नहीं देखती हूँ—क्या कुरुक्षेत्र होगा?

रौनक ने अपने सिकुड़े हुए मुँह को और भी सिकोड़ कर कहा—खैर, इसके बाद क्या हुआ?

"सुनते जाइए, कहती तो हूँ। इन सबों में जो कुछ हुआ है, वह सब आदि से अन्त तक आपको सुनाती हूँ। साँझ होने पर देखा, बड़े बाबू महल के भीतर आकर ऊपर गये। माल-

नहीं। वह अच्छी जगह मे तो है? देखो, खूब सावधान होकर रहना। मुझसे जो कहा सो कहा, और किसी से मत कहना जिसमें कोई यह बात न जाने।

"नहीं,—मैं ऐसी बेवकूफ नहीं हूँ" कह कर बसन्ती सिल पर मसाला पीसने लगी।

रौनक ने मनही मन हिसाब किया—उस दिन इसने कहा था, "मैं फी रुपये दो पैसे सूद पर रुपया उधार देती हूँ। कभी कभी रुपये की जरूरत देख कर चार पैसा भी सूद लेती हूँ।" मोटे हिसाब से यदि ढाई पैसे फी रुपये सूद का हिसाब जोड़ता हूँ तो पचीस रुपये का सूद हुआ करीब एक रुपया, और एक सौ रुपये का सूद चार रुपये के लगभग हुआ। इस हिसाब से मालूम होता है, सौ रुपये से दो चार घट बढ कर्ज में दिया गया है। और, यही डेढ पौने दो सौ रुपया धरती में गडा होगा। अभी नहीं, कुछ दिन बाद—यह गडा हुआ रुपया उखाड कर अपने सन्दूक में रख दूँगा तो वह हिफाजत से रहेगा।—यह सोचते सोचते रौनक के होठो पर कुछ हँसी आ गई, किन्तु दिये की टिमटिमाहट मे उसे बसन्ती ने नहीं देखा।

इसके बाद क्रम क्रम से बाबू साहब की हवेली का जिक्र छिडा। रौनक ने पूछा—अच्छा, छोटे बाबू विवाह क्यों नहीं कराते?

"ससारी धर्म मे मन नहीं है, इसी से नहीं कराते। छोटे बाबू को हम लोग देवता करके मानती हैं। वे रात दिन पूजा-

पाठ में ही लगे रहते हैं। व्याह का तो सब ठीक ठाक हो गया था। प्रयाग से जो छोटे बाबू को देखने आये थे वे बहुत बड़े आदमी थे। बड़े आदमी क्या, एक तरह के राजा ही थे। किन्तु छोटे बाबू ने दो चार ऊँची नीची बातें कह कर उन्हें रुखसत दिया। तभी से दोनों भाइयों में अनबन है। मालिक मालकिन में भी बनाव नहीं।"

रौनक बड़ी उत्सुकता के साथ बोला—मालिक मालकिन में अनबन! क्यों ?

"अच्छा, कहती हूँ" कह कर बसन्ती दाल में मसाला डाल कर सँभल बैठी और धीमे स्वर में कहने लगी—

'जिस दिन प्रयाग से लड़की वाले लड़का देखने आये थे उस दिन मैंने देखा कि मालकिन दिन भर उदास मुँह किये घूमती रहीं। किसी से कुछ नहीं बोलीं। और दिन तो बड़े बाबू अन्दर आकर ही खाते-पीते थे, और ऊपर जाकर सोते थे, पर उस दिन बाबू साहब ने बाहर ही खाया, और बाहर ही सो गये। मैंने मन ही मन कहा—इन्हें क्या हुआ है। लक्षण तो अच्छे नहीं देखती हूँ—क्या कुरुक्षेत्र होगा ?

रौनक ने अपने सिकुड़े हुए मुँह को और भी सिकोड़ कर कहा—खैर, इसके बाद क्या हुआ ?

"सुनते जाइए, कहती तो हूँ। इन सबों में जो कुछ हुआ है, वह सब आदि से अन्त तक आपको सुनाती हूँ। साँझ होने पर देखा, बड़े बाबू महल के भीतर आकर ऊपर गये। माल-

नहीं। वह अच्छी जगह में तो है? देखो, खूब सावधान होकर रहना। मुझसे जो कहा सो कहा, और किसी से मत कहना जिसमें कोई यह बात न जाने।

"नहीं,—मैं ऐसी बेवकूफ नहीं हूँ" कह कर बसन्ती सिल पर मसाला पीसने लगी।

रौनक ने मनही मन हिसाब किया—उस दिन इसने कहा था, "मैं फी रुपये दो पैसे सूद पर रुपया उधार देती हूँ। कभी कभी रुपये की जरूरत देख कर चार पैसा भी सूद लेती हूँ।" मोटे हिसाब से यदि ढाई पैसे फी रुपये सूद का हिसाब जोडता हूँ तो पचीस रुपये का सूद हुआ करीब एक रुपया, और एक सौ रुपये का सूद चार रुपये के लगभग हुआ। इस हिसाब से मालूम होता है, सौ रुपये से दो चार घट बढ कर्ज मे दिया गया है। और, यहीं डेढ पौने दो सौ रुपया धरती में गडा होगा। अभी नहीं, कुछ दिन बाद—यह गडा हुआ रुपया उखाड कर अपने सन्दूक मे रख दूँगा तो वह हिफाजत से रहेगा।—यह सोचते सोचते रौनक के होठों पर कुछ हँसी आ गई, किन्तु दिये की टिमटिमाहट में उसे बसन्ती ने नहीं देखा।

इसके बाद क्रम क्रम से बाबू साहब की हवेली का जिक्र छिडा। रौनक ने पूछा—अच्छा, छोटे बाबू विवाह क्यों नहीं कराते?

"ससारी धर्म मे मन नहीं है, इसी से नहीं कराते। छोटे बाबू को हम लोग देवता करके मानती हैं। वे रात दिन पूजा-

पाठ में ही लगे रहते हैं । ब्याह का तो सब ठीक ठाक हो गया था। प्रयाग से जो छोटे बाबू को देखने आये थे वे बहुत बड़े आदमी थे । बड़े आदमी क्या, एक तरह के राजा ही थे । किन्तु छोटे बाबू ने दो चार ऊँची नीची बात कह कर उन्हें रद्देद दिया । तभी से दोनों भाइयों में अनवन है । मालिक मालकिन में भी बनाव नहीं ।"

रौनक बड़ी उत्सुकता के साथ बोला—मालिक मालकिन में अनबन ! क्यों ?

"अच्छा, कहती हूँ" कह कर बसन्ती दाल में मसाला डाल कर सँभल बैठी और धीमे स्वर में कहने लगी—

'जिस दिन प्रयाग से लड़की वाले लड़का देखने आये थे उस दिन मैंने देखा कि मालकिन दिन भर उदास मुँह किये घूमती रहीं । किसी से कुछ नहीं बोलीं । और दिन तो बड़े बाबू अन्दर आकर ही खाते-पीते थे, और ऊपर जाकर सोते थे, पर उस दिन बाबू साहब ने बाहर ही खाया, और बाहर ही सो गये । मैंने मन ही मन कहा—इन्हें क्या हुआ है । लक्षण तो अच्छे नहीं देखती हूँ—क्या कुरुक्षेत्र होगा ?

रौनक ने अपने सिकुड़े हुए मुँह को और भी सिकोड़ कर कहा—खैर, इसके बाद क्या हुआ ?

"सुनते जाइए, कहती तो हूँ । इन सबों में जो कुछ हुआ है, वह सब आदि से अन्त तक आपको सुनाती हूँ । साँझ होने पर देखा, बड़े बाबू महल के भीतर आकर ऊपर गये । माल-

चिमटा बँधा था। पैताने की ओर एक मिट्टी के फूटे बरतन में कण्डे की आग सुलग रही थी और घुइयाँ के पत्ते पर तम्बाकू रक्खी थी। मैंने पैर की आहट बचाकर नीचे के सब घरों में खोज डाला। कहीं कोई न था। तब सोचा, ऊपर जाकर भी एक बार देखलूँ। कुछ डर भी होने लगा। फिर दिल को मजबूत करके कहा—अपने मालिक का मकान है, इसमें डर किसका? बूढ़ो जो पड़ी थी उसे लाँघ कर धीरे धीरे सीढ़ी पर पैर रख कोठे पर चढ़ गई। ऊपर एक बहुत बड़ा कमरा देखा, उसके इधर-उधर बहुतेरी कोठरियाँ थीं। कमरे के भीतर से होकर दक्खिन ओर के बरामदे में जा खड़ी हुई। पेड़ों के डाल पत्तों के बीच से देखा कि बाबू नदी के किनारे बैठकर बंसी खेल रहे हैं। तब मेरे मन में आया कि नीचे उतर कर बाबू के पास जाऊँ और उनसे कुछ कहूँ सुनूँ। बरामदे से कमरे के भीतर पैर रख ज्योंही बीचो बीच में आई हूँ त्यों ही जो सुनने में आया—क्या कहूँ, अरे दादा!—उनकी याद आने से अब भी सारा बदन काँप उठता है।

रौनक—क्या? क्या? क्या सुना?

"बीचो बीच में आई हूँ, इसी समय कोने की तरफ से एक आवाज सुन पड़ी, जैसे कोई रो रहा हो। सुनते ही मेरे शरीर में रोंगटे खड़े हो गये।"

"रोने का शब्द?"

बसन्ती—हाँ साहब, जैसे कोई 'उहूँ हूँ हूँ' करके अपने

हृदय की वेदना व्यक्त कर रहा हो। मैंने सोचा, ठीक दोपहर के समय कहाँ कोई भूत होगा। इस सुनसान मैदान में यह मकान है। मैं यहाँ क्यों मरने आई। मेरे हाथ पाँव थर थर काँपने लगे। मैं धीरे धीरे सीढ़ी से उतरने लगी। फिर वही शब्द कान मे आया—उहूँ हूँ हूँ,—मैं झट पट उतरने लगी। नीचे वह बुढ़िया उसी तरह सोई थी। सबसे निचली सीढ़ी पर आकर ज्यों ही उसे लाँघ कर आगे बढ़ना चाहा त्यों ही—कहने से आपको प्रतीति न होगी—पीछे से जैसे किसी ने मेरा पैर पकड़ कर खींचा। मैं धड़ाम से उस ताड़का राक्षसी की देह पर गिर पड़ी। बुढ़िया 'अर्र्, अय्यँ,' करती हुई अकचका कर उठ बैठी। मैंने आधी बैठी और लेटी अवस्था मे बायें हाथ पर सिर रख कर देखा, वह बूढ़ी खुर्राट दाँत बाकर मेरी ओर आँखें फाड़ कर ताक रही थी। उसके मुँह में नाम के लिए दो चार दाँत थे। सिर के बाल बिल्कुल सफेद थे। दोनों आँखें बाघिन की तरह चमक रही थीं। वह मुझे देख कर जोर से 'चोर चोर' चिल्लाने लगी। तब मैं उठ बैठी और मैया दादा कह कर रोने लगी। हाथ की दो उँगलियों और नाक मे चोट लग गई थी। उस बुढ़िया की चिल्लाहट सुन कर बाग का माली दौड़ा आया। मुझे देख कर बोला—"यह कौन मिहररुआ है? कहाँ से आई है?" मुझे एक तो चोट लगी थी, इस पर माली के मुँह से यह बात सुन कर मुझे क्रोध चढ़ गया। मैंने कहा—"कौन मुँहझौंसा मिहरारू मिहरारू कर

चिमटा बँधा था। पैताने की ओर एक मिट्टी के फूटे बरतन में कण्डे की आग सुलग रही थी और कुटयों के पत्ते पर तम्बाकू रक्खी थी। मैंने पैर की आहट बचाकर नीचे के सब घरों में खोज डाला। कहीं कोई न था। तब सोचा, ऊपर जाकर भी एक बार देखलूँ। कुछ डर भी होने लगा। फिर दिल को मजबूत करके कहा—अपने मालिक का मकान है, इसमें डर किसका? बूढी जो पड़ी थी उसे लाँघ कर धीरे धीरे सीढी पर पैर रख कोठे पर चढ गई। ऊपर एक बहुत बड़ा कमरा देखा, उसके इधर-उधर बहुतेरी कोठरियाँ थीं। कमरे के भीतर से होकर दक्खिन ओर के बरामदे में जा खड़ी हुई। पेड़ों के डाल पत्तों के बीच से देखा कि बाबू नदी के किनारे बैठकर बसी खेल रहे हैं। तब मेरे मन में आया कि नीचे उतर कर बाबू के पास जाऊँ और उनसे कुछ कहूँ सुनूँ। बरामदे से कमरे के भीतर पैर रख ज्योंही बीचो बीच में आई हूँ त्यों ही जो सुनने में आया—क्या कहूँ, अरे दादा!—उनकी याद आने से अब भी सारा बदन काँप उठता है।

रौनक—क्या? क्या? क्या सुना?

"बीचो बीच में आई हूँ, इसी समय कोने की तरफ से एक आवाज सुन पड़ी, जैसे कोई रो रहा हो। सुनते ही मेरे शरीर में रोंगटे खड़े हो गये।"

"रोने का शब्द?"

बसन्ती—हाँ साहब, जैसे कोई 'उहूँ हूँ हूँ' करके अपने

हृदय की वेदना व्यक्त कर रहा हो। मैंने सोचा, ठीक दोपहर के समय कहीं कोई भूत होगा। इस सुनसान मैदान में यह मकान है। मैं यहाँ क्यों मरने आई। मेरे हाथ पाँव थर थर काँपने लगे। मैं धीरे धीरे सीढ़ी से उतरने लगी। फिर वही शब्द कान में आया—उहूँ हूँ हूँ,—मैं झट पट उतरने लगी। नीचे वह बुढ़िया उसी तरह सोई थी। सबसे निचली सीढ़ी पर आकर ज्यों ही उस लाँघ कर आगे बढ़ना चाहा त्यों ही—कहने से आपको प्रतीति न होगी—पीछे से जैसे किसी ने मेरा पैर पकड़ कर खींचा। मैं धड़ाम से उस ताड़का राक्षसी की देह पर गिर पड़ी। बुढ़िया 'अयूँ, अयूँ,' करती हुई अकचका कर उठ बैठी। मैंने आधी बैठी और लेटी अवस्था में बायें हाथ पर सिर रख कर देखा, वह बूढ़ी खुर्राट दाँत बाकर मेरी ओर आँखें फाड़ कर ताक रही थी। उसके मुँह में नाम के लिए दो चार दाँत थे। सिर के बाल बिल्कुल सफेद थे। दोनों आँखें बाघिन की तरह चमक रही थीं। वह मुझे देख कर जोर से 'चोर चोर' चिल्लाने लगी। तब मैं उठ बैठी और मैया दादा कह कर रोने लगी। हाथ की दो उँगलियों और नाक में चोट लग गई थी। उस बुढ़िया की चिल्लाहट सुन कर बाग का माली दौड़ा आया। मुझे देख कर बोला—"यह कौन मिहररुआ है? कहाँ से आई है?" मुझे एक तो चोट लगी थी, इस पर माली के मुँह से यह बात सुन कर मुझे क्रोध चढ़ गया। मैंने कहा—"कौन मुँहझौंसा मिहरारू मिहरारू कर

ग्यारहवाँ परिच्छेद

कमलपुर गाँव की पूर्व सीमा से होकर भुइँचोरा नाम की एक छोटी सी नदी बहती है। नदी का विस्तार अधिक नहीं है, किन्तु बरसात में इसका आकार बहुत बढ जाता है। उस समय यह दोनों तटों की भूमि को काट कर अपने पेट में रख लेती है। इसी से नदी का नाम भुइँचोरा प्रसिद्ध है।

इस नदी के तट पर, गाँव से प्राय एक कोस दूर, गोपीकान्त बाबू का बगीचेवाला मकान है। पचीस बीघे जमीन में बगीचा है। इसके चारो ओर कहीं कहीं बाँस का घेरा है और कहीं कहीं नागफनी के काँटे घेरे का काम दे रहे हैं। मकान दोमजिला है। नदी के किनारे बना है। मकान के पुश्ते से नदी के पानी तक पक्का घाट बँधा है। आम, जामुन, कटहल, केले, नारियल, नीबू आदि फलवान् वृक्षों से बगीचा भरा है। मकान के चारों ओर भाँति भाँति के फूलों के पेड लगे हैं जिनमें बड़े पेडों में, मौलसिरी, कामिनी, कदम्ब, लाल पीले और सफेद कनेर, चम्पा, हरसिंगार, अगस्त्य और मुचकुन्द के ही पेड बहुतायत से हैं। इन दिनों, हेमन्त के आरम्भ में, गुलाब के फूल अधिकता से खिले हैं। चन्द्रकला और कामिनी के फूल भी खूब खिलने लगे हैं।

बसन्ती के साथ सन्ध्या-समय जो बाबू के घर की बातचीत

हुई थी, उसके बाद से ही रौनक के मन में भाँति भाँति की चिन्तायें होने लगीं । बगीचे के मकान में बसन्ती ने जो रोने की आवाज सुनी थी, वह भूत का रोना था, इस पर किसी तरह उसका विश्वास नहीं हुआ । यद्यपि वह भूत के अस्तित्व को सम्पूर्णरूप से मानता है किन्तु दिन दोपहर को मनुष्य के घर में आकर भूत क्यों रोवेगा ? इसका कोई कारण न जान सकने पर रौनक ने स्थिर किया कि इस घर में अवश्य ही कोई न कोई कैद है । जमींदारी चलाने के लिए कभी कभी ऐसे दो एक बेकानूनी काम करने ही पड़ते हैं । वह भी पहले ऐसा काम कर चुका है । वह सोचने लगा—इस मामले में बन्दी कौन है, और बगीचे वाले मकान में ही क्यों बन्दी है ? फिर जिस मकान में ऐसा एक आदमी कैद है उसमें बाबू साहब ही दो तीन दिन क्यों रह गये ? वह कैदी कोई औरत तो नहीं है ? छोटे बाबू ने जो बड़े बाबू को धमकाया था, उसके साथ इस कैदी स्त्री या पुरुष का कोई सम्बन्ध तो नहीं है ? जैसे हो, इस रहस्य को खोलना पड़ेगा—यह निश्चय करके दूसरे दिन सवेरे कुरता पहन, हाथ में बाँस की छड़ी ले, रौनक घूमने निकला । आज विजया दशमी की तातील थी । कचहरी का काम बन्द था, इसलिए इस समय घूमने में कोई बाधा न थी ।

घूमते घूमते रौनक वाटिकागृह के समीप जा पहुँचा । एकदम उसके भीतर नहीं चला गया । बाहर ही बाहर घूम कर उस मकान के बाहरी दृश्य को देखने लगा । भीतर से खिड़की-

झरोखे बन्द थे। मनुष्य के रहने का कोई चिह्न देखने में नहीं आया। फिर वह नदी के किनारे पहुँचा। देखा उस पार जाने का कोई उपाय नहीं है। उस पार मैदान ही मैदान है। गाँव-घर कहीं कुछ दिखाई नहीं देता। मैदान की सीमा पर बाँस के जङ्गल के बीच एक मन्दिर का गुम्बज और अटारी का ऊपरी हिस्सा धुँधला सा दिखाई देता है। अवश्य ही वहाँ कोई बस्ती है। रौनक गुनगुना कर गाता और छड़ी घुमाता घुमाता प्राकृतिक शोभा देखने लगा। इसी समय उसने एकाएक देखा कि ताल में, थोड़ी दूर पर, बगीचे के सामने वाले घाट पर एक बुढ़िया कलसी लेकर पानी भर रही है। दूर होने के कारण उसने बुढ़िया की सूरत-शकल स्पष्ट रूप से नहीं देखी। किन्तु पहिनावे ओढ़ावे से वह पच्छिम की रहने वाली सी जान पड़ी। उसकी ओर टकटकी बाँध कर रौनक देखने लगा। देखा कि वह पानी भर कर मकान की ओर बढ़ी। कहीं वह दृष्टि-पथ से बाहर न हो जाय, इस भय से रौनक भी धीरे धीरे उस ओर जाने लगा। कुछ दूर आगे जा, एक पेड़ की ओट में खड़े हो कर देखा कि उस बुढ़िया ने मकान के बरामदे में पहुँच, कलसी नीचे रख, कमर से एक कुंजी निकाली। एक दरवाजे में ताला लगा था, उस ताले को खोल वह भीतर गई। भीतर से उसने किवाड़ बन्द कर दिया। उसी ओर को ध्यान रख रौनक इधर-उधर टहलने लगा। कुछ देर बाद देखा कि बुढ़िया फिर कलसी ले कर बाहर आई और दरवाज़े में ताला लगा दिया। फिर नदी

से पानी लाकर पहले की तरह ताला खोल भीतर गई और किवाड बन्द कर दिया। तब रौनक मन ही मन हँस कर बोला, "इस भूत को जल की तृषा बहुत अधिक देखता हूँ।" इस दफे जो भीतर गई सो बुढ़िया फिर बाहर न आई। कुछ देर बाद कोठे की एक छोटी खिडकी से धुवाँ निकलने लगा। रौनक ने मन में कहा—भूत बडा शौकीन मालूम होता है। कच्ची चीज खाना पसन्द नहीं करता।

तब प्राय एक पहर दिन चढ आया था। रौनक अपने मन में गुनगुना कर गाता हुआ बाग के सामने के फाटक की ओर बढा। फाटक की राह से माली के घर के पास जा खडा हुआ। माली घर के सामने एक चारपाई पर बैठा बेटे के लिए कुरता सी रहा था। पिछले महीने डेवढी पर जब माली महीना लेने गया था तब रौनकलाल को देख आया था। उसे पहचान कर उठ खड़ा हुआ और सलाम किया।

रौनक—कहो चौधरी, अच्छे तो हो ?

"जी हाँ, अच्छा हूँ।" कह कर उसने झटपट खाट पर से सब चीजें हटा दीं। उसके ऊपर एक पुरानी सी दरी बिछा कर वह रौनकलाल को बैठने का आग्रह करने लगा।

रौनक ने बैठ कर कहा—तम्बाकू रखते हो ?

"हाँ बाबू—तम्बाकू भर लाता हूँ"—कह कर वह तम्बाकू भरने गया। कुछ देर में चिलम की आग को फूँकते फूँकते एक केले के पत्ते की डंडी हाथ में लिये उपस्थित हुआ। रौनक ने

से कह कर आप मेरा महीना कुछ बढवा दे तो बडा उपकार हो। यह गरीब जन्म भर आपका नाम लेवा रहेगा।

माली के प्रति पूर्ण सहानुभूति प्रकट करके रौनक ने कहा—ठीक है, तुम जो महीना पाते हो उसमें तुम्हारी गुजर नहीं होती। तुम्हे कष्ट होता है। अहा! यह बात मुझसे इतने दिनो तक क्यो नहीं कही? आदमी परदेश में नौकरी करने क्यो आता है? तुम आये हो, मैं आया हूँ, सो किस लिए? अगर पेट भी न भरा तो अपना घर छोड विदेश मे पडे रहने से लाभ? अच्छा, मैं तुम्हारे लिए बाबू से अवश्य कहूँगा। हाँ, इस दफे जब बाबू यहाँ आवे तो तुम भी एक बार उनसे खुद कहना।

माली—क्या बाबू जल्दी आवेंगे?

"शीघ्र ही एक दिन आवेगे। केवल काम की अधिकता से नहीं आ सकते हैं। अवसर पाते ही आवेंगे"—कह कर रौनक एक बार अटारी की ओर देख कर, दूसरी ओर नजर फेर मुस्कुराने लगा। माली भी सन्दिग्ध भाव से रौनकलाल के मुँह की ओर चुपचाप देखता रहा।

कुछ देर चुप रह कर रौनक ने कहा—यहाँ जो एक बुढिया रहती थी, वह नहीं दीखती?

माली—है तो।

सुन कर रौनकलाल माली के मुँह की ओर देख कर प्रकाश्य भाव से मुसकुराने लगा। पूछा, वह तुम्हारी कोई होती है?

"हाँ बाबू, वह मेरी सास है। मेरी स्त्री की माँ नहीं है। उस की चाची है।"

रौनक--तुम तो बड़े नमकहलाल नौकर हो, तुम्हारा महीना तो बढ़ाना ही उचित है। बाबू से कह कर मैं अवश्य ही तुम्हारा महीना बढ़वा दूँगा। किन्तु देखो चौधरी, भूल कर भी कभी मालिक की नमकहरामी नहीं करना।

'जी नहीं—मेरे प्राण रहते यह न होगा" कह कर माली रौनक के मुँह की ओर बड़े कुतूहल के साथ देखने लगा।

रौनक—तो अब जाता हूँ। चलो, कल के दो एक फूल काट कर दे दो।

तरकारी इकट्ठी हो जाने पर माली ने कहा—बाबू, कैसे ले जाइएगा?

"तुम अपने अँगोछे मे बाँध दो। कल फिर आ कर तुम्हारा अँगोछा लौटा दूँगा।"

माली ने वही किया। विदा होते समय रौनक ने कहा—देखो, तुमसे एक बात कहता हूँ। किन्तु किसी के आगे यह बात ज़ाहिर नहीं करना। मैं तो तुम्हारा महीना बढ़ाने की चेष्टा करूँगा ही। किन्तु मान लो, यदि बाबू मेरी बात न सुनें तो मेरे इलाके मे काम करोगे? वहाँ एक जगह खाली है, दूना महीना मिलेगा।

"कहाँ?"

"जिस बाबू के यहाँ मैं पहले था वे बहुत दिन से एक

होशियार माली खोजते हैं। अन्तरवेद के माली बड़े चतुर होते हैं। तुम्हारा घर भी तो वहीं है। लखनऊ का माली रहता तो बड़े ठाट बाट से है, परन्तु मेहनत नहीं करता—इससे उनको लखनौवा माली पसन्द नहीं। वे कहते थे, अच्छा मिहनती माली मिले तो उसे बारह रुपये तक महीना देकर रख लेंगे।"

"वह यहाँ से कितनी दूर है?"

"बहुत दूर नहीं, बलिया से बहुत करीब ही है। मेरे भाई वहाँ के सदर दीवान हैं। दस बारह रुपया महीना तो मिलेगा ही और यदि खेती बारी करना चाहोगे, तो मैं अपने भाई से कह कर अच्छी जमीन तुमको नाम-मात्र की मालगुजारी पर दिला सकता हूँ।"

माली—बाबू, पहले आप इस मालिक के पास कोशिश करके देखिए। यदि बाबू साहब की दया होगी तो यहीं रहूँगा, जो न होगी तो आप वहीं मेरी नौकरी लगा दीजिएगा।

"कोशिश तो जरूर ही करूँगा। बहुत सम्भव है, यहीं महीना बढ़ जायगा। कैसे ही हैं, हैं तो पुराने मालिक। पुराने ही चावल का भात बढ़िया होता है। जैसी तुम उनकी सेवा करते हो, इस ख्याल से तो उन्हें चाहिए कि वे अवश्य ही तुम्हारा महीना बढ़ादें।"

"दयाभाव रखिएगा" कह कर माली ने रौनकलाल को सलाम किया। रौनक तरकारी की गठरी हाथ में लटका कर धीरे अपने घर को लौटा।

बारहवाँ परिच्छेद

आजमगढ शहर की बस्ती के अन्त मे एक जमींदार की टूटी फूटी पुरानी इमारत है। मकान दो-मंजिला है। दीवारें नीचे से ऊपर तक कई जगह फटी हैं। कहीं कहीं ईंटो के बीच में पीपल का पेड़ जम गया है। मकान के चारो ओर बाग है, परन्तु हिफाजत न होने से उनमें बहुतेरे जगली पौधे उपज गये हैं। फाटक भी टूट फूट गया है। इस फाटक के ऊपर एक साइन-बोर्ड टँगा हुआ है। उनमे अँगरेजी और नागरी के मोटे अक्षरों में लिखा था—

SOCIETY FOR THE PROPAGATION
OF
ELECTRICAL HINDUISM
वैद्युतिक हिन्दूधर्म-प्रचारिणी सभा

प्रति रविवार को पिछले पहर इस सभा का साप्ताहिक अधिवेशन होता है। सभ्य दो श्रेणियो में बँटे हैं। साधारण और विशिष्ट। साधारण सभ्य अधिकाश नवयुवक हैं। उम्र उनकी सोलह से ऊपर और बीस बाईस वर्ष के भीतर ही है। इन लोगों को आठ आना महीना चन्दा देना पडता है। विशिष्ट सभ्यों को कुछ चदा नहीं देना पडता और वे साप्ताहिक अधिवेशन में उपस्थित भी नहीं रहते। वे सभी स्थानीय सज्जन हैं

होशियार माली खोजते हैं । अन्तरवेद के माली बड़े चतुर होते हैं। तुम्हारा घर भी तो वहीं है। लखनऊ का माली रहता तो बड़े ठाट बाट से है, परन्तु मेहनत नहीं करता—इससे उनको लखनौवा माली पसन्द नहीं। वे कहते थे, अच्छा मिहनती माली मिले तो उसे बारह रुपये तक महीना देकर रख लेंगे।"

"वह यहाँ से कितनी दूर है ?"

"बहुत दूर नहीं, बलिया से बहुत करीब ही है । मेरे भाई वहाँ के सदर दीवान हैं। दस बारह रुपया महीना तो मिलेगा ही और यदि खेती बारी करना चाहोगे, तो मैं अपने भाई से कह कर अच्छी जमीन तुमको नाम-मात्र की मालगुजारी पर दिला सकता हूँ ।"

माली—बाबू, पहले आप इस मालिक के पास कोशिश करके देखिए। यदि बाबू साहब की दया होगी तो यहीं रहूँगा, जो न होगी तो आप वहीं मेरी नौकरी लगा दीजिएगा ।

"कोशिश तो जरूर ही करूँगा। बहुत सम्भव है, यहीं महीना बढ़ जायगा । कैसे ही हैं, हैं तो पुराने मालिक । पुराने ही चावल का भात बढ़िया होता है । जैसी तुम उनकी सेवा करते हो, इस ख्याल से तो उन्हें चाहिए कि वे अवश्य ही तुम्हारा महीना बढ़ादें ।"

"दयाभाव रखिएगा" कह कर माली ने रौनकलाल को सलाम किया । रौनक तरकारी की गठरी हाथ में लटका कर धीरे धीरे अपने घर को लौटा ।

"भारतवर्ष ही एक-मात्र कर्म्मभूमि है, पृथिवी का अन्य कोई देश कर्म्मभूमि नहीं हो सकता—इसका प्रमाण, हे नये बाबू और बबुआनियो ! तुम्हारे इस पाश्चात्य विज्ञान से ही दिखा दूँगा । ग्यानो साहब की फिजिक्स में लिखा है कि १८२१ ई० में बर्लिन के अध्यापक सीबेक साहब ने यह आविष्कार किया था कि यदि दो धातुखंडों के द्वारा एक पत्तर बनाया जाय और उसके जोड़ पर यदि आग का ताप दिया जाय तो विद्युत् का प्रवाह उत्पन्न होता है । इसका कारण यही कि, धातुखंड के दोनों प्रान्तों में उत्ताप की विषमता उत्पन्न होते ही विद्युत् प्रवाहित होती है । हे भाइयो ! अब आप लोग देखिए, हमारे इस भारतवर्ष की अवस्था कैसी है ? इस भारतवर्ष की मिट्टी में कैसी ही क्यों अनेक धातुएँ मिली हुई हैं । इस देश के शीर्षस्थान में चिरकाल से बर्फ का ढेर विद्यमान है और पदस्थान निरक्ष वृत्त के बहुत नजदीक है । इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि हमारे देश के माथे पर बर्फ और पैरों पर आग रक्खी है । इसी से कुमारिका अन्तरीप से लेकर हिमालय पहाड़ तक बराबर वैद्युतिक प्रवाह जारी रहता है । इतना अधिक विद्युत्प्रवाह और किसी देश में नहीं । आप लोगों ने भूगोलशास्त्र अवश्य पढ़ा होगा और पृथ्वी का मानचित्र (नकशा) भी देखा होगा । कहिए, आपने ऐसा और कोई देश दुनिया में देखा है जिसके माथे पर बर्फ और पैरों पर आग हो ? इसी लिए भारतवर्ष पृथिवी में एक-मात्र कर्म्मभूमि है । पुराण में भी कथा के

वहाने यहां तत्त्व लिखा हुआ है। हिन्दुओं का त्रिगुणात्मक ईश्वर वैद्युतिक शक्ति का पूर्ण विकाश है। अल्पज्ञ हिन्दू लोग जिस विष्णु को सृष्टिपालक मानकर पूजते हैं—वह पाजिटिव इलक्ट्रीसिटी का आधार है। संहारकर्ता महेश्वर नेगेटिव इलेक्ट्रीसिटी के सिवा और कुछ नहीं। ब्रह्मा जीरो पाइन्ट है। महादेव अर्थात् नेगेटिव इलेक्ट्रिसिटी हिमालय पर्वत पर है। नारायण जो पाजिटिव इलेक्ट्रीसिटी है, भारत-महासागर में शेष-शय्या पर शयन करता है। इसलिए कुमारी से हिमालय तक प्रचण्ड विद्युत्प्रवाह क्या न बहेगा? इसी विद्युत् के बल से हमारी आत्मा सदा विद्युन्मय रहती है। इसलिए हम लोगों को चाहिए कि ऐसी प्रबल शक्तिशालिनी विद्युत् की जय मनावें। विद्युत् की जय मना कर मैं अपने वक्तव्य को समाप्त करता हूँ।"

लेख का पढ़ना समाप्त होते ही सभासदों की करतल-ध्वनि से सभाभवन गूँज उठा। सभी लोग विपिनविहारीलाल के बुद्धि-कौशल की प्रशंसा करने लगे।

सभापति ने कहा—विपिन बाबू के निबन्ध-सम्बन्ध में यदि किसी को कुछ कहना हो तो कहे।

किसी को कुछ न कहना था। सभासदों को चुप देख शब्द-वारिधि माधवानन्दजी बाँये हाथ में नसदानी ले दहने हाथ के अँगूठे और तर्जनी से किञ्चित् सुँघनी निकाल, नाक में ठूँसते हुए बोले—"श्रीमान् बाबू विपिनविहारीलाल ने जो कुछ

कुछ बिजली निकलकर आप लोगों के शरीर में चली जा सकती है। इस लिए मेरा प्रस्ताव यही है कि आप लोग गोलाकार होकर खड़े हों, और मैं कल घुमाता जाऊँ।" सभापति ने इस युक्ति के साराश को स्वीकार किया। तब से शब्दवारिधिजी ही कल घुमाने लगे।

जब ब्राह्मण लोग साय-सध्या कर चुके तब क्षत्रिय, वैश्य और कायस्थ खड़े हुए। थोड़े ही समय में कल घुमा कर पण्डितजी ने उन लोगों का सन्ध्या-कर्म्म सम्पन्न करा दिया। इसके अनन्तर शूद्र लोगा ने भी खड़े होकर भगवान् का स्मरण किया। अब सब लोग अपने अपने स्थान पर आबैठे।

सेक्रेटरी ने कहा—दिवाली को काली पूजा होगी। दिवाली आने मे अब अधिक विलम्ब नहीं है। उस दिन हमारी सभा का वार्षिकोत्सव होगा। इसलिए इस सम्बन्ध में परामर्श और कार्यकारिणी समिति का सगठन करना आवश्यक है।

सभापति न कहा—क्या उत्सव के खर्च की एक फेह-रिस्त तैयार की है?

सक्रेटरी पाकट से एक कागज निकाल कर खर्च की फेहरिस्त पढने लगे। निमन्त्रणपत्र और प्रोग्राम छपवाने का खर्च, सभास्थल सुसज्जित करने और खाने-पीने की चीजें खरीदने तथा पान तम्बाकू सिगरट आदि मोल लेने में सब मिला कर उन्होंने सौ रुपये का हिसाब दिखलाया।

चावल नहीं छोडा है। अरवा चावल, गाय क घी और कन्चे केले ही मे सब स ज्यादा बिजली रहती है। अरवा चावल की दर जैसी चढी है, वह मैं कही चुका हूँ। गाय का विशुद्ध घी मिलना कठिन होगया है। मिलता भी है तो तीन रुपय सेर। बाजार मे ऐसी आग लगी है कि पैसे मे कच्चे केले की दो छीमी भी नहीं मिलती। आप ही कहिए क्या खा कर देह की इलेक्ट्री बढाऊँगा। मेरी वृत्ति महीने में पाँच रुपया और न बढाई जायगी तो काम नहीं चलेगा" कह कर पण्डित महाशय कातर दृष्टि से सभापति के मुँह की ओर देखने लगे।

सभापति बोले—इस विषय में भी विवेचना करनी होगी। सभा की जैसी हालत देख रहा हूँ, इस से यही जान पडता है कि कुछ और धनवान् सभ्यो का समह न किया गया तो सभा न चल सकेगी। इस आजमगढ जिले मे कितने ही बडे बडे धनवान् जमींदार हैं, उनके पुत्र फिटिन गाडियो पर चढ भाँति भाँति की नवाबी करके रुपया उडाते हैं। उनमे से यदि थोडे भी इस सभा के सभ्य हो जायँ तो अनायासही सभा का दारिद्र्य मिट जा सकता है और सभी काम मजे मे चल सकते हैं। इस लिए मेरा प्रस्ताव यह है कि इस दफे वार्षिक उत्सव मे कुछ चुने चुने बडे आदमियो के लडको को न्यौता दिया जाय और वे अनुरोधपूर्वक बुलाये जायँ। इस सभा की उपकारिता समझने पर वे अवश्य ही सभ्य होना स्वीकार करलेंगे।

ासी।

रती हूँ—किसी के आगे उनका

किसी को उनका नाम बतावेगी तो मैं आकर यह
छाती में भोंक दूँगी। खबरदार।"

"नहीं माँ, प्राण रहते मैं किसीको बाबू का नाम नहीं
बताऊँगी। मुझे इस कैद से छुड़ाओ।"

"तो उठ, मेरे साथ आ।" यह कह कर रौनक घर से निकला। थरथराते हुए पैरों से लीलावती भी उसके पीछे पीछे चली।

झिलमिली से बन्द बरामदे में आकर रौनक ने कहा—"ठहर, मैं चिराग लिये आती हूँ।" वह लौट कर घर में गया और चिराग हाथ में ले अपने कपड़े से मोतीलाल के नाम का वह कार्ड, जो उसने मोतीलाल की बैठक के पास से आते समय कूड़े-करकट में से उठा कर जेब में रख लिया था, निकाल कर लीलावती की चटाई के ऊपर रख दिया।

घर के बाहर आकर रौनक ने चिराग फेंक दिया। उसने त्रिशूल का पिछला हिस्सा लीलावती के हाथ में दे कर कहा—इसे खूब मजबूती से पकड़ कर मेरे पीछे पीछे चली आ।

अब दोनों व्यक्ति उस घने अन्धकार में अदृश्य हो गये। बाहर की खुली हवा में आकर लीलावती ने मानों नया जीवन पाया। उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग में मानो नयें बल का सञ्चार हुआ। त्रिशूल को मुट्ठी में दबाये, डाकिनी के पीछे पीछे, वह तीव्र गति

मोतीलाल श्रीवास्तव है। वे एम्० ए० पास हैं। मांस मछली नहीं खाते हैं। उन्होंने विवाह भी नहीं किया है। धर्म में उनकी बड़ी निष्ठा है। जहाँ तक हो सकता है, वे धर्म-कार्य करने में नहीं चूकते। वे इस समय प्रैक्टिस छोड़कर घर बैठे केवल शास्त्रचर्चा और नित्यकर्म ही किया करते हैं। हरिदास नामक उनका एक किसान किसी मुकदमे में हमारे यहाँ दादा के पास आया है। उसके मुँह से मोतीलाल जी की बहुत प्रशंसा सुनी है। वह कहता था, वे तो ऋषि तुल्य हैं। ऐसे लोगों को यदि हमारी सभा की उपकारिता एक बार सुना दी जाय तो वे अवश्य ही खुले हाथ सभा को द्रव्य-साहाय्य दे सकते हैं।

सभापति ने कहा—हाँ ठीक है। जब मोतीलालजी यहाँ थे तब उनसे मैंने बात चीत की थी। वे बड़े ज्ञानी हैं। उन्हें तो बुलाना ही चाहिए।

सेक्रेटरी ने कहा—उनका पता क्या है, उनके पास मैं अभी निमन्त्रण-पत्र भेजे देता हूँ।

सभापति ने कहा—सिर्फ निमन्त्रण-पत्र ही नहीं, उनके साथ मैं अपने हाथ से एक चिट्ठी भी लिख दूँगा। राम-कुमार बाबू कल हरिदास के हाथ चिट्ठी भेज देंगे और [illegible] देंगे जिसमें वह किसी तरह काली-[illegible] वे मोतीलालजी को अपने साथ

रामकुमार—वह तो कलही जायगा।

सभापति—तो मैं कल सवेरे एक चिट्ठी लिखकर आप के घर पर भेज दूँगा। आप वह चिट्ठी हरिदास को देकर सब बात समझा दीजियेगा।

इसके बाद और कई जमींदारों के बेटों का नाम लिया गया और इस बात की आलोचना होने लगी कि उत्सव के दिन उनको बुलाने के लिए कौन सा उपाय करना चाहिए। फिर कार्यकारिणी सभा का सगठन हुआ।

क्रमश रात के नव बज गये। सभापति ने कहा—आज की सभा में किसी सभासद को कुछ कहना या पूछना है?

सिद्धिनाथ नामक एक सभासद ने कहा—हाँ है।

"क्या?"

"एक भारी सन्देह हुआ है। हमारी इस सभा का मत है कि भूत नहीं होता।"

सभा के अनेक लोग एक साथ बोल उठे— भूत नहीं होता—भूत नहीं होता—यह सही है। इस उन्नीसवीं शताब्दी में—वैज्ञानिक युग में—कुसस्कारापन्न हिन्दू और वायुग्रस्त थियोसोफिस्ट को छोड़ और कौन भूत को मान सकता है?

सिद्धिनाथ कुछ लजाकर बोले—मेरा भी यही था रया है। किन्तु कल एक सज्जन के मुँह से जो घटना सुनी है उससे बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्हों ने अपनी आँखों से एक

मोतीलाल श्रीवास्तव है। वे एम्० ए० पास हैं। मास मछली नहीं खाते हैं। उन्होंने विवाह भी नहीं किया है। धर्म में उनकी बड़ी निष्ठा है। जहाँ तक हो सकता है, वे धर्म-कार्य करने मे नहीं चूकते। वे इस समय प्रैक्टिस छोड़कर घर बैठे केवल शास्त्रचर्चा और नित्यकर्म ही किया करते हैं। हरिदास नामक उनका एक किसान किसी मुकदमे में हमारे यहाँ दादा के पास आया है। उसके मुँह से मोतीलाल जी की बहुत प्रशसा सुनी है। वह कहता था, वे तो ऋषि तुल्य हैं। ऐसे लोगों को यदि हमारी सभा की उपकारिता एक बार सुना दी जाय तो वे अवश्य ही खुले हाथ सभा को द्रव्य-साहाय्य दे सकते हैं।

सभापति ने कहा—हाँ ठीक है। जब मोतीलालजी यहाँ थे तब उनसे मैंने बात चीत की थी। वे बड़े ज्ञानी हैं। उन्हे तो बुलाना ही चाहिए।

सेक्रेटरी ने कहा—उनका पता क्या है, उनके पास मैं अभी निमन्त्रण-पत्र भेजे देता हूँ।

सभापति ने कहा—सिर्फ निमन्त्रण-पत्र ही नहीं, उनके साथ मैं अपने हाथ से एक चिट्ठी भी लिख दूँगा। रामकुमार बाबू उस हरिदास के हाथ चिट्ठी भेज देंगे और उससे समझा कर कह देंगे जिसमे वह किसी तरह काली-पूजा के दिन वार्षिकोत्सव मे मोतीलालजी को अपने साथ लेता आवे। हरिदास कब जायगा?

रामकुमार—वह तो कल हो जायगा।

सभापति—तो मैं कल सवेर एक चिट्ठी लिखकर आप के घर पर भेज दूँगा। आप वह चिट्ठी हरिदास को देकर सब बात समझा दीजियेगा।

इसके बाद और कई जमींदारों के बेटों का नाम लिया गया और इस बात की आलोचना होने लगी कि उत्सव के दिन उनको बुलाने के लिए कौन सा उपाय करना चाहिए। फिर कार्यकारिणी सभा का सगठन हुआ।

क्रमशः रात के नव बज गये। सभापति ने कहा—आज की सभा में किसी सभासद को कुछ कहना या पूछना है?

सिद्धिनाथ नामक एक सभासद ने कहा—हाँ है।

"क्या?"

"एक भारी सन्देह हुआ है। हमारी इस सभा का मत है कि भूत नहीं होता।"

सभा के अनेक लोग एक साथ बोल उठे—'भूत नहीं होता—भूत नहीं होता—यह सही है। इस उन्नीसवीं शताब्दी मे—वैज्ञानिक युग मे—कुसस्कारापन्न हिन्दू और वायुग्रस्त थियोसोफिस्ट को छोड़ और कौन भूत को मान सकता है?

सिद्धिनाथ कुछ लजाकर बोले—मेरी भी यही धारणा है। किन्तु कल एक सज्जन के मुँह से जो घटना सुना है उससे बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्हों ने अपनी आँखों से एक

बार नहीं दो दो बार भूत को देखा है। वे कुछ ऐसे वैसे साधारण मनुष्य नहीं हैं। पूरे बी० ए० पास हैं। सरकारी शिक्षा-विभाग में बहुत दिनों से नौकरी करके अब पेन्शन पा रहे हैं। झूठी बात कह कर मुझे ठगने का उनका कोई उद्देश्य भी नहीं समझ पड़ता। इस लिए उन्होंने जो अपनी आँख से देखा है, उसका विश्वास कैसे न करूँ?

यह सुन कर सभापति महाशय बड़े विज्ञभाव से सिर हिला कर हँसने लगे। उनको हँसते देख सभा के सभी लोग खूब जोर से हँस उठे। केवल पण्डित महाशय वक्ता की ओर उत्सुकता-भरी दृष्टि से देखने लगे। हँसी रुकने पर सभापति बोले—देखना भी क्या कोई प्रमाण है? मनुष्य की जितनी इन्द्रियाँ हैं उनमें से आँख ही मनुष्य को सबसे ज्यादा ठगती है। सिद्धिनाथ जी! क्या आप यह नहीं जानते?

बेचारे सिद्धिनाथ एकदम सिकुड़ गये थे। उन्होंने अत्यन्त लज्जित होकर अपराधी की भाँति सिर नीचा कर के कहा—यह ठीक है, इसी लिए तो सभा के समक्ष मैंने इस बात की चर्चा चलाई जिस से इसकी सन्तोषप्रद मीमांसा होजाय।

सेक्रेटरी ने झट हाथ में कलम ले सिद्धिनाथजी का सन्देह और प्रश्न अपने पक्के रजिस्टर में लिख डाला। फिर सिद्धिनाथ की ओर देख कर कहा—आप सब बात खोल कर कहिए, सभा अवश्यही उस की निश्चित मीमांसा कर देगी।

सिद्धिनाथ ने कहा—मैंने उस सज्जन के मुँह से जैसा सुना

मे कई कमर रहने लायक हैं। सवा रुपया महीना किराया देने ही से मकान रहने को मिल सकता है। किन्तु अफवाह है कि इस मकान में भूत रहता है। मैं उन दिनो कालेज का एक नया छोकरा था—नवीन मत का पोषक था—भूत के डर से यदि मैं पीछे पैर रखता तो मेरी विद्या-मर्यादा मे भारी कलङ्क लग जाता। इसलिए मकान लेने का ही निश्चय किया। किन्तु इतनी दूर अकेला रहना निरापद नहीं है। चोर डकैतो का भी तो डर है। इसलिए एक साथी की खोज करने लगा और साथी मिल भी गया। वह मेरे ही स्कूल का चौथा शिक्षक था। नाम था रामविहारीलाल। यद्यपि वह बी० ए० पास न था तथापि उसने कालेज मे शिक्षा पाई थी और वह अपने को नई समझ वालो क ही दल मे गिनता था। उसको पुराने घर मे तकलीफ भी होती थी। इसी से वह मेरा साथ देकर भाड़े पर नया मकान लेने को तैयार हुआ। एक चाकर और एक रसोइया भी हमने रख लिया किन्तु वे लोग उस मकान मे रात को रहने पर राजी नहीं हुए। कहने लगे, हम काम धन्धा करके आप लोगो को खिला पिला कर नव बजे रात के भीतर ही अपने घर चले जायँगे। दूसरा कोई उपाय न देख कर हमे यह शर्त कबूल कर लेनी पड़ी। अगले रविवार को सबेरे ही हम अपनी सब चीजें उस मकान मे लेगये और वहाँ रहने लगे।

मकान बहुत पुराना था। चारो ओर की दीवार कहीं

कहीं टूट कर गिर पडी थी। उस रास्ते में गाय भैंस भीतर न घुस जायँ, इस लिए वह बाँस के घेरे से घिरा हुआ था। मकान के चारों ओर बागीचा था। उसमें पपीते, आम, जामुन, और कटहल आदि अनेक फलदार वृक्ष थे। फसल के वक्त इन्हे खटीक मोल ले लेता था। मकान दोमजिला था। नीचे के खण्ड में दर्वाजे के सामने दो बडे कमरे थे। हमने उन्हीं दोनो कमरो को अपने रहने के लिए पसन्द किया क्योंकि हमे बहुत जगह की जरूरत भी नहीं थी। मकान के पिछवाडे एक तालाब था, जिसका पानी न तो पीने योग्य था और न स्नान करने ही योग्य। सिर्फ बर्तन मलना, कपडे धोना आदि काम उस के जल से हो सकता था। मकान के समीप ही एक बढिया कुवाँ भी था। हम लोग इसी कुए पर स्नान करते थे और रसोई के लिए तथा पीने के लिए इसी कुएँ से पानी मँगवाते थे। एक कमरे में रसोई पानी होता था और दूसरे मे दो चारपाइयाँ बिछा कर हम दोनों आदमी सोते थे। सारी रात घर मेँ चिराग जला करता था।

इसी तरह कुछ दिन वीते। इतने मे दशहरे की दो दिन की तातील हुई। उसके साथ एक रविवार भी आ पडा। तातील में मैं अपने घर गया।

दो दिन घर में रह कर तीसरे दिन मैं सवेरे उठ पैदल ही गोरखपुर को चला। मेरे गाव से कोस भर पर हथखोला नाम का एक गाँव है। पहले यहाँ स्थानीय जमींदार के हाथी बँधे

रहते थे और चारा लाने के लिए खोले जाते थे, इसी से शायद इस गाँव का नाम हथखोला पड़ा हो। इस गाँव की सीमा पर, सड़क के किनारे, एक मन्दिर है। उस मन्दिर में श्रीराम-प्रपन्नदास नामक एक गोसाँई रहते थे और पूजा पाठ किया करते थे। वे एक सिद्धपुरुष समझे जाते थे। आसपास के गाँव वाले लोग उनकी बड़ी भक्ति करते थे। उस सड़क पर से होकर जाते जाते मैंने देखा कि गोसाँई जी खड़ाऊँ पहिन मन्दिर के बाहर खड़े हैं। तब मैंने सड़क से उतर कर उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद देकर मुझ से कहा—भगत! तुम कहाँ जा रहे हो?

मैंने उत्तर दिया—मैं गोरखपुर के हाई स्कूल में मास्टरी करता हूँ। दशहरे की तातील में घर आया था। कल स्कूल खुलेगा, इसी से आज वहाँ जा रहा हूँ।

गोसाँई महाराज कुछ सोच कर बोले—अच्छा, जो आज न जाओ तो क्या नहीं बनेगा? आज घर लौट जाओ, कल जाना।

मैंने कहा—कल स्कूल खुलेगा। मेरी नई नौकरी है, इसमें गैरहाजिर होना ठीक नहीं। मुझे ऐसी आज्ञा न दीजिए।

गोसाँई ने कहा—तुम वहाँ कहाँ रहते हो?

"शहर के दक्षिण ओर एक पुराना मकान खाली पड़ा था। उसे ही किराये पर ले लिया है। उसमें मेरे स्कूल के एक मास्टर

रामविहारी बाबू भी रहते हैं।" कह कर मैं उन्हें प्रणाम करके चल दिया।

करीब तीन बजे दिन को गोरखपुर जा पहुँचा। स्नान भोजन करते करते पाँच बज गये। भोजन करके बरामदे में बैठ कर मैं तम्बाकू पी रहा था। इसी समय देखा कि मेरे गाँव का एक मल्लाह कन्धे पर लाठी रखे मेरे सामने आ खड़ा हुआ। उसे देख मैंने विस्मित होकर पूछा—कहो, तुम अकस्मात् किधर से आगये ?

सरकार! माई जी ने यह चिट्ठी दी है और एक कवच (यन्त्र) आपके हाथ में पहरने को भेजा है" यह कह कर मल्लाह ने चिट्ठी और कवच दिया।

चिट्ठी पढ़ कर देखा, माँ लिखती हैं—जब तुम घर से बिदा हो गये तब रामप्रपन्न गुसाँई आये थे। उन्होंने एक कवच देकर मुझसे कहा—"माँ, तुम्हारा लड़का आज सवेरे गोरखपुर जा रहा था। रास्ते में उससे भेंट हुई। उसी के लिए मैं यह रामकवच लाया हूँ। जैसे हो सके, इसे आज ही तुम अपने लड़के के पास भेज दो और खूब ताकीद के साथ लिख दो, जिसमें वह आज ही इस कवच को धारण करले। साथ ही यह भी लिख दो कि अगर किसी तरह का भय हो तो तारक ब्रह्म का नाम जपे। इस कवच और नाम के प्रभाव से वह सब आपदाओं से बच जायगा।" इसलिए मैंने धन्नू मल्लाह के हाथ यह पत्र और कवच भेज दिया है। पाते ही तुम

राम नाम स्मरण करके इसे भक्तिपूर्वक दहने हाथ में पहन लेना। इस में किसी तरह की गड़बड़ न हो। इसे तुम माता की आज्ञा समझना।

मैंने पत्र और कवच लेकर धन्नू से कहा—तुम आज यहीं रहो। तुम्हारे खाने पीने का बन्दोबस्त किये देता हूँ।

उसने कहा—जी नहीं, माई जी ने बहुत तरह से कह दिया है कि "तू खुद खड़ा होकर अपने सामने ही कवच पहनवा देना और आज ही रात में वहाँ से लौट कर मुझे खबर देना कि मेरा लड़का कवच पहन चुका।"

इससे उसको रहने के लिए मैंने फिर आग्रह नहीं किया। उसे दो आने देकर कहा—"यह लो, बाजार से कुछ चना-चबैना लेकर रास्ते में खाते हुए चले जाना।" कवच को मैंने बाँह में पहिर लिया। धन्नू मुझे प्रणाम करके चला गया।

उस दिन, रात को खा पीकर निश्चिन्त हो हम दोनों आदमी यथासमय सो रहे। सिरहाने के जङ्गले खुले हुए थे। आकाश बादलों से घिरा था। बीच बीच में बूँदा-बाँदी हो जाती थी। हवा के प्रबल झोंके आकर मेघों का उड़ा देते थे। मेघ हट जाने से चाँदनी निकल आती थी। हम दोनों कुछ देर तक गपशप करके चुप हुए। मैं तो रास्ते का थका था, आँख मूँदते ही नींद आगई।

निःशब्द रात में एकाएक नींद टूट जाने पर देखा कि हवा लगने से दिया बुझ गया है। बिखरे हुए बादलों के बीच की

चाँदनी खिड़की की राह से घर के भीतर आकर सामने की दीवार के कुछ अंश को आलोकित कर रही थी। नींद से जकड़ी हुई आँखों को धीरे धीरे खोल कर देखा तो मालूम हुआ मानो कङ्काल (ठठरी) मात्र देह को लिये एक बूढ़ा शख्स मेरी चारपाई के ऊपर दोनों हाथ जमाये घुटने तोड़े बैठा है और मेरी ओर टकटकी लगाये देख रहा है। उसका चेहरा पुराने रोगी के ऐसा था। गालों का चमड़ा सिकुड़ कर लटक गया था। मुँह में दाँत न रहने के कारण दोनों होठ नीचे को धँस गये थे। सिर के आड़े से सफेद बाल सीधे खड़े थे। उसकी आँखों से मानो क्रोध, घृणा और विद्वेष की ज्वाला निकल रही थी।

यह देख कर मेरा सारा शरीर काँप उठा। मारे डर के मैंने आँखें मूँद लीं। किन्तु मैं इस अवस्था में अधिक समय तक नहीं रह सका। फिर आँखें खोलीं तो देखा कि वह वीभत्स मूर्त्ति बिलकुल उसी तरह बैठी है। इससे मैंने फिर आँखें बन्द कर लीं। तब एकाएक माँ के पत्र की बात याद आई। मैंने मन में कहा, मुझे डर क्या है! मेरे हाथ में रामकवच है और धीरे से मैं तारक ब्रह्म का नाम भी लेने लगा। कुछ देर में जो फिर आँख खोली तो वह मूर्त्ति दिखाई नहीं दी। तब मैं साहस करके उठ बैठा और दबे हुए गले से अपने साथी को पुकारने लगा। रामबिहारी बाबू उठकर बोले—क्या है साहब?

तब मैंने चिराग जला कर उनको सारी घटना कह सुनाई।

उससे वे भी बहुत डरे। सारी रात हम दोनों ने बात चीत में ही बिता दी। सबेरे हम उस मकान को छोड़ कर दूसरी जगह उठ गये।

भोजन करके मैं साढ़े दस बजे स्कूल गया। टिफिन के समय चिट्ठीरसाँ ने एक चिट्ठी दी। देखा तो रामप्रपन्न गुसाईं का पत्र था। लिफाफे पर कल की तारीख और मुहर थी। चिट्ठी में लिखा था—

श्रीहरि

शुभाशीर्वादा सन्तु।

वत्स, कल तुम से भेंट होने के अनन्तर मैं तुम्हारे घर गया, और तुम्हारे लिए तुम्हारी माँ को एक 'रामकवच' दे आया। मैंने उनसे अनुरोधपूर्वक यह भी कहा कि आज ही वह कवच किसी तरह तुम्हारे पास भेज दें जिसमें तुम रात होने के पहलेही इस कवच को पहन सको। शायद आज रात को तुम्हें किसी तरह का भय होगा, परन्तु इस 'राम-कवच' के प्रभाव से तुम्हारा कुछ अनिष्ट न होगा। कवच को तुम खूब सावधानी से पहने रहना। यदि फिर कभी भय का कारण संघटित हो तो राम नाम जपना। सदा पवित्रता से रहना। यहाँ कुशल है, भगवती तुम्हारा कल्याण करे।

कुशलाभिलाषी
श्रीरामप्रपन्न

चिट्ठी पढ़कर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। मैंने वह चिट्ठी रामबिहारी बाबू को दिखलाई। वे भी बड़े चकित हुए।

दिवाली की छुट्टी के समय घर जाकर मैं सबसे पहले

गुसाईंजी को प्रणाम करने गया । उन्होंने संकट से मेरा उद्धार किया है, इसके लिए उनके निकट बहुतेरी कृतज्ञता प्रकट करके पूछा—अच्छा, कृपा करके यह बताइए कि मुझे उस रात को भय होगा—यह बात आपने कैसे जान ली ?

गुसाईं ने मुस्करा कर कहा—तुमने जब उस दिन आकर मुझे प्रणाम किया तभी मैंने देखा कि एक प्रेतात्मा तुम्हारे पीछे पीछे घूम रही है । किसी कारण से वह तुम्हारे ऊपर बहुत नाराज है और तुम्हारा प्राण-नाश करने ही की इच्छा से उसने तुम्हारा साथ पकड़ा है । केवल उपयुक्त अवसर नहीं मिला है, इसी से वह अब तक कृतकार्य नहीं हो सकी है । तुम्हारे चले जाने पर मैंने विचार कर देखा तो मालूम हुआ कि वह अवसर आज ही रात को आवेगा। इसी से झट-पट एक 'रामकवच' लिख कर मैं तुम्हारी माँ को दे आया था । जो हो, तुम कभी इस कवच का त्याग नहीं करना ।

मैंने कहा—गुसाईंजी ! मेरे साथ जो आदमी उस घर में सोता था उसे कोई भय क्यों नहीं हुआ ? हम दोनों ही एक साथ उस मकान में थे । फिर मेरे ही ऊपर उस भूत की इतनी नाराजी क्या ?

गुसाईं ने पूछा—उसका नाम क्या है ?

"उसका नाम रामविहारी है ।"

' वह ब्राह्मण है, और नियम धर्म से रहता है । इसी ब्राह्मण्य से भूत उसका सहसा कुछ नहीं कर सकता । तुम

कायस्थ हो, तुम्हारा प्राण-नाश करना उसके लिए कुछ कठिन काम न था।

यह सुन कर मैं कुछ देर तक चुपचाप सोचने लगा। फिर कहा—क्या वह भूत अब भी मेरा अनिष्ट करना चाहता है?

"हाँ, चाहता तो है। वह एक बार तुम्हें फिर दिखाई देगा। किन्तु मैं यह नहीं कह सकता कि वह कब दिखाई देगा। परन्तु इस रामकवच के प्रभाव से तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं होगा।"

इसके बाद अठारह वर्ष बीत गये। उस भूत की बात को मैं प्रायः भूल सा गया। पर 'रामकवच' को बराबर बड़ी सावधानी से पहने रहा। मैं द्वितीय शिक्षक से क्रमशः प्रथम शिक्षक के पद पर आरूढ़ हुआ। फिर और भी कई वर्ष तक नामवरी के साथ काम करके शिक्षा-विभाग में ही डिपुटी इन्सपेक्टर के पद पर नियुक्त हुआ। मेरा मासिक वेतन डेढ़ सौ रुपया हुआ। देहात में जगह जगह घूम कर मुझे स्कूलों का निरीक्षण करना पड़ता था। एक दिन मैं देहात की एक पाठशाला देखने जा रहा था। सवारी बैलगाड़ी की थी। सन्ध्या होने पर ब्यालू करके गाड़ी पर सवार हो उस गाँव की ओर रवाना हुआ।

शरद ऋतु की सुहावनी रात थी। निर्मल आकाश में चाँदनी की अपूर्व शोभा थी। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की पक्की सड़क पर गाड़ी मन्द गति से जा रही थी। मैंने पहले सोने की चेष्टा की,

दो घण्टे तक बराबर करवट बदलता रहा। जब किसी तरह नींद नहीं आई तब आँखें पोछ कर उठ बैठा। देखा, गाड़ीवान अपने बैठने की उसी छोटी सी जगह में किसी तरह हाथ पैर सिकोड़ कर सो गया है। चाँदनी रात थी। रास्ता बहुत बढ़िया था। दोनो बैल धीरे धीरे अपने मन से चले जा रहे थे। रास्ते के दोनो तरफ पेड़ लगे थे। कोई दूर दूर पर और कोई नजदीक ही नजदीक थे। सन सन करती हुई हवा बह रही थी। बेचारा गाड़ीवान आराम से सोया है, यह देख कर उसे जगाने की मुझे इच्छा नहीं हुई। परन्तु बैलो का अरक्षित अवस्था मे अपने मन से राह चलना भी ठीक नहीं जँचा। कहीं वे लीक छोड़ कर सड़क के नीचे उतर पड़े तो गाड़ी उलट जाने का खौफ है। यह सोच कर मैं फिर नहीं सोया, बैठा ही रहा।

इस तरह शायद एक घण्टा बीता होगा। मैं भी कुछ कुछ ऊँघने लगा। आँखें झप जाने के कारण मैं बैठे ही बैठे झुकने और फिर चौक कर जागने लगा। इतने मे एकाएक बैल रुक गये। गाड़ी जरा धक्का खा कर खड़ी हो गई। मैं भी जाग पड़ा।

आँखें खोल कर देखा यह क्या! वही भयङ्कर मूर्त्ति सामने खड़ी है। दोनो बैलो के आगे रास्ता रोक कर गाड़ी के जुए के ऊपर दोनो दुबले हाथ रक्खे वही बुड्ढा, अस्थि-चर्मावशिष्ट देह लिये, खड़ा है और क्रोधाग्नि से भरे हुए नेत्रों से मेरी ओर ताक रहा है। उसे देख कर मारे डर के मेरा शरीर सर्द हो

गया । मैं काँपने लगा । छाती के पास हाथ रख कर तारक ब्रह्म का नाम जपने लगा । कुछ देर में जप करते करते देखा तो वह मूर्त्ति, छाया की भाँति, विलीन हो रही है । जब वह एकबारगी अदृश्य हो गई तब दोनो बैल गाड़ी को पीछे की ओर घुमाकर बड़े वेग से दौड़ने लगे । जिस रास्ते से हम आये थे उसी रास्ते से लौट चले ।

गाड़ी की खड़खड़ाहट से गाड़ीवान की नींद टूट गई । वह हड़बड़ा कर उठ बैठा । हमसे बोला—"बाबू यह क्या ? बैल इस तरह क्यों दौड़े जा रहे हैं ?" मैंने उससे सच्ची बात न कह कर सिर्फ इतना ही कहा—"शायद रास्ते में किसी तरह डर गये हो, इसी से डर कर घर की ओर दौड़ जा रहे हैं ।" तब गाड़ीवान ने गाड़ी को रोकने और उसको घुमा कर आगे ले चलने के लिए बड़ी चेष्टा की । बैलों की पूँछ पकड़ कर खूब जोर से अपनी ओर खींची तो भी वे खड़े नहीं हुए । दौड़ते ही चले गये । आखिर जब एक गाँव मे बाजार के नजदीक पहुँचे और वहाँ बहुतेरे लोगो और बैलगाड़ियो को देख पाया तब खड़े हुए । बैलो को बेतरह थके देख कर मैंने गाड़ीवान से कहा—अब आगे बढ़ने की जरूरत नहीं, आज रात को यहीं ठहर जाओ । बैलो को खोल दो, उन्हे दाना-घास दो । यहाँ से कल सवेरे चलेंगे ।

इसके बाद सात वर्ष हो गये परन्तु फिर कभी किसी तरह का भय नहीं हुआ । उस 'रामकवच' को मैं अब भी धारण किये

हुए हूँ और जब तक जीऊँगा, धारण किये रहूँगा। मेरी माँ और गुसाँई जी के लिखे हुए वे दोनो पत्र अब तक मेरे पास मौजूद हैं। अगर कोई देखना चाहे तो मैं दिखा सकता हूँ।

बाबू भवानीप्रसाद से जो कुछ सुना उसे मैंने अपने हाथ से ऊपर ज्यों का त्यों लिखा है।

सिद्धिनाथ ।

यह घटना मेरे कहने के मुताबिक श्रीयुत सिद्धिनाथ जी ने अपने हाथ से लिखी है। यह घटना मेरी आँखों की देखी हुई है तथा अक्षरश सत्य है।

लहरपुर—गोरखपुर। } श्रीभवानीप्रसाद—
गवनमेंट पेन्शनर ।

लेख सुनकर सभा में स्थित सभी लोग कुछ देर तक मन्त्र-मुग्ध की भाँति चुप बैठे रहे। फिर सेक्रेटरी ने कहा—सिद्धिनाथ जी, उन दोनो पत्रों को आपने अपनी आँख से देखा भी है?

"जी हाँ।"

"डाक से जो चिट्ठी आई थी उसका लिफाफा है?"

"जी हाँ, है।"

"मुहर तारीख ठीक है?"

"ठीक है।"

"तब तो"—कह कर सेक्रेटरी महाशय चुप हो रहे। सभा के सभी लोग परस्पर एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

अब सभापति महाशय खाँस कर बोले—इसके लिए आप लोग इतने चिन्तित क्यों हो रहे हैं? भवानीप्रसाद जी ने जिस घटना का वर्णन किया है उसे अक्षरशः सच मान लेने पर भी भूत का अस्तित्व प्रमाणित नहीं होता।

सभा में से एक व्यक्ति बोल उठा—उसे भूत नहीं तो और क्या कहेंगे।

सभापति ने गम्भीरभाव से कहा—"इलेक्ट्रिसिटी।"

इस पर सबलोग चुप हो रहे। सभापति फिर धीरे धीरे अपने पूर्वकथित वाक्य को युक्तियुक्त सिद्ध करने की इच्छा से यों कहने लगे—

"भूत नहीं, इलेक्ट्रिसिटी। मनुष्य की आत्मा थोड़ी सी बिजली के सिवा और कुछ नहीं है। जब गङ्गा का जल बढ़ता है तब किनारे को डुबो कर और भी बहुत दूर तक फैल जाता है। फिर जब गङ्गा का जल घट जाता है तब किनारे के बाहर, इधर उधर, जल विच्छिन्न अवस्था में पड़ा रह जाता है। वह गङ्गा के प्रवाह के अन्तर्गत न होने पर भी गङ्गा का ही भूतपूर्व अंश कहा जायगा। यही हाल मनुष्य की आत्मा के ह्रास और वृद्धि का है। किसी कारण से आत्मा रूप विद्युत् की वृद्धि होजाय तो उसका कुछ अंश मनुष्य के शरीर से छलक कर बाहर भी आ पड़ता है और जब घटता है तब आत्मा अर्थात् विद्युत् का कुछ अंश बिखरी हुई अवस्था में बाहर ही रह जाता है। वह बाहर का अंश बराबर मनुष्य के पीछे पीछे घूमता फिरता है। अगर मनुष्य कुस-

हुए हूँ और जब तक जीऊँगा, धारण किये रहूँगा। मेरी माँ और गुसाँई जी के लिखे हुए वे दोनों पत्र अब तक मेरे पास मौजूद हैं। अगर कोई देखना चाहे तो मैं दिखा सकता हूँ।

बाबू भवानीप्रसाद से जो कुछ सुना उसे मैंने अपने हाथ से ऊपर ज्यों का त्यों लिखा है।

सिद्धिनाथ।

यह घटना मेरे कहने के मुताबिक श्रीयुत सिद्धिनाथ जी ने अपने हाथ से लिखी है। यह घटना मेरी आँखों की देखी हुई है तथा अक्षरशः सत्य है।

लहरपुर—गोरखपुर। } श्रीभवानीप्रसाद—
गवर्नमेंट पेन्शनर।

लेख सुनकर सभा में स्थित सभी लोग कुछ देर तक मन्त्र-मुग्ध की भाँति चुप बैठे रहे। फिर सेक्रेटरी ने कहा—सिद्धिनाथ जी, उन दोनों पत्रों को आपने अपनी आँख से देखा भी है?

"जी हाँ।"

"डाक से जो चिट्ठी आई थी उसका लिफाफा है?"

"जी हाँ, है।"

"मुहर तारीख ठीक है?"

"ठीक है।"

"तब तो"—कह कर सेक्रेटरी महाशय चुप हो रहे। सभा के सभी लोग परस्पर एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

अब सभापति महाशय खाँस कर बोले—इसके लिए आप लोग इतने चिन्तित क्यों हो रहे हैं? भवानीप्रसाद जी ने जिस घटना का वर्णन किया है उसे अक्षरश सच मान लेने पर भी भूत का अस्तित्व प्रमाणित नहीं होता।

सभा में से एक व्यक्ति बोल उठा—उसे भूत नहीं तो और क्या कहेंगे।

सभापति ने गम्भीरभाव से कहा—"इलेक्ट्रिसिटी।"

इस पर सबलोग चुप हो रहे। सभापति फिर धीरे धीरे अपने पूर्वकथित वाक्य को युक्तियुक्त सिद्ध करने की इच्छा से यों कहने लगे—

"भूत नहीं, इलेक्ट्रिसिटी। मनुष्य की आत्मा थोड़ी सी बिजली के सिवा और कुछ नहीं है। जब गङ्गा का जल बढ़ता है तब किनारे को डुबो कर और भी बहुत दूर तक फैल जाता है। फिर जब गङ्गा का जल घट जाता है तब किनारे के बाहर, इधर उधर, जल विच्छिन्न अवस्था में पड़ा रह जाता है। वह गङ्गा के प्रवाह के अन्तर्गत न होने पर भी गङ्गा का ही भूतपूर्व अंश कहा जायगा। यही हाल मनुष्य की आत्मा के ह्रास और वृद्धि का है। किसी कारण से आत्मा रूप विद्युत् की वृद्धि होजाय तो उसका कुछ अंश मनुष्य के शरीर से छलक कर बाहर भी आ पड़ता है और जब घटता है तब आत्मा अर्थात् विद्युत् का कुछ अंश बिखरी हुई अवस्था में बाहर ही रह जाता है। वह बाहर का अंश बराबर मनुष्य के पीछे पीछे घूमता फिरता है। अगर मनुष्य कुस-

हुए हूँ और जब तक जीऊँगा, धारण किये रहूँगा। मेरी माँ और गुसाँई जी के लिखे हुए वे दोनो पत्र अब तक मेरे पास मौजूद हैं। अगर कोई देखना चाहे तो मैं दिखा सकता हूँ।

बाबू भवानीप्रसाद से जो कुछ सुना उसे मैंने अपने हाथ से ऊपर ज्यों का त्यों लिखा है।

सिद्धिनाथ।

यह घटना मेरे कहने के मुताबिक श्रीयुत सिद्धिनाथ जी ने अपने हाथ से लिखी है। यह घटना मेरी आँखों की देखी हुई है तथा अक्षरशः सत्य है।

लहरपुर—गोरखपुर। } श्रीभवानीप्रसाद—
गवर्नमेंट पेंशनर।

लेख सुनकर सभा में स्थित सभी लोग कुछ देर तक मन्त्र-मुग्ध की भाँति चुप बैठे रहे। फिर सेक्रेटरी ने कहा—सिद्धिनाथ जी, उन दोनो पत्रों को आपने अपनी आँख से देखा भी है?

"जी हाँ।"

"डाक से जो चिट्ठी आई थी उसका लिफ़ाफ़ा है?"

"जी हाँ, है।"

"मुहर तारीख ठीक है?"

"ठीक है।"

"तब तो"—कह कर सेक्रेटरी महाशय चुप हो रहे। सभा के सभी लोग परस्पर एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

अब सभापति महाशय खाँस कर बोले—इसके लिए आप लोग इतने चिन्तित क्यों हो रहे हैं ? भवानीप्रसाद जी ने जिस घटना का वर्णन किया है उसे अक्षरशः सच मान लेने पर भी भूत का अस्तित्व प्रमाणित नहीं होता।

सभा में से एक व्यक्ति बोल उठा—उसे भूत नहीं तो और क्या कहेंगे।

सभापति ने गम्भीरभाव से कहा—"इलेक्ट्रिसिटी।"

इस पर सब लोग चुप हो रहे। सभापति फिर धीरे धीरे अपने पूर्वकथित वाक्य को युक्तियुक्त सिद्ध करने की इच्छा से यों कहने लगे—

"भूत नहीं, इलेक्ट्रिसिटी। मनुष्य की आत्मा थोड़ी सी बिजली के सिवा और कुछ नहीं है। जब गङ्गा का जल बढ़ता है तब किनारे को डुबो कर और भी बहुत दूर तक फैल जाता है। फिर जब गङ्गा का जल घट जाता है तब किनारे के बाहर, इधर उधर, जल विच्छिन्न अवस्था में पड़ा रह जाता है। वह गङ्गा के प्रवाह के अन्तर्गत न होने पर भी गङ्गा का ही भूतपूर्व अंश कहा जायगा। यही हाल मनुष्य की आत्मा के ह्रास और वृद्धि का है। किसी कारण से आत्मा रूप विद्युत् की वृद्धि हो जाय तो उसका कुछ अंश मनुष्य के शरीर से छलक कर बाहर भी आ पड़ता है और जब घटता है तब आत्मा अर्थात् विद्युत् का कुछ अंश विच्छिन्न अवस्था में बाहर ही रह जाता है। वह बाहर का अंश बराबर मनुष्य के पीछे पीछे घूमता फिरता है। अगर मनुष्य कुछ

स्कारापन्न हुआ तो उसे देख कर भूत समझता है और डर भी जाता है।"

सिद्धिनाथ ने कहा—उसे भूत कहिए चाहे इलेक्ट्रिसिटी कहिए पर वह तारकब्रह्म का नाम लेने से गायब क्यों हुआ?

सभापति ने हँस कर उत्तर दिया—यह आप नहीं समझ सके? गङ्गा का जल जब फिर बढ़ता है तब क्या होता है? वह पूर्व का विच्छिन्न अंश फिर प्रवाह के साथ मिल जाता है—उसका स्वतन्त्र अस्तित्व लुप्त हो जाता है। इसी तरह तारक ब्रह्म का नाम जपने से उस बाबू की आत्मा अर्थात् इलेक्ट्रीसिटी बड़े वेग से बढ़ चली और बाहर के जिस विच्छिन्न अंश को उसने भूत समझ लिया था वह भीतर के प्रवाहित अंश के साथ मिल कर एक हो गया। इससे यह नहीं समझना कि वह विला गया।

यह नया समाधान सुनकर सभा में स्थित सभी लोगों के चेहरे पर कुछ आश्चर्य और प्रशंसा करने का भाव झलक उठा। कोई कोई मन्द स्वर से कहने लगे—सभापति महाशय ने बड़ी अच्छी युक्ति निकाली है। हम लोगों का सन्देह दूर होगया।

सिद्धिनाथ ने कहा—अच्छा तो उन दोनों बैलों ने उस तरह क्यों किया? अगर सचमुच ही बैलों ने कुछ देखा नहीं तो भयभीत होकर वे दौड़ने क्यों लगे?

सभापति ने कहा—बैल का शरीर एक विशेष विद्युन्मान यन्त्र है अर्थात् गैलवैनोमीटर। थोड़ी सी इलेक्ट्री-

सिटी पास आने पर भी बैल उसको तुरन्त जान सकता है। इसीसे हिन्दू शास्त्र में बैल को पवित्र कहा है यहाँ तक कि वृषभ को धर्म का रूप माना है। यही कारण है कि इतने जानवर रहने पर भी महादेव ने बैल को ही अपना वाहन बनाया।

पण्डितजी ने कहा—आप का यह कहना बहुत ही ठीक है। महादेवजी का वाहन बैल है यह शास्त्र में भी लिखा है। उसका प्रमाण देता हूँ। यथा—

इसी समय घड़ी में टन टन् करके ग्यारह बज गये। शब्द-वारिधिजी के प्रमाण देने में बाधा देकर सभापति ने कहा—रात बहुत बीती। अब सभा विसर्जन हो।

सब सदस्य उठ उठ कर बाहर आने लगे। सेक्रटरी ने कहा—मोती बाबू को चिट्ठी लिखने की बात याद रहेगी न?

सभापति—जरूर याद रहेगी। कल सवेरे ही उठ कर चिट्ठी लिख रामकुमार बाबू के पास भेज दूँगा।

सभासद बाहर आये। चारों ओर गहरा अन्धकार छाया था। आकाश बादलों से ढका हुआ था। पानी की बूँदें टपक रही थीं। उस निर्जन मैदान के बीच में, उस निःशब्द रात में, जाने में कितनों ही की छाती धड़कने लगी। अवश्य ही यह धड़कन भूत के भय से नहीं थी, क्योंकि भूत तो होता ही नहीं। कुछ डर था तो केवल यही कि पेड़ों की ओट में कहीं विच्छिन्न इलेक्ट्रिसिटी न छिपी हो।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

ज़मींदारी कचहरी के समीप ही एक साधारण सी कोठरी में मोतीलाल की बैठक थी। दीवारों पर हिन्दू देवी-देवताओं की कई अच्छी अच्छी तसवीरें टँगी थीं। उनके सिवा स्वामी विशुद्धानन्द, श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और दयानन्द सरस्वती आदि महात्माओं के चित्र भी थे। कोठरी में एक ओर एक काँच की अलमारी थी जिसमें अँगरेजी, संस्कृत और हिन्दी के अनेक धर्म-ग्रन्थ थे। कुछ फारसी की पुस्तकें भी थीं। खिड़की के पास एक टेबल रक्खी थी। सामने कुरसी पर एक मारवाड़ी पण्डित बैठे थे। उसके पास ही एक चौकी पर शतरंजी बिछी थी, जिस पर मोतीलाल और प्रयाग से आये हुए उनके एक मित्र बैठे थे।

भोर का समय है। खिड़की की राह से मन्द मन्द बयार आ रही है। आगत मित्र मोतीलाल के साथ शास्त्र-चर्चा कर रहे हैं—बीच बीच में पण्डितजी भी टीका टिप्पणी करते जाते हैं। इनका घर मारवाड़ में है, बहुत दिनों से प्रयाग में रहते हैं। ये विशुद्ध हिन्दी भाषा अच्छी तरह समझते हैं। किन्तु बोलने में गड़बड़ाते हैं। ये ज्योतिषी हैं। दारागंज का एक मारवाड़ी इनको कुछ मासिकवृत्ति देकर अपने यहाँ ठहराये हुए है। ये खरीद-फरोख्त का शुभ मुहूर्त्त बता दिया करते हैं। कभी

कभी पश्चिम की अनेक रियासतों में भी घूम फिर आते हैं। कितने ही जमींदारों के यहाँ से उन्हें सालाना भी पाते हैं। जहाँ सालाना नियत नहीं है वहाँ भी जाते हैं। अक्सर बड़े आदमियों से कहा करते हैं—"बाबू साहब, आपके ग्रह अभी बहुत खराब जा रहे हैं किन्तु अमुक तारीख के बाद एक अत्यन्त शुभग्रह का उदय होगा। उस दिन सबेरे उठ कर स्नान करने के पूर्व एक कच्चा फल—कच्चा नारियल हो तो और अच्छा—वरुण देवता का नाम लेकर नदी में बहा दीजियेगा और फिर स्नान करके दोनों कानों पर लाल रङ्ग के फूल धारण कीजिएगा।" पण्डितजी सामुद्रिक विद्या में भी निपुण हैं। लोगों का हाथ देख कर कहते हैं—"बाल्यावस्था में आपको एक बार सख्त बीमारी हुई थी। प्राण बचने की कठिन आशा न रही थी। एक बार ऊँची जगह से नीचे गिरने और एक बार पानी में डूबते डूबते बच जाने का प्रसंग आया होगा। आपको तीर्थ-भ्रमण और बुढ़ापे में वैराग्य लिखा है।" ये बातें अधिकांश मिल भी जाती हैं। नवरात्र के अनन्तर दो तीन महीने बाहर घूम फिर कर कुछ द्रव्य संग्रह करके पण्डितजी फिर प्रयाग लौट आते हैं। इनके पैरों में नागौरी जूता है। पुराना कुछ मैला सा टसर का अँगरखा पहने हैं। कन्धे पर बनारसी दुपट्टा और सिर पर मारवाड़ी पगड़ी है। उम्र चालीस वर्ष के करीब होगी। मूँछें दाढ़ी और कुछ लम्बी हैं। दाढ़ी मुँड़ी हुई है, अँगरखे के पाकेट में पीतल की दो डिबियाँ हैं। बड़ी डिबिया में नस्य

और छोटी में चूना रहता है । बीच बीच में पण्डितजी तम्बाकू के पत्ते के साथ चूना मिला कर बाईं हथेली पर रख दहने हाथ के अँगूठे से खूब जोर से मलते हैं और उसे चुटकी से ले नीचे के होंठ को खींच कर उसमें डालते हैं । तेज तम्बाकू की तासीर से बीच बीच में पण्डितजी जम्हाई लेते हैं और जम्हाई के साथ साथ अँगड़ाई लेकर के चुटकी बजाते हुए 'सीताराम सीताराम' कहते हैं ।

मोतीलाल के आगत मित्र का नाम नारायणप्रसाद है । यह मोतीलाल का सहपाठी है । एम० ए० पास करके अब डिपुटीगरी पाने का प्रयत्न कर रहा है । नवम्बर में परीक्षा होगी—उसके लिए तैयार हो रहा है । प्रयत्न सफल होने का कुछ भरोसा भी मिला है । बड़े दिन के समय लखनऊ जा कर बहुत रुपया खर्च करके नारायण बाबू के पिता बड़े बड़े हाकिमों को डाली दे आये हैं । नारायण बाबू के एक क्वारी बहन है । वह अब व्याहने योग्य हो गई है । उसके साथ मोतीलाल के व्याह की बात चलाने से सफलता की कोई आशा है या नहीं—गुप्त रीति से यही जानने के लिए नारायण बाबू आये हैं ।

इतने में घड़ी में सात बज गये । एक नौकर एक प्याला गरम चाय लाकर सामने आ खड़ा हुआ । नारायण बाबू चौकी से उठ टेबल के पास एक बेञ्च पर जा बैठे और चाय पीने लगे । चौकी पर बैठकर चाय नहीं पी और प्याले को टेबल के ऊपर भी नहीं रक्खा,—मोतीलाल शायद इसे अनाचार

समझे, यही नारायण बाबू के मन में आशङ्का थी। चाय पीकर और नौकर के लाये हुए पानी से हाथ-मुँह धोकर वे फिर चौकी पर आ बैठे। अपनी नवाङ्कुरित दाढ़ी पर उँगली फेरते फेरते बोले—

इसके बाद—क्या बात हो रही थी? हाँ तुम ने जो कहा—"अपनी आध्यात्मिक उन्नति संसार-बन्धन से छूटे बिना नहीं हो सकती इसलिए मुझे सन्यासी होना पड़ेगा—" यह तुम्हारी बड़ी भूल है। मनुष्य इस गृहस्थाश्रम में रह कर ही धर्म कर्म कर सकता है, भजन साधन कर सकता है,—अपनी मुक्ति का उपाय ढूँढ सकता है। इसके लिए मनुष्य को जङ्गल में जाने की जरूरत नहीं। कहिए पण्डित जी, यह बात ठीक है न?

पण्डितजी—हाँ बाबू आप ठीक कहते हैं। बहुत ठीक। देखिए, जनकजी महाराज कितना भारी महात्मा थे, राजर्षि थे—गृही भी थे। गृहस्थाश्रम में रह कर ही वे ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिये थे।

मोतीलाल—माना कि घर पर रह कर भी धर्माचरण किया जा सकता है किन्तु धार्मिक गृही जो गति पाता है, उसकी अपेक्षा क्या संसार त्यागी तपस्वी उत्तम गति नहीं पाते? शास्त्र में देखता हूँ कि तपस्या में निरत ऋषि मुनि, संसारी बखेड़े से दूर हट कर जङ्गल या पहाड़ की गुफा में रहते थे तथा लोगों की आँख बचाकर बहुत दिनों तक तपस्या करते थे।

नारायण बाबू—यह कुछ आवश्यक नहीं कि तपस्या करने के लिए जङ्गल में ही जाना चाहिए। मैं कहता हूँ, घर बैठ कर भी तपस्या हो सकती है और उसी तपस्या में अधिक फल है। ससार का मोह, माया, मद, मात्सर्य आदि छोड कर जो तपस्या की जाती है वही सच्ची तपस्या है। वन में जाकर तपस्या करना मानो धोखा देकर मुक्ति-लाभ करना है।

मोतीलाल—' देखिए, पहले यह समझना होगा कि तपस्या क्या चीज है। शास्त्र ने तपस्या तीन प्रकार की बतलाई है—शारीरिक, वाचिक और मानसिक। यथा—

सुरविप्रगुरुप्राज्ञपूजापावित्र्यमार्जवम्।
अहिंसाब्रह्मचर्यं च शारीर विद्धि तत्तप ॥
सत्य प्रिय हित वाक्य यतो नोद्विजते जन ।
वेदाद्यभ्यसन चापि तपो वाङ्मयमुच्यते ॥
सौम्यत्व चेतस शुद्धिर्मौनमिन्द्रिय-निग्रह ।
स्वभावस्य पराशुद्धिरुच्यते मानस तप ॥

अर्थात् देवता, ब्राह्मण, गुरु और विद्वानों का आदर, पवित्रता, सरलता, अहिंसा और ब्रह्मचर्य, इसे शारीरिक तप जानो। ऐसा सत्य, प्रिय और हितकारक वचन बोलना कि जिससे किसी के मन में दु ख न हो, तथा वेदादि शास्त्र का अध्ययन करना वाचिक तप कहलाता है। सौम्यत्व (शान्तता) चित्तशुद्धि, मौन (मितभापिता), जितेन्द्रियता और स्वभाव को अतिशय पवित्र रखना मानसिक तप है। अब देखना है

समाधिस्थो हृदि सुखी क्रीडते च प्रकाशते।
ब्रह्मभाव स सम्प्राप्य नरो मोक्षमवाप्नुयात्॥

अर्थात् जो समाधिस्थ पुरुष मन में ही सुखी रहता है, मन में ही खेलता है, और मन में ही प्रकाशित रहता है वही पुरुष ब्रह्मभाव को पाकर मोक्ष प्राप्त करता है।

नारायण बाबू ने फिर धीरतापूर्वक कहा—यह तो हुआ आत्म-सुख। अपनी आत्यन्तिक दु ख-निवृत्ति और अपनी नित्य-सुख-प्राप्ति को मैं मनुष्य जीवन का उच्चतम लक्ष्य नहीं मानता।

"तब तुम किसे उच्चतम लक्ष्य मानते हो?"

"देश-सेवा और जाति-सेवा को। जो दुखी हो उसके दु ख करने की चेष्टा, जो रोगी हो उसकी रोगपीडा शान्त करने प्रयत्न और जो अज्ञानी हो उसे ज्ञान प्रदान करना मेरी मे उच्च लक्ष्य है। मेरे मत से लोकसेवा ही मनुष्य का धर्म है।"

नीलाल ने कहा—लोकसेवा? इसमे सन्देह नहीं कि

मनुष्य होकर संसार में जन्म लिया है तब मनुष्य का यह दुःख-शोक, पाप-ताप यदि किसी तरह कुछ मिटा सकूँ, मनुष्य के स्वास्थ्य, ज्ञान और सुख के अंश को यदि कुछ बढ़ा सकूँ तभी अपने जीवन को सार्थक मानूँगा—तभी अपने कर्त्तव्य को सम्पन्न समझूँगा।

मोतीलाल—तुम हिन्दू सन्तान हो कर मुक्ति को स्वीकार नहीं करते! तब तो मालूम होता है, तुम आत्मा का अस्तित्व भी नहीं मानते होगे?

'आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करने पर मुक्ति की आवश्यकता स्वयं सिद्ध हो जाती है, किन्तु वन में जा पेड़ों के पत्ते खाकर अपने चारों ओर आग जलाने और उसके बीच में पैरों के बल लटक कर नीचे को सिर करके तपस्या करने ही से आत्मा की मुक्ति होगी इसे स्वीकार नहीं करता।"

"तुम क्रिस्तान पादरी की युक्ति का अवलम्ब करके यह कहते हो। कौन कहता है कि पेड़ के पत्ते खाना, पंचअँगीठी तापना या सिर नीचे करके पैर ऊपर लटका कर रहना ही मुक्ति का साधन है? एकान्त में रहकर एकाग्र मन से ईश्वर का ध्यान करने ही के लिए ऋषि मुनि वन को जाते थे। मुक्ति पदार्थ कुछ हाथी घोड़ा नहीं है। "शरीरेन्द्रियाभ्यामात्मनो मुक्तत्वं मुक्तिः।" वेदान्त के मत से नित्य-सुख-प्राप्ति ही मुक्ति है। नैयायिकों के मत से दुःख का अत्यन्त अभाव होना ही मुक्ति है। बातें दोनों एक ही हुईं। वेदान्त रामायण में लिखा है—

समाधिस्थो हृदि सुखी क्रोडते य प्रकाशते ।
ब्रह्मभाव स सम्प्राप्य नरो मोक्षमवाप्नुयात् ॥

अर्थात् जो समाधिस्थ पुरुष मन मे ही सुखी रहता है, मन म ही खेलता है, और मन मे ही प्रकाशित रहता है वही पुरुष ब्रह्मभाव को पाकर मोक्ष प्राप्त करता है ।

नारायण बाबू ने फिर धीरतापूर्वक कहा—यह तो हुआ आत्म-सुख । अपनी आत्यन्तिक दु ख-निवृत्ति और अपनी नित्य-सुख-प्राप्ति को मैं मनुष्य जीवन का उच्चतम लक्ष्य नहीं मानता ।

"तब तुम किसे उच्चतम लक्ष्य मानते हो ?"

"देश-सेवा और जाति-सेवा को । जो दुखी हो उसके दु ख दूर करने की चेष्टा, जो रोगी हो उसकी रोगपीड़ा शान्त करने का प्रयत्न और जो अज्ञानी हो उसे ज्ञान प्रदान करना मेरी समझ में उच्च लक्ष्य है । मेरे मत से लोकसेवा ही मनुष्य का परम धर्म है ।"

मोतीलाल न कहा—लोकसेवा ? इसमे सन्देह नहीं कि लोकसेवा सत्कर्म है किन्तु लोकसेवा ही मनुष्य का परमधर्म है इस बात को मैं नहीं सकारता । यह बात हिन्दू-समाज मे नहीं है—यह तो तुम अँगरेजो पढ़कर कहते हो ।

पण्डितजी बोले—हाँ, बाबू साहब, यह बात बहुत ठीक है । यह बात किसी पोथी मे नहीं देखता कि लोकसेवा हिन्दू का परम धर्म है । यदि गो-सेवा कहें तो यह अलबत्ता हिन्दू का धर्म है । मैंने एक दफे गोरक्षिणी सभा में इस सम्बन्ध में

एक वक्तृता भी दी थी, चन्दा वसूल करने के लिए कई जगह घूमा था—किन्तु ज्यादा वसूल नहीं कर सका। आज कल अँगरेजी पढ लिख कर कोई हिन्दू धर्म को नहीं मानता। इन दिनों अँगरेजी पढे ऐसे कितने ही बडे आदमी हैं जो घर पर आये हुए साधु सन्यासी, पण्डित ब्राह्मण को भोजन तक नहीं देते—किन्तु अस्पताल में हजार रुपया चन्दा देते हैं। बाप का श्राद्ध मुट्ठी बाँध कर करते हैं किन्तु कहीं दुर्भिक्ष हो तो वहाँ खूब रुपया खर्च कर डालते हैं। अन्न दान महादान है सही, किन्तु वह क्या डोम, चमार, कुर्म्मी, कहार को देने से होगा? साधु सन्यासी पण्डित ज्योतिषी को ही अन्न देने में पुण्य होता है।

पण्डितजी की बात सुन कर मोतीलाल और नारायण बाबू दोनों ही मुस्कुराने लगे।

इस तरह तर्क वितर्क में नव बज गये। तब एक नौकर ने आकर कहा—छोटे बाबू, एक आदमी आया है। वह आप से भेट करना चाहता है।

"कौन ?"

"गङ्करपुर का एक किसान।"

"अच्छा, आने दो।"

कुछ देर में एक अधेड आदमी ने सामने हाजिर हो हाथ जोड कर मोतीलाल को प्रणाम किया। वह कुर्त्ता पहने और सिर पर टोपी दिये था। कन्धे पर एक मैला सा अँगोछा था।

मोतीलाल ने उस आगत व्यक्ति को न पहचान कर पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ?

'मेरा नाम हरिदास है। मेरा घर शङ्करपुर में है।"

"अच्छा, क्या काम है?"

"मैं हजूर की ही रियाया हूँ।"

हरिदास ने जेब से एक चिट्ठी निकाली और—"मैं एक काम से आजमगढ गया था,—वहाँ मेरे वकील के बेटे रामकुमार बाबू ने हजूर को देने के लिए एक चिट्ठी दी है," कह कर उसने चिट्ठी मोतीलाल के हाथ में दी।

मोतीलाल ने चिट्ठी लेकर नीचे बिछी हुई दरी पर बैठने के लिए हरिदास को कहा। वह बैठ गया।

मोतीलाल मनही मन चिट्ठी पढ़ने लगे। समग्र चिट्ठी पढ चुकने पर बोले—अच्छा, आज ही इस चिट्ठी का जवाब डाक से दे दूँगा।

हरिदास हाथ जोड कर बोला—हजूर, ऐसी आज्ञा न हो। उन्होंने मुझसे कहा है, वे लोग हजूर के दर्शन के अभिलाषी हैं। काली-पूजा के एक दिन पहले हजूर का वहाँ जाना आवश्यक है। जो हजूर न जायँगे तो वे लोग बडे दुखी होंगे। उन्होंने मुझसे कह दिया है, निमन्त्रण का स्वीकार-पत्र लेकर आना। मुझको परसों फिर आजमगढ जाना होगा।

यह सुनकर मोतीलाल कुछ सोचने लगे। फिर बोले—अभी तो मेरे चिट्ठी लिखने का समय नहीं है। जा सकूँगा या

नहीं, यह भी विचारना होगा। तुम आजमगढ जाने के पहले एक बार यहाँ आजाना। जो उत्तर देना होगा, दे दूँगा।

हरिदास उठ खडा हुआ। हँसते हँसते बोला—हजूर कुछ उत्तर देनेही से काम न चलेगा। यदि आप जाना स्वीकार न करेंगे तो वे लोग मुझ पर बडेही असन्तुष्ट होंगे। मैं कल पिछले पहर यहाँ हाजिर होकर हजूर की चिट्ठी लेलूँगा।

मोतीलाल—अच्छा, कल साँझ को आना। देखा जायगा।

हरिदास प्रणाम करके चला गया। नारायण बाबू के साथ मोतीलाल का फिर तर्क आरम्भ हुआ।

नारायण बाबू ने कहा—देखो तुम जो यह मुक्ति मुक्ति करके पागल हो रहे हो, यह केवल मृग-तृष्णा है। आत्मा हो तो उसकी मुक्ति होगी। आत्मा है, इसीका क्या प्रमाण? यदि कहीं कोई प्रमाण मिला हो तो बताओ।

मोतीलाल—प्रमाण की बात क्या पूछते हो? प्रत्यक्ष प्रमाण तो इसका कुछ है नहीं। क्योंकि न मैं इसे आँख से देख सकता हूँ और न दूसरा ही कोई इसे देख सकता है।

"और किसी तरह का प्रमाण दसकते हो?"

"प्रमाण अपने मन में है। आदि काल से, सब देशों में, सब जातियों में, यह विश्वास है कि मृत्यु के अनन्तर भी मनुष्य की स्वतन्त्र सत्ता रहती है। सभ्य, असभ्य सभी जाति के लोगों के मन में यह एक प्रबल धारणा है कि मृत्यु के साथही साथ सब काण्ड समाप्त नहीं हो जाता। मृत्यु के बाद यदि कुछ शेष

न रहता तो सब काल में, सब जातियों के मनों में, यह विश्वास क्यों उत्पन्न होता? मनुष्य की पिपासा के अनुरूप ही जल है। जैसी भूख है, वैसा ही भोजन है। सभी लोग इच्छा के अधीन हैं। इच्छा पूरी होने ही में परितृप्ति है। असाध्यवस्तु में किसी को इष्ट-साधन की उत्पत्ति नहीं होती। यदि परलोक न होता तो उसके सम्बन्ध में ऐसी प्रबल धारणा मनुष्य के मन में क्यों उत्पन्न होती?"

यह सुन कर नारायण बाबू मुस्कुराने लगे। वे बोले—असभ्य जाति के मन में परलोक की धारणा क्योंकर हुई है, यह हर्बर्ट स्पेन्सर ने अच्छी तरह सोच देखा है। वे कहते हैं कि, जिन कारणों से मनुष्य अधिक स्वप्न देखता है वे कारण असभ्यों की जीवनयात्रा की प्रणाली में पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। उन्हें भूख भी बहुत अधिक लगती है और वे भोजन भी खूब डटकर करते हैं, अर्थात् जितना ही उन्हें भूखे रहने का अभ्यास है उतना ही अधिक भोजन करने का भी है। मानलो वे शिकार करने के लिए जङ्गल में घुसे हैं, दो दिन तक भूखे रह गये, कहीं कुछ खाने को मिला ही नहीं। फिर जब खाने लगे तो दो दिन की खाद्य-सामग्री एक ही दिन में खा डाली। विन्ध्याचल में जाकर धन्ना देकर भूखे प्यासे रहने से 'माता' स्वप्न देती हैं यह बात नहीं है। तुम दो दिन कुछ न खाओ और एक घर में सो रहो तो देखना कैसे कैसे अद्भुत स्वप्न देख पड़ते हैं। फिर अति भोजन से भी वैसा ही होना है। एक असभ्य,

दिनभर भूखा प्यासा शिकार के पीछे घूमता रहा, रात में एक जगह सो गया। स्वप्न में देखा, मानो वह शिकार करने जङ्गल में गया है, एक बहुत बड़ा हिरन मिला, उसे एक ही बाण में मार डाला। बड़ी खुशी से उसे घर लाकर काट कूट कर चूल्हे पर चढा दिया। मास पक जाने पर ज्योंही परोस कर खाना चाहा कि अकस्मात् उसकी नींद टूट गई। अथवा दूसरे दिन गले तक पट भर के सोया है, सपना देखा, एक भालू ने आकर उसे धर दबाया। वह चिल्ला उठा। नींद टूट गई। साथियों ने पूछा—'क्यों रे, तू चिल्ला क्यों उठा? तुझे क्या हुआ है?' असभ्य लोग नहीं जानते कि स्वप्न क्या चीज है। वे यह सोच ही नहीं सकते कि 'सपना देखा है।' वह बोला—'क्या कहूँ भाई, मैं शिकार ढूँढते ढूँढते एक घने जङ्गल में जा पडा। साथ में कोई था नहीं। एक झुरमुट से भालू ने दौडकर मुझे पकड लिया। तब मैं कैसे न चिल्लाता?' साथियों ने कहा—'धत्तेरे की, पागल कहीं का! तू तो बराबर यहीं सोया था।'—प्रतिदिन इसी तरह की अनेक लोगों की अनेक घटनाओं से, असभ्यों के मन में क्रमश विश्वास हुआ कि 'मुझे छोड़ और एक 'मैं' (other self) है।' इसी लिए उस दूसरे 'मैं' को क्रमश-आत्मा मानने की धारणा हुई।

मोतीलाल—अगर यही हो तो क्या हर्ज है?

नारायण बाबू ने कहा—वाह! तुम्हारी समझ तो बडी विलक्षण है। तुम कहना चाहते हो कि मनुष्य की आत्मा

शिकार करने के लिए घूमती फिरती है । और भालू उसे पकड भी सकता है । अगर वह तीर चला सकती है और भालू उसे पकड सकता है, तब तो वह आत्मा जड-देह-विशिष्ट हुई । क्या तुम आत्मा को जड पदार्थ मानते हो ?

"नहीं, इसे मैं कदापि नहीं मानता । किन्तु असभ्यों की भ्रान्ति धारणा से क्रमश सभ्य जाति की उन्नत सत्य धारणा उत्पन्न होती है ।"

नारायण बाबू ने कहा—मेरा कहना यह है । तुम कहते हो कि परलोक और आत्मा के अस्तित्व-सम्बन्ध में एक धारणा, एक वासना, मनुष्य सृष्टि के आदिकाल में भी वर्तमान थी । मैं दिखलाता हूँ—हम लोग जो यह समझते हैं कि आत्मा है, सो हमारी यह धारणा ठीक नहीं । यह सम्पूर्ण जडवाद है । अब भी ऐसी अनेक असभ्य जातियाँ हैं जो माँ-बाप के मरने पर कब्र के भीतर खाने पीने की चीजें और पहिनने के कपडे रख देती हैं । उनकी धारणा यह रहती है कि मेरी माँ या मेरा बाप यह खाना खायगा, ये कपडे पहिनेगा । बहुत दिन की बात नहीं है जब मडागास्कर की रानी मर गई तब कब्र के भीतर बहुतेरी रेशमी पोशाकें, गहने, काँच के बर्तन, टेबल, कुरसी और एक बक्स में तेंतीस हजार रुपये रानी की लाश के साथ गाड दिये गये थे ।

मोतीलाल—यह भूल है, इसमें सन्देह नहीं । किन्तु देखो,

इस जीवन के परे और भी एक जीवन है—यह प्रवल वासना कहाँ से आई ?

"क्या तुम यह कहना चाहते हो कि वासना रहने ही से उसकी पूर्त्ति होती है ? स्पेन्सर ने 'सोशिआलोजी' में लिखा है कि भिन्न भिन्न असभ्य जातियों की स्वर्ग की वासना कैसी भिन्न भिन्न प्रकार की होती है । पाटागोनिय गण की प्रवल वासना है कि स्वर्ग में जाकर वे दिन रात इतना मद्यपान करेंगे (To enjoy the happiness of being eternally drunk) कि अनन्तकाल तक उसका नशा न उतरेगा ; क्या तुम कह सकते हो कि परलोक में उनके लिए अवश्य ही यह व्यवस्था है ? तुम्हारी प्रवल वासना भी इसी श्रेणी की है । तुम्हारी इस कामना का उत्तर जान स्टुअर्ट मिल ने अच्छा दिया है । वह कहता है—एक बाबू दफ्तर में जब तीस रुपया महीना पाता है तब उसके मन में यह प्रवल वासना रहती है कि मैं किसी समय इस आफिस का बड़ा बाबू होकर तीन सौ रुपया महीना पाऊँगा । देखा जाता है कि प्राय बाबुओं के जीवन में इस वासना की पूर्त्ति नहीं होती ।

"इससे क्या सिद्ध हुआ ?"

"इससे यही सिद्ध हुआ कि प्रवल वासना होनेही से उसकी पूर्ति निश्चय सभावित है—यह समझना भूल है ।"

यह सुन कर मोतीलाल कुछ देर चुप रहे फिर बोले—तर्क के द्वारा इन बातों की मीमासा नहीं होती । किसी काल

में होगी, इसकी भी सम्भावना नहीं है। तर्क के द्वारा या अपनी बुद्धि के द्वारा मैं यह जान सका हूँ, सो भी नहीं। त्रिकालदर्शी पूज्यवर मुनि ऋषि जो कह गये हैं उन्हीं की कही हुई बातों पर मैं भक्ति भाव से विश्वास करता हूँ।

इस बार नारायण बाबू निरुत्तर हुए। मोतीलाल के कथन में ऐसी एक सरलता और दृढ़ता भरी थी कि उनका किसी तरह प्रतिवाद करने में वे बड़े सकोच का अनुभव करने लगे। तर्क की गति को फेर कर उसे अन्य पथ पर लाने के अभिप्राय से नारायण बाबू ने पण्डितजी से कहा—महाराज, आप लोग ज्योतिष की गणना कर के जो जो बातें बताते हैं उन में से कुछ भी ठीक नहीं होती, यह क्यों?

अब पण्डितजी के साथ नारायण बाबू का भयङ्कर तर्क युद्ध होने लगा। मोतीलाल चुपचाप उन दोनों का वादानुवाद सुनने लगे।

सोलहवाँ परिच्छेद

जिस समय मोतीलाल की बैठक में पूर्व परिच्छेद-वर्णित शास्त्रसम्बन्धी आलोचना हो रही थी उस समय दूसरी कोठरी मे गोपीकान्त का दिमाग और ही प्रकार की चिन्ता से चकरा रहा था। वे एक छोटी सी कोठरी में फर्श के ऊपर मसनद के सहारे बैठकर फर्शी हुक्के से तम्बाकू पी रहे थे। उनके सामने एक खुली चिट्ठी पडी थी।

दो तीन बार नली से धुवाँ खींच कर गोपी बाबू पत्र उठा कर फिर पढने लगे। पढकर फिर उसे फेंक भौं सिकोड कर सोचने लगे।

पत्र मे ऐसी कोई विशेष बात नहीं लिखी थी—केवल देवीपुर के जिलेदार मथुराप्रसाद ने दो महीने की छुट्टी के लिए प्रार्थना की है। मथुराप्रसाद बडाही विश्वासपात्र अमला है। उसकी जगह किसको बहाल करके भेजेंगे, यही उनकी चिन्ता का विषय है। देवीपुर का अमला अत्यन्त चतुर और सर्वोपरि विश्वस्त होना जरूरी है। गोपी बाबू के ढूँढने से भी ऐसा कोई आदमी नहीं मिलता था। इधर मथुराप्रसाद की छुट्टी मजूर न करे तो भी नहीं बनता था। ऐसी हालत मे क्या किया जाय? बाबू बडी उलझन में पडे हैं।

ऐसे अवसर में रौनकलाल का ध्यान उनके मन मे आया,

इधर कई दिनो से उन्होंने उसका जहाँ तक परिचय पाया है उससे वह चतुर और विश्वस्त जान पडता है। फिर भी वह नया है। उसके ऊपर निर्भर हो रहना ठीक नहीं। एक बात यह है कि वह अभी मेरे यहाँ नये काम पर बहाल हुआ है, अपनी भविष्य-उन्नति की आशा से विश्वास-रक्षा के लिए विशेष यत्नवान् हो सकता है। आदमी गम्भीर है, बहुत बातें नहीं करता। यह भी एक सद्गुण है। उसे एक बार बुला कर पूछने में क्या हानि है ?

यह सोचकर गोपी बाबू ने रौनकलाल को बुलाया। रौनक दफ़्तर मे बैठा अपना काम कर रहा था। बाबू ने बुलाया है, सुनकर, कुछ डरता और धीरे धीरे पैर उठाता हुआ, बाबू के पास हाजिर हुआ। बडे विनीत भाव से प्रणाम करके चुप-चाप खडा रहा।

हुक्का गुडगुडाते हुए बाबू ने पूछा—रौनक, तुम जिलेदारी का काम जानते हो ?

"जी हाँ जानता हूँ।"

"कभी किया है ?"

"जी हुजूर, सदर आफिस में रहकर नायबी का काम किया है और दिहात मे रहकर जिलेदारी भी की है। यह सब काम मेरा किया हुआ है।"

"पहले तुम कहाँ काम करते थे ?"

"जी गाज़ीपुर जिले में बाबू शिशुपालसिंह साहब के इलाके में । वे अब नहीं हैं । उनका लडका उनकी गद्दी पर बैठा है ।"

बाबू कुछ देर तक चुप रहे । दूसरी ओर देखकर सोचने लगे । अन्त में रौनकलाल की ओर मुँह कर के बोले—देखो जमींदारी के काम में समय समय पर अनेक प्रकार का छल-कपट करना पडता है । ठीक धर्म-पुत्र युधिष्ठिर की भाँति तराजू पर तौल तौल कर न्यायपूर्वक काम करने से जमींदारी चलाना एकबारगी असंभव है । यह तो तुम जानते हो ?

रौनक इसका कुछ उत्तर न दे धरती की ओर दृष्टि करके मन्द मन्द हँसने लगा ।

यह देख कर बाबू सन्तुष्ट हुए । यदि वह नमक-मिर्च लगा कर बोलता—'हाँ हुजूर—मैं इसमें पीछे पैर नहीं दे सकता' तो रौनक की कार्यपटुता के सम्बन्ध में उन्हें सन्देह होता । उन्होंने कहा—तुम होशियार हो, इसमें सन्देह नहीं। अवश्यही यह सब तुम्हारा जाना हुआ है । आज कल अँगरेज का राज्य है, बडा ही सख्त कानून है । जमींदारी काम में भी नुकसान न पहुँचे और मालिक की भी इज्जत-आबरू कायम रहे, इन दोनों को सँभाल कर जो मुलाज़िम चलता है वही चतुर गिना जाता है । उसकी उन्नति होती है, उसकी पद-वृद्धि होती है ।

रौनक धीरे धीरे महीन स्वर में कहने लगा—हुजूर, मैं कम पढा लिखा हूँ तो भी इतना समझता हूँ कि जिसका नमक खाता हूँ, उसका उपकार प्राण देकर भी करना होगा । हुजूर

अभी मालिक की मान-मर्यादा बचा कर चलने की बात कहते हैं, सो हुजूर की इस बात पर दावेदार अर्ज करता है—मालिक की इज्जत बचाने के लिए यह दास छ वर्ष जेल काट आया है।

गोपी बाबू चकित होकर बोले—तुम जेल काट आये हो?

रौनक ने गर्व के साथ कहा—जी हाँ।

"क्यों, किस अपराध से?"

"हुजूर, एक बदमाश रियाया के साथ मार पीट हो गई थी। उस में एक आदमी का खून भी हो गया था। एकबारगी मामला सगीन हो पड़ा। मालिक का अपराध में अपने ऊपर ले छ वर्ष जेल काट आया। अब तक यह बात किसी से नहीं कही थी – आज हुजूर के जिक्र करने पर लाचार होकर कहनी पड़ी।"

गोपी बाबू का मन रौनकलाल के प्रति खूब घुल गया। मन में सोचा, "हाँ—यह बेशक होशियार है और मेरे मन के लायक है।" इतनी देर तक रौनक खड़ा था, उसे बैठने की आज्ञा मिली। रौनक फर्श से हट कर बैठा। बाबू ने पूछा—जेल से छूट कर आये कितने दिन हुए?

"बहुत दिन नहीं हुए, पिछले भादो में आया हूँ।"

"मालूम होता है, जब तुम जेल में थे उसी समय तुम्हारे पुराने मालिक का देहान्त हो गया।"

"जी हाँ, जेल से निकल कर उनके श्रीचरण देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ "—कह कर रौनक ने अपने मुँह पर रोने का सा भाव दिखाया।

गोपी बाबू ने कहा—समझता हूँ। अगर वे जीते रहते तो तुम्हें नौकरी के लिए दूसरी जगह नहीं जाना पड़ता। तुम्हारे जैसे नौकर को क्या वे छोड़ सकते? उनके लड़के ने शायद तुम्हारे गुण को नहीं समझा।

"जी हाँ—उन्होंने मुझको फिर अपने यहाँ रखने के लिए बड़ा हठ किया था। बचपन से ही उनको मैंने गोद मे खेला कर बड़ा किया था न,—नौकर होने पर भी मुझको वे रौनक चचा कहते थे। उन्होंने कहा—'रौनक चचा! तुम्हारे न रहने से मेरी जमींदारी का काम बिलकुल अबतर होजायगा।' किन्तु वहाँ मेरा जी नहीं लगा। क्योंकि, पहले जिस मालिक के लिए प्राण देने मे भी पीछे पैर नहीं रखता था वे नहीं रहे। इसके बाद, जेल में रहते रहते मैं सब खो चुका। मेरे घर के सब लोग एक एक कर मर गये। जेल से आने पर उन लोगों को भी नहीं देखा। बाप-दादों के समय का जो पक्का मकान था वह भी, हर साल मरम्मत न होने के कारण, गिर पड़ा था। इन सब कारणों से मेरा जी वहाँ से उचट गया। यह शोकमय दृश्य मुझसे देखा नहीं गया। इसी से निकल पड़ा। अब तो एक पेट की बात रही। और कोई रहा नहीं। जहाँ जाऊँगा वहीं मुट्ठी भर अन्न खाने को मिल जायगा। हुज़ूर का

नाम सुनकर आया था। आते ही मुझ पर हुजूर की दया भी हो गई—आश्रय मिल गया।"

गोपीकान्त बाबू मुस्कुराते हुए बोले—तुम्हारे ऐसा नौकर मिलना मेरे लिए तो बड़ा ही अच्छा हुआ, किन्तु तुम को इतनी लापरवाही के साथ छोड़ देना तुम्हारे मालिक के लड़के के लिए मुनासिब नहीं था।

"हुजूर, अगर वे उस तरह हठ कर के रोकते—अगर कहते, अच्छा तुम्हारा मकान गिर पड़ा है तो उसकी परवा मत करो, मैं अपने खर्च से तुम्हारा घर बनवाये देता हूँ, अथवा इतना भी कहते, अहा! हम लोगों के लिए तुमने बड़ा कष्ट पाया है, अच्छा यह पाँच सौ रुपया लो तुमको पुरस्कार देता हूँ तो मैं क्या करता, नहीं कह सकता। क्या असल बात हुजूर को मालूम है—वह जमाना कुछ और था, और अब नया युग आया है। पुराने समय की बात न रही। बूढ़े मालिक की अमलदारी में किस तरह इज्जत आबरू से समय बिताया, नये बाबू के अमल में क्या अब उस तरह होगा? आज कल के इन अँगरेज़ी-नवीस कालेज के छोकरों से मैं बहुत डरता हूँ। साँप से, बाघ से और पगले सियार से जैसे डरता हूँ वैसे ही इन अल्पवयस्क चश्माधारी छोकरों से भी छड़कता हूँ। क्यों डरता हूँ, यह नहीं जानता, किन्तु मन में एक तरह का भय बना रहता है।"—कहकर रौनक चुप हो रहा।

चश्माधारी कालेजीय युवक के प्रति रौनक की इस अश्रद्धा से बाबू की मानसिक वीणा में एक मीठा तार बज उठा। उन्होंने निश्चय किया—रौनक ही को देवीपुर की जिलेदारी के काम पर कायम मुकाम मुकर्रर करके भेजूँगा। प्रकाश्य में कहा-देखो, यहाँ से तीन कोस पर हमारा एक बड़ा मौजा है। उसका नाम देवीपुर है। उसकी सालाना आय पाँच छः हजार रुपया है। वहाँ के जिलेदार मथुराप्रसाद ने दो महीने की छुट्टी के लिए दरख्वास्त दी है। उनका लड़का बहुत बीमार है। लखनऊ जाकर वे उसका इलाज करावेंगे। दो महीने तुम उनका काम सँभाल दो।

रौनक ने दोनों हाथ जोड़ कर कहा—हुजूर माँ बाप हैं। जो आज्ञा देंगे, तावेदार वही करेगा।

बाबू—तुम अभी पन्द्रह रुपया महीना पाते हो न?

"जी हाँ।"

"जो दो महीने तुम एवजी करोगे, उन महीनों की मथुराप्रसाद की पूरी तलब तुमको मिलेगी। ३०) रुपये मासिक के हिसाब से पाओगे। अगर तुम्हारे काम से मैं खुश हूँगा तो मुफस्सिल के किसी महाल की जिलेदारी का काम खाली होने पर तुम्हें असालतन कर दूँगा।"

रौनक हाथ जोड़ नीची दृष्टि करके बैठ रहा। बाबू कुछ देर चुपचाप हुक्का पीकर कुछ सोचते रहे, फिर बोले—उस महाल के सम्बन्ध में एक गुप्त बात है। देखो, बाहर कोई है तो नहीं।

रौनक बाहर जाकर बरामदे में जरा घूम आया, फिर बोला—हुजूर, कोई नहीं है।

"अच्छा, जरा खिसक कर नजदीक आ बैठो।"

बाबू जिस गलीचे पर बैठे थे उसके पासही फर्शीचादर पर रौनक सकुच कर बैठ गया। बाबू ने धीमे स्वर में कहा—देखो, उस देवीपुर गाँव में एक घर ग्वाला है। नाम है धनीराम और मनीराम। छोटा भाई मनीराम एक युवती स्त्री को छोड़ कर मर गया। उसके कोई बाल बच्चा नहीं हुआ। छोटे भाई की जमीन को अपने कब्जे में करके धनीराम उसकी पैदावार खाता था और उस अनाथा विधवा को हद से ज्यादा तकलीफ देता था। भरपेट भोजन तक नहीं देता था। रोज उसे मारता पीटता था। उसके कष्ट की सीमा न थी। जब वह किसी तरह तकलीफ बरदाश्त न कर सकी तब घर छोड़ कर भाग गई। अभी वह कहीं छिपी हुई है। तुम वहाँ जाकर उस धनीराम के ऊपर खूब कड़ी नजर रखना और यह हाल, जो अभी मैंने तुमसे कहा है, उसे किसी तरह मालूम न हो। देखो, अगर वह थाने या सदर में दरख्वास्त देने जाय तो तुरन्त मुझे खबर देना। समझ गये न ?

रौनक—हाँ सरकार, समझ गया। सब ठीक हो जायगा। आप किसी तरह की चिन्ता न करें। ऐसा उपाय करूँगा जिससे वह सात जन्म में भी उसका पता न पावेगा।

यह सुन कर गोपीकान्त बाबू के मन में कुछ कुतूहल उत्पन्न हुआ। उन्होंने पूछा—क्या उपाय करोगे ?

"जी, उसके अनेक उपाय हो सकते हैं। अच्छा, अभी जो मुझे सूझा है वह निवेदन करता हूँ। कुसूर माफ़ करेंगे। उस स्त्री का नाम क्या है ?"

गोपी बाबू—नाम से क्या मतलब है ?

"हुजूर, मतलब है। एक जाली चिट्ठी तैयार करने की बात सोची है।"

"उसका नाम लीलावती है।"

"मैंने सोचा है, लीलावती की भेजी हुई एक जाली चिट्ठी पहले ही से तैयार कर रक्खूँगा। देवीपुर जाने के दो चार दिन बाद एक दिन धनीराम को बुला भेजूँगा। जब वह आवेगा तब उसे निर्जन स्थान में लेजाकर कहूँगा—'क्यों धनीराम, मनीराम तो तुम्हारा सगा भाई था ?' वह कहेगा—'जी हाँ।' मैं कहूँगा—'तुम्हारा भाई तो मर गया है ?' वह कहेगा—'हाँ।' मैं पूछूँगा—'उसका वारिस कौन है ?' बहुत सम्भव है, वह कहेगा—'मैं हूँ।' मैं कहूँगा—'उसकी स्त्री है न ?' वह कहेगा—'हाँ है।' तब मैं कहूँगा—'तो तुम कैसे वारिस हुए ? वारिस हुई उसकी स्त्री। मनीराम के हिस्से की जितनी जमीन है उसकी मालकिन ता जिन्दगी उसकी स्त्री रहेगी। उसके मर जाने पर तुम वारिस होगे। दाय भाग का यही मत है। अलीगढ के कानून-सार में भी यह बात लिखी है।' यह सुन कर वह कुछ

घबरा सा जायगा। तब मैं कैशबक्स से वह चिट्ठी निकाल कर और चश्मा लगा कर मन ही मन पढूँगा। फिर कहूँगा—'देखो, काशी से यह चिट्ठी आई है। पढता हूँ, सुनो—

श्री श्रीविश्वनाथ शरणम्।

मान्यवर श्रीयुक्त मथुराप्रसाद साहब जिलेदार देवीपुर के निकट निवेदन है। हुजूर के आशीर्वाद से यहाँ कुशल है। मैं अनाथा स्त्री हूँ। मेरा कोई रक्षक नहीं। देवीपुर गांव में मेरी ससुराल है। मेरे स्वामी की मृत्यु हो गई। मैं जब से विधवा हुई तब से अपने जेठ के घर रहने लगी। किन्तु वह न मुझे खाने के लिए भरपेट अन्न देता था और न पहिनने के लिए कपड़े, बल्कि वह मुझे जहर खिला कर मार डालना चाहता था। इसी से मैं डर कर घर छोड़ यहाँ भाग आई हूँ। नित्य गङ्गा-स्नान करके बाबा विश्वनाथ का दर्शन करती हूँ। इसी तरह तीर्थ वास करके अपने जीवन को बिता देना चाहती हूँ। मेरे खाने पीने के लिए कम से कम दस रुपया महीना चाहिए। मेरे पति के हिस्से की जितनी जमीन है उसकी कुल पैदावार मेरा जेठ धनीराम लूटता खाता है। जीवित अवस्था तक तो मैं ही अपने पति के अंश की अधिकारिणी हूँ। इसी कारण से उसने मुझे जहर खिला कर मार डालना चाहा था। मैं चाहती तो थाने में इसकी रिपोर्ट कर सकती। नालिश दायर कर सकती, किन्तु उसकी जरूरत नहीं देखती। किसी तरह मेरी गुजर होने ही से मैं निश्चिन्त हो कर भगवान् का भजन कर सकूँगी। अतएव इस दासी का निवेदन यह है कि मेरे हिस्से की जमीन की उपज से आप हर महीने दस रुपया धनीराम से लेकर नीचे लिखे पते पर मनी-

आर्डर द्वारा भेजवा दिया करें । आप मेरे मालिक के मुनीब हैं । गांव के कर्ता धर्ता हैं । आपही मेरे जमादार, दारोगा और आपही मेरे मजिस्टर जज हैं । इस कारण मैं आपकी ही शरण लेती हूँ । कृपा करके ऐसा उपाय कर दीजिए जिससे इस अनाथा विधवा की प्राण-रक्षा हो। इति ।

काशीनाथ पण्डा के मकान पर, दशाश्वमेध घाट, बनारस सिटी । } निवेदिका— लीलावती दासी

चिट्ठी सुना कर कहूँगा 'क्योंरे चाण्डाल, तेरा यह व्यवहार ! विधवा भ्रातृवधू को अन्न वस्त्र का कष्ट देकर देश-निकाले की सजा दी है ? विष खिला कर उसे मार डालना चाहता था ? तू तो आदमी नहीं, भारी राक्षस मालूम होता है ! अगर मैं थाने के दारोगा को यह चिट्ठी भेज दूँ तो तेरी क्या दशा हो ? अभी कान्सटेबल आ मुश्कें बाँध कर जूता मारते मारते तुझे पकड़ कर ले जायँगे। अन्त में दफा ३०७ के अनुसार चालान होकर दस वर्ष के लिए 'बड़े घर' की हवा खानी होगी !' वह अवश्य ही अपना दोष अस्वीकार करेगा। तब उनसे कहूँगा—जा, अगर अपनी भलाई चाहता है तो इस पते से हर महीने दस रुपया उसके पास भेज दिया कर। वह जो लिखती है, मैं तुझसे रुपया वसूल करके हर महीने उसको भेज दूँ, सो यह मुझसे नहीं होगा। क्या मुझे और काम नहीं है ? अपना काम तो मैं पूरा कर ही नहीं सकता उस पर फिर दूसरे का काम ! क्या मैं अदालत का चपरासी हूँ जो डिगरी जारी

करता फिरूँगा? तेरी बहू का हक है तो वह अदालत में जाकर नालिश करे या चूल्हे में जाय। यह कह कर आँखें लाल करके चुप हो रहूँगा। वह अपनी बहू का पता तो किसी काल मे पावेगाही नहीं। और दफा ३०७ मे गिरफ़ार होने के भय से थाने में भी नहीं जा सकेगा।"

अब रौनक चुप हो रहा। गोपीकान्त इतनी देर तक चकित होकर उसके मुँह की ओर देख रहे थे। उनके हुक्के की गुड-गुडाहट बन्द हो गई थी। हाथ से नली छूट कर गिर पड़ी थी। रौनकलाल की प्रत्युत्पन्न बुद्धि और प्रपञ्च विद्या का परिचय पाकर वे दङ्ग हो गये। बाहर से देखने मे तो वह बड़ाही गँवार सा मालूम होता है। भेट होने पर प्रणाम करके अपराधी की भाँति दब कर कुछ दूर हट कर खडा होता है। इसके भीतर इतनी चालाकी भरी है, यह गोपीकान्त को स्वप्न में भी आशा न थी। रौनक के ऊपर उनका मन बडा ही प्रसन्न हो उठा। सोचने लगे, यह तो एक रत्न ही मालूम होता है। इसको मैं कभी अपने पास से अलग न होने दूँगा। प्रकाश्य मे कहा—अच्छा, रौनक, अगर वह सचमुच उसके नाम से मनीआर्डर भेज दे तो?

रौनक—हुजूर, यह मुमकिन नहीं। रुपया ऐसी चीज है कि उसे कोई सहज ही हाथ से अलग नहीं करता। इसी लिए तो उससे यह भी कह देना होगा, 'तू भेज दिया कर, मुझसे यह सब काम न होगा।' मान लीजिए, अगर वह काशीनाथ पण्डा के घर के पते से रुपया भेजेगाही तो वहाँ सचमुच एक

काशीनाथ पण्डा है, वह सही करके रुपया ले लेगा । उसके लिए कोई चिन्ता नहीं । काशीनाथ को मैं भली भाँति जानता हूँ ।

बाबू ने कहा—अच्छा, यही सही । इसी तरह का कोई प्रबन्ध करना । तुम्हारी बुद्धि विवेचना देख कर मुझे बहुत सन्तोष हुआ । सिर्फ देवीपुर में एवजी करने ही तक के लिए नहीं बल्कि मैंने हमेशा के लिए तुम्हारा मासिक वेतन ३०) रु० कर दिया । जी लगा कर काम करोगे तो तुम्हारा महीना और भी बढा दूँगा ।

रौनक की आँख से मानो कृतज्ञता उछलने लगी । वह बोला—हुजूर माँ बाप हैं, दास के ऊपर दयाभाव बना रहे ।

"तो तुम परसों देवीपुर चले जाओ । मथुराप्रसाद से चार्ज ले अच्छी तरह कागज पत्र समझ कर काम शुरू कर दो । परसों से उसकी छुट्टी मैंने मजूर की ।"

"जो आज्ञा" कह कर रौनक प्रणाम करके चला । बाहर आकर देखा तो कचहरी के सामने से होकर बगल में छतरी दबाये हरिदास आ रहा है । रौनक एक खम्भे की आड में खडा हो रहा जिससे हरिदास उसे देख न सके ।

सदर फाटक से हरिदास के बाहर होजाने पर रौनक ने दफ़्तर में जाकर एक साथी कर्मचारी से पूछा—अभी एक आदमी बगल में छतरी दबाये बाहर गया है, वह कौन था ?

"शकरपुर की एक रियाया । नाम हरिदास है ।"

"क्या मालगुजारी देने आया था ?"

"नहीं, छोटे बाबू से मुलाक़ात करने गया था। पूछने पर उसने कहा—उनसे कुछ काम है।"

"क्या काम ?"

"क्या मालूम, कुछ खुलासा नहीं कहा।"

ओफ् कह कर रौनक अपना काम करने लगा। किन्तु उस दिन लिखने में उससे बहुत भूलें होने लगीं। क्योंकि उस समय उसके मन में पल पल पर नये नये कौशल का आविर्भाव हो रहा था।

सत्रहवाँ परिच्छेद

आज दिन के पिछले पहर रौनकलाल दूसरे कर्मचारी को अपना काम सौंप कर गोपीकान्त बाबू के पास विदा होने की आज्ञा लेने गया। उस समय बाबू कई मित्रों के साथ चौसर खेल रहे थे। रौनक सामने जा खड़ा हुआ। उसे देखकर भी वे पहले कुछ नहीं बोले। चौसर की एक चाल सोचने में व्यस्त थे। कुछ देर अपेक्षा करके रौनक आपही बोला—"हुजूर का हुक्म हुआ था, कल मैं देवीपुर जाऊँगा।" तब बाबू उस की ओर देखे बिना ही बोले—"कल जाओगे?" रौनक ने कहा—"जी हाँ, कल सबेरे ही जाऊँगा।" "अच्छा, खूब सावधानी से काम करना" कहकर बाबू ने फिर चौसर के खेल में मन लगाया। रौनक प्रणाम करके चला गया।

अब साँझ होने मे ज्यादा देर नहीं है। सदर रास्ते से अपने घर जाने की सड़क पर पैर रखते समय रौनक ने एकाएक देखा कि बगल में छतरी दबाये हरिदास दफ्तरवाले मकान की ओर आ रहा है। उसे देखते ही रौनक एक पेड़ की ओट में छिप रहा। उसके दृष्टि-पथ से बाहर निकल जाने पर फिर चलने लगा। घर पर आ, हाथ पैर धोकर एक चिलम तम्बाकू भरते भरते रौनक भाँति भाँति की चिन्ता करने लगा। वह

सोचन लगा, हरिदास यहाँ इस तरह जल्दी जल्दी क्यो आता है ? उसका मतलब क्या है ? कुछ गुप्त उद्देश्य तो नहीं है ?

तम्बाकू भर कर दो चार कश खींच चिलम को हाथ से रख दिया। दोनो आँखो को ऊपर की ओर उठा कर फिर वह चिन्ता में निमग्न हुआ। सोचने लगा—इस ग्वाले साले का विश्वास नहीं, न जाने क्या करने आता है। कल छोटे बाबू के पास आकर न मालूम चुपचाप क्या विचार कर रहा था। जमीन या लगान के सम्बन्ध मे ता छोटे बाबू से कोई बात चीत हुई ही न होगी—क्योंकि वे इन बातों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखते। वे तो दिन भर अपने पूजा-पाठ मे ही लगे रहते हैं। समय बचता है तो धर्मशास्त्र की पोथी पढते हैं। तो क्या हरिदास अब धर्मात्मा हा गया है? छोटे बाबू के पास धर्म की कथा सुनने आता है, उन्हे गुरु बना कर चेला बनना चाहता है ? किन्तु छोटे बाबू जैसे नैष्ठिक हैं उससे तो विश्वास नहीं होता कि वे ग्वाले को शिष्य बना लेंगे। अवश्य ही हरिदास का कोई दूसरा उद्देश है। मालूम होता है, उसे किसी तरह यह खबर लग गई है कि रौनकलाल यहाँ नौकरी करने आया है। शायद वह छोटे बाबू के पास मेरा ही गुण-दोष कहने आया था। वह समझता है कि छोटे बाबू का मिजाज बडा कडा है। यदि सुनेंगे कि रौनक जेल हा आया है—यह एक भारी जालिया है—तो सम्भव है, वे अपने बडे भाई से कहकर रौनक को अर्धचन्द्र

दिलाने की व्यवस्था करेंगे। अगर हरिदास के मन में यह आशा है तो उसकी यह आशा दुराशा मात्र है। क्योंकि मेरे सौभाग्य से बड़े बाबू ऐसे नीति-रोग ग्रस्त मक्खन के पुतले नहीं हैं जो यह बात सुन कर मूर्च्छित हो पड़ें।

रौनक इसी सोच विचार मे उलझा था कि चिलम की आग बुझ गई। दो तीन बार निगाली से उसने धुआँ खींचा पर आग न सुलगी—धुआँ बाहर न निकला। अब उसके मन की भावना दूसरी ओर गई। सोचा, अच्छा आज मैं जब बाबू के पास विदा होने गया तब उन्होंने मेरे साथ अच्छी तरह बात चीत क्यो नहीं की? मेरे मुँह की ओर देखा तक नहीं। मुझ पर नाराज तो नहीं हो गये? कहीं छोटे बाबू ने मेरे बारे मे उनसे कुछ कह तो नहीं दिया, नहीं तो उनके मन का भाव तुरन्त ही बदल क्यों गया? मुझे जेल हुआ था, या मैंने जाल किया था, यह सुन कर बड़े बाबू कभी मुझ पर असन्तुष्ट नहीं हुए, बल्कि उनके मुँह से प्रसन्नता का ही भाव झलक रहा था। जरूर ही हरिदास ने मेरी शिकायत की है कि रौनक बड़ा ही नमकहराम और विश्वास घाती है, नहीं तो जेल की बात सुनकर बाबू की श्रद्धा मुझ पर और भी बढ़ गई थी। अभी ज्यादा देर नहीं हुई है। अभी छोटे बाबू का साय-सन्ध्या करने का समय है। हरिदास अभी बैठा ही होगा। सायकृत्य समाप्त होने के पहले ही बाबू से उसकी भेंट हो जायगी—यह उम्मीद कम है।

एक बार चलकर खबर ले आना चाहिए, नहीं तो सारी रात छटपटाता रहूँगा, नींद न आवेगी।

यह सोच कर रौनक उठा। तब साँझ हो गई थी। रात का अन्धकार सर्वत्र छा गया था। घर के दर्वाजे में ताला बन्द करके रौनक बाहर निकला। दफ़्तरवाले मकान में जाकर देखा सभी मुनीम गुमाश्ते चले गये हैं। दफ़्तर में ताला लगा है। सामने का मैदान सूना पड़ा है। केवल दो एक दरवान सदर फाटक पर बैठे हैं। एक दरवान ने पूछा—नाजिर बाबू, आप फिर आये हैं?

"हाँ, एक जरूरी कागज यहाँ छोड़ गया था, वह देवीपुर ले जाना होगा, इसी से अभी आया था। दफ़्तर तो बन्द हो गया।" यह कहकर रौनक ने मोतीलाल की बैठक की ओर देखा। एक खुली खिड़की की राह से रोशनी निकल रही थी। धीरे धीरे वह उसी ओर अग्रसर हुआ। वह खिड़की पच्छिम ओर की दीवार में धरती से कुछ ऊपर थी। खिड़की के नीचे कितनी ही टूटी फूटी ईंटे पड़ी थीं। इसके सिवा वहाँ घुइयों और छोटे छोटे जङ्गली पौधों का जङ्गल भी था। पैर की आहट बचाकर रौनक धीरे धीरे उस खिड़की के पास आकर खड़ा हुआ। खिड़की उसके कद से ऊँची होने के कारण भीतर का कोई दृश्य दिखाई नहीं दिया। केवल इतना समझ सका कि दो आदमी बातें कर रहे हैं। गले की आवाज से यह भी मालूम हुआ कि छोटे बाबू और हरिदास

हैं । किन्तु उन दोनो मे जो वाते होती थीं वह सब सुनाई नहीं दीं । जो सुन पडी वह यही—

छोटे बाबू—कब उत्सव है ?

हरिदास—दिवाली के दिन । किन्तु उन लोगो ने बहुत तरह से कहा है कि उत्सव के एक दिन पहले ही हजूर को वहाँ पहुँचना चाहिए ।

छोटे बाबू—अच्छा जायँगे । कल तुम जब आये थे तब मेरे एक मित्र नारायण बाबू यहाँ बैठे थे । उनका घर आजमगढ के नजदीक ही है । वे बहुत आग्रह से कह गये हैं कि मैं उनके यहाँ जाकर पाँच सात दिन रहूँ । आजमगढ मे नवरात्र-पूजा के दिन उन लोगो का वार्षिकोत्सव देखकर दूसरे दिन नारायण बाबू के यहाँ जाऊँगा । तुम कब जाओगे ?

"मैं कल सवेरे ही रवाना होऊँगा । दिवाली के बाद ही अब उधर से लौटूँगा ।"

"अच्छा, तुम जाओ । मैं चिट्ठी का जवाब लिखे देता हूँ उसे लेते जाओ । उनसे जबानी भी कह देना कि मैं उत्सव के एक दिन पहले आ पहुँचूँगा ।"

इसके बाद मन्द स्वर मे उन दोनो के बीच और क्या क्या बातें हुईं, यह रौनकलाल को नहीं मालूम । घुँइयों के जङ्गल में कुछ खडखडाने लगा । भयानक अँधेरा था, कुछ सूझता न था । उस जङ्गल मे साँप होने की आशङ्का करके रौनक डर गया । अब उसे वहाँ ठहरने का साहस न हुआ ।

"हे माँ मनसा देवी, रक्षा करो" यह मन ही मन कहता हुआ वह धीरे धीरे वहाँ से खिसक पड़ा। दफ़्तर के सामने वाले मैदान से निकल, फाटक पार होकर, वह अपने घर की ओर अग्रसर हुआ।

कुछ आगे बढ़ने पर एक सिपाही उसके सामने आकर बोला—कौन है, नाजिर बाबू?

रौनक का कलेजा धड़क उठा। अभी वह खिड़की के पास अँधेरे में खड़ा होकर चोर की भाँति उन दोनो की बातें सुन आया है, क्या इसी से छोटे बाबू ने उसे पकड़ने के लिए यह आदमी भेजा है? दबे स्वर में रौनक ने कहा—हाँ, क्या है?

"आपको बाबू बुलाते हैं।"

"कौन बाबू?"

"कौन बाबू?—मालिक—बड़े बाबू।"

"बड़े बाबू ने बुलाया है, क्यो?"

"मुझे क्या मालूम। मैं यह नहीं जानता। मुझे सिर्फ़ हुक्म दिया है—जाओ नाजिर को बुला लाओ।"

रौनक सिपाही के साथ साथ चला। कुछ क्षण में बैठक की एक कोठरी में प्रवेश करके देखा कि बाबू अकेले वहाँ एक किताब पढ़ रहे हैं। रौनक ने प्रणाम करके कहा—हुजूर। दास का स्मरण किस लिए किया गया है?

"हाँ, कल तुम देवीपुर को रवाना होते हो?"

"जी हाँ, सवेरे उठ कर जाने का विचार किया है।"

"जाने का क्या वन्दोवस्त किया है ?"

"यो ही चल देवा, परन्तु साथ मे जरूरी चीज़े भी ले जानी होगी, इसलिए एक वैलगाडो ठीक कर रक्खी है।"

वाबू ने कहा—जो चीज वस्तु साथ ले जानी हो वह वैलगाडी ही पर रवाना कर दो। किन्तु तुम मेरी तरफ से जिलेदार होकर जाते हो, इसलिए तुम्हारा वैलगाडी पर जाना ठीक नहीं—इसमे इज्जत जाती है। मैं अभी ताँगे के लिए कह देता हूँ। तुम उसी पर जाना।

इतनी देर में रौनक के मन से सारी आशङ्काएँ और सशय दूर हुआ। वाबू उस पर नाराज नहीं हैं। किसीने उनसे मेरी कुछ शिकायत नहीं की है। रौनक ने हाथ जोड कर कहा—हुजूर की जैसी मर्जी।

कुछ देर वाद वाबू बोले—एक वात और है। उस दिन मैंने एक स्त्री के वारे मे कहा था न ?

"जी हाँ, याद है।"

"अभी तुरन्तही धनीराम को बुला कर कुछ कहने की जरूरत नहीं। हाँ, उस पर नजर हमेशा रखना। देखो अगर वह थाने मे दरख्वास्त देने जाता हो तो झट यह खवर मुझे देना।"

"बहुत अच्छा।"

"उस स्त्री को घर छोडे एक महीने से ऊपर हुआ है। अगर थाने में रिपोर्ट करनी होती तो धनीराम अब तक वैठा नहीं रहता। जो करना चाहता, जरूर करता। जब उसने अब

तक कुछ नहीं किया है तो अब करेगा भी नहीं। सम्पत्ति बँटाने वाले हकदार के टल जाने ही में उसने कुशल समझ ली है। अब स्वयं उस बात की चर्चा चलाने की जरूरत नहीं।"

"जो हुक्म।"

"पीछे अगर कुछ करने की जरूरत होगी तो तुमको समझा दूँगा। बीच बीच में तुम यहाँ आकर मुझे बराबर वहाँ की खबर दिया करना। हफ्ते में एक दिन या दो दिन, जैसा आवश्यक देखना वैसा करना।"

"जी हाँ, हफ्ते में यहाँ दो एक बार हाजिर होकर जो हाल होगा, सब कह जाया करूँगा।"

"अच्छा तो अब जाओ।"

बाबू के पैर छू करके रौनक दुबारा विदा हुआ।

अट्ठारहवाँ परिच्छेद

रौनक दफ़्र के हाते से बाहर होकर अँधेरे मार्ग से धीरे-धीरे अपने घर की ओर बढ़ चला। मन की दुश्चिन्ता दूर होने से उसका हृदय प्रसन्न हो उठा है। अपने मन की उमङ्ग से गुन-गुना कर वह गीत गाने लगा।

सदर रास्ते से उतर कर पोखर के किनारे वाले अपने घर की ओर जाते समय रौनक ने तारों की धुँधली रोशनी में देखा कि उससे पाँच छः हाथ के फासले पर सिर से पैर तक सफ़ेद कपड़े से ढकी हुई एक स्त्री उसकी ओर आ रही है। देखते ही रौनक के होश उड़ गये। उसने सोचा, भाग चलना चाहिए—यह अवश्य ही चुड़ैल है। किन्तु डर से उसके दोनों पैर इतने भारी हो गये कि वह भाग नहीं सका। थरथरा कर वहीं खड़ा हो रहा। इतने में वह नारीमूर्ति उसकी ओर कुछ और बढ़ कर डरते डरते बोली—कौन है ?

अब रौनक की जान में जान आई। समझ गया कि यह वसन्ती का कण्ठ-स्वर है। उसने पास जाकर कहा—कौन, वसन्ती ?

वसन्ती—इतनी रात को कहाँ गये थे ?

"अभी बहुत रात कहाँ हुई, यही तो साँझ हुई है। तुम कहाँ से ?"

वसन्ती इस बात का जवाब न देकर बोली—क्या तुम कल सवेरे देवीपुर जाते हो ?

"हाँ, तुमसे किसने कहा ?"

"मुझसे किसने कहा है ! तुम तो मुझसे बिनाही कुछ कहे-सुने, इसी तरह, चुपचाप चल देते ?"

रौनक समझ गया, वसन्ती को अभिमान हुआ है । अनुमान किया, शायद वह मेरे घर गई थी । दर्वाजे में ताला लगा देख कर लौटी आ रही है । उसने तुरन्त बात बना कर कहा--तुम्हीं से भेंट करने के लिए तो मैं साँझ से तुमको ढूँढता फिरता हूँ । नहीं तो इस घने अन्धकार में, जब हाथ पर हाथ नहीं सूझता, कभी मैं घर से निकलता हूँ ?

"मुझको खोजते थे ?" वसन्ती कुछ मुलायम पड़ी ।

रौनक ने अधीर स्वर में कहा—"तुमको नहीं तो किसको खोजूँगा ? इस दुनिया में मेरे और कौन है ? चलो, यहाँ कब तक खड़ी रहोगी ? मेरे घर चलो, तुमसे बहुत बातें कहनी हैं ।" यह कह कर आगे आगे रौनक चला, उसके पीछे पीछे वसन्ती भी चली ।

घर जाकर अंदर दरवाजे में भीतर से साँकल लगा, द्वार बन्द करके, उसारे में चटाई बिछा कर रौनक बैठा और वसन्ती को भी बैठने का अनुरोध किया । वसन्ती ने खूब जोर से सिर हिला कर चटाई पर बैठने से अनिच्छा सूचित की । कुछ दूर हट कर वह भूमि में ही बैठ गई ।

रौनक—अब क्या होगा ?

वसन्ती—होगा क्या ? तुम्हारी मति गति का कुछ ठिकाना है ! अब इन बातों को रहने दो । मैं समझ गई, तुम कैसे आदमी हो । आप देवीपुर के जिलेदार हुए हैं— जिलेदार साहब ।

रौनक—अभी पक्का नहीं हुआ हूँ । एवजी है ।

"मैं कच्चा गद्दर नहीं समझती । आप बड़े आदमी हुए हैं, इसी से अब आप का पैर धरती पर नहीं पड़ता ।"

रौनक ने दिल्लगी के तौर पर कहा—बड़ा आदमी क्यों नहीं हूँगा ? लोग कहते हैं कि स्त्री के भाग्य से धन होता है। अगर तुम मुझसे ब्याह करो तो देखो मैं बड़ा आदमी होता हूँ या नहीं । पर तुम्हारी तो दया होती ही नहीं । तुम्हारे साथ ब्याह करने की इच्छा करते ही देखो मुझे जिलेदारी मिल गई। ब्याह होने पर मैनेजरी मिल जाय तो क्या तअज्जुब है ?

वसन्ती—क्या दया नहीं होती है ? उस दिन मैं क्या कह गई थी ! मैं तो अपने मुँह से कह गई थी कि राजी हूँ । आपने ही कहा, एक दिन हम तुम दोनो बैठ कर सब बातों का ठीक ठाक कर लेंगे । इसके बाद न कोई कथा हुई न वार्ता । अब आप यहाँ से चम्पत होने की फिक्र में हैं ।

रौनक—इसी को कहते हैं स्त्रीचरित्र ! कहो तो उस दिन से फिर कभी तुम यहाँ आई भी ? जब तुम आतीं तभी तो कोई बात स्थिर होती ? मैं रोज साँझ को बैठकर सोचता था कि आज वसन्ती आवेगी । पहर रात तक तुम्हारे आने

की राह देखकर हताश हो मन में कहता था कि आज नहीं आई तो कल जरूर आवेगी—परन्तु कहाँ वसन्ती, कहाँ कौन। अब उल्टे मुझी को दोष देती हो ?

यह सुनकर वसन्ती कुछ लजा गई। मन ही मन कहा कि रौनक ठीक ही तो कहता है। आज जब उसने सुना कि रौनकलाल जिलेदार होकर देवीपुर जा रहा है तब उसके मन में आग लग गई। सोचा, रौनक़ ने जो उसके साथ ब्याह करने की बात कही थी वह छल मात्र था। उसे गवाँर समझ कर रौनक ने दिल्लगी में यह बात कह दी थी। इससे वह मारे क्रोध के हतज्ञान होकर साँझ होने पर रौनक की खोज मे आई थी।

वसन्ती को चुप देखकर रौनक ने कहा—इधर आगमन क्यों नहीं होता था ? उस दिन जो राँधकर खिला गई और कह गई कि सुभीता पाते ही आऊँगी सो फिर दर्शन तक नहीं।

वसन्ती—कहिए कैसे आऊँ ? मेरा आना क्या सहज है ? हम हैं बड़े आदमी के घर की नौकरनी। क्या यों ही रास्ते रास्ते घूम फिर सकती हैं ? आज मालकिन से कितना बहाना करके आई हूँ।

"अच्छा तो कोई हर्ज नहीं। मैंने समझा था, मुझसे ब्याह करना होगा—शायद इसी भय से तुम भागी भागी फिरती हो।"

वसन्ती—मैं भागती हूँ या आप भागते हैं ? देवीपुर जा रहे हैं, ब्याह का ठीक ठाक, उसका दिन कैसे स्थिर होगा ?

रौनक—अब क्या होगा ?

बसन्ती—होगा क्या ? तुम्हारी मति गति का कुछ ठिकाना है ! अब इन नातो को रहने दो । मैं समझ गई, तुम कैसे आदमी हो । आप देवीपुर के जिलेदार हुए हैं— जिलेदार साहब !

रौनक—अभी पक्का नहीं हुआ हूँ । एवजी है ।

"मैं कच्चा गदर नहीं समझती । आप बड़े आदमी हुए हैं, इसी से अब आप का पैर धरती पर नहीं पड़ता ।"

रौनक ने दिल्लगी के तौर पर कहा—बड़ा आदमी क्यों नहीं हूँगा ? लोग कहते हैं कि स्त्री के भाग्य से धन होता है। अगर तुम मुझसे व्याह करो तो देखो मैं बड़ा आदमी होता हूँ या नहीं । पर तुम्हारी तो दया होती ही नहीं । तुम्हारे साथ व्याह करने की इच्छा करते ही देखो मुझे जिलेदारी मिल गई। व्याह होने पर मैनेजरी मिल जाय तो क्या तअज्जुब है ?

बसन्ती—क्या दया नहीं होती है ? उस दिन मैं क्या कह गई थी ! मैं तो अपने मुँह से कह गई थी कि राजी हूँ । आपने ही कहा, एक दिन हम तुम दोनो बैठ कर सब बातो का ठीक ठाक कर लेंगे । इसके बाद न कोई कथा हुई न वार्ता । अब आप यहाँ से चम्पत होने की फिक्र में हैं ।

रौनक—इसी को कहते हैं स्त्रीचरित्र ! कहो तो उस दिन से फिर कभी तुम यहाँ आई भी ? जब तुम आतीं तभी तो कोई बात स्थिर होती ? मैं रोज साँझ को बैठकर सोचता था कि आज बसन्ती आवेगी । पहर रात तक तुम्हारे आने

हो सकता है।' तब रौनक ने बसन्ती का रुपया हथियाने का एक और उपाय सोचा।

वह समझाकर लल्लो पत्तो करके कहने लगा—बसन्ती तुम क्या समझती हो, अगर मैं आज ही तुमसे व्याह कर सकता तो क्या कल के लिए रुक रहता? तुम असल बात नहीं जानती। यह सधवा का व्याह नहीं है, यह है विधवा का व्याह। विधवा के व्याह में बड़ा बखेड़ा होता है। कुमारी का व्याह दो चार मन्त्र पढ़कर आग में जरा सा घी डाल देने ही से हो जाता है। विधवा-व्याह का मन्त्र पढ़ा सके ऐसा होशियार पुरोहित इन गँवई गाँवों में मिलना कठिन है। मुरादाबाद के सिवा उस ढङ्ग का पुरोहित अन्यत्र नहीं मिलेगा। इससे मुरादाबाद गये बिना यह व्याह भी नहीं होगा। मुरादाबाद जाने और वहाँ एक मकान भाड़े पर लेकर रहने में बहुत रुपये की जरूरत है। मेरे पास तीन बीस अर्थात् साठ रुपये हैं। आशा नहीं कि इसमें सब खर्च हो सके। इसी लिए तो कुछ विलम्ब कर रहा हूँ, नहीं तो अब तक न जाने यह काम कब हो गया होता। भगवान् की कृपा से खर्च के लिए रुपये का एक उपाय भी हो गया है।

बसन्ती उत्साह-पूर्वक बोली—क्या उपाय हुआ है?

रौनक—एक सिद्ध महात्मा से भेंट हो गई है। उन्होंने कुछ रुपया मिलने का उपाय कर दिया है।

रौनक—होगा क्यों नहीं । उसके लिए चिन्ता ही क्या; कोई दिन स्थिर कर लिया जायगा ।

यह सुनकर बसन्ती फिर क्रोध मे जल उठी । बोली—ऐसी लापरवाही से बोल रहे हो ।

"तुमने लापरवाही कैसे समझी ? स्त्री का हृदय है न। बात बात में अविश्वास !"

बसन्ती ने रुष्ट होकर कहा—अगर आपको मेरे साथ ब्याह करने की इच्छा सचमुच ही हो तो सब बातों का जल्दी ठीक ठाक कर डालिए । यहाँ अब मेरा मन नहीं लगता । अगर ब्याह करना मजूर न हो तो साफ साफ कह दीजिए । मेरी मौसी मर गई है, वह मुझे कुछ रुपया दे गई है । सोचती हूँ, न होगा तो काशी चली जाऊँगी । मेरे पास जो रुपया-पैसा है और मौसी जो दे गई है वह सब मिलाकर इतना हो जायगा कि जिससे मेरा काशी का खर्च अच्छी तरह चल जायगा । भगवान् का भजन करूँगी, गगा-स्नान करूँगी और स्वतन्त्रता मे रहूँगी । अब मैं दासी का काम करके जिन्दगी नहीं बिताना चाहती ।

यह सुनकर रौनक को धक से रुपये की बात याद आ गई । सोचा, उस दिन हिसाब किया तो मालूम हुआ कि इसके हाथ में ढाई सौ रुपये के लगभग हैं । फिर मौसी से रुपया पाने की बात कहती है । कौन जाने वह कितना रुपया दे गई है । पूछने से यह बतलावेगी भी नहीं । जो पूछूँ तो मुझ पर सन्देह भी

कहा—'दो सौ रुपया मिलने ही से मेरा व्याह हो जायगा।' यह सुनकर बाबा ने कहा—'तेरे पास कितना रुपया है ?' मैंने कहा—'बहुत होगा तो पचास साठ। मैं गरीब आदमी रुपया कहाँ पाऊँगा ?' बाबा ने कहा—'अच्छा कुछ परवा नहीं। हम तुझको एक मन्त्र सिखा देंगे, उस मन्त्र के प्रभाव से तेरा एक एक रुपया चार चार हो जायगा।' मैंने कहा, 'बाबा, कृपा करके वह मन्त्र बता दीजिए, बड़ी कृपा होगी।' बाबा ने कहा—'जा नदी में स्नान कर आ।' मैं नदी में स्नान कर आया और बाबा के पास भीगे कपड़े पहिने आ बैठा। बाबा ने कहा, 'हम जो जो बातें कहते हैं उन्हें मन लगा कर सुन। तेरे जितने रुपये हों उन्हें एक काठ के सन्दूक में बन्द कर देना। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात को किसी बेवा औरत से कहना कि वह सिर के बाल खोल, धरती में माथा रख, दाँत से दोना (द्रोण-पुष्प) की जड़ उखाड़ कर ला दे। उस जड़ को पानी से धो दहने हाथ में ले १०८ बार मन्त्र पढ़ कर लाल डोरे से कस कर बक्स की जंजीर में बाँध देना। बक्स में पीतल का ताला लगा कर कुंजी उस औरत को दे देना। रोज आधी रात के समय बक्स के ऊपर हाथ रख कर एक सौ आठ बार मन्त्र जपना। एक महीने के बाद जब फिर कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात आवे तब उस औरत को बुला कर उसी के हाथ से बक्स खुलवाना। कुबेर देवता की कृपा से देखोगे कि बक्स का रुपया चौगुना

बसन्ती का कुतूहल बहुत बढ गया। बोली—बतलाइए न, क्या उपाय हुआ है?

रौनक ने गम्भीरतापूर्वक कहा—स्त्रियों को ये बातें सुनने की जरूरत नहीं।

बसन्ती ने विनती करके कहा—नहीं, बतलाइए, मैं आपके पैरो पडती हूँ।

तब रौनक ने धीरे धीरे यों कहना आरम्भ किया—

"कल सॉंझ को मैं नदी-किनारे घूमने गया था। वहाँ देखा कि पीपल के पेड के नीचे धूनी जलाये एक साधु बैठे हैं। उनके सिर की जटाओं का क्या कहना है! वे धरती मे लोट रही थीं। खूब मोटी भुजाएँ, गौर वर्ण, चौडी छाती और उस पर लगी हुई विभूति तथा गले में रुद्राक्ष की माला थी। पास ही नरकपाल रक्खा हुआ था। बाघम्बर पर बैठे साक्षात् शिव के समान मालूम होते थे। देखते ही भक्ति उत्पन्न हुई। मैं उनके पास गया। बाबा को प्रणाम करके हाथ जोड सिर झुकाकर मैं बैठ गया। मुझे देखकर बाबा ने पूछा—'क्यों रे भगत! तेरा मुँह ऐसा उदास क्यों है?' मैंने कहा—'बाबा! मैं बडा गरीब हूँ। ब्याह करने की इच्छा है—दुलहिन भी मिल गई है, केवल रुपये के अभाव से ब्याह नहीं कर सकता। इसी शोच से मेरा चेहरा ऐसा फीका पड गया है।' यह सुनकर बाबा खिलखिलाकर हँसने लगे। उन्होंने कहा—'रुपया तो मिट्टी है! तुझे कितने रुपये चाहिए'। मैंने हाथ जोडकर

जानने के लिए वसन्तो की उत्कण्ठा कहाँ तक बढ़ी है, यह उसके स्वर से ही जाहिर हो चुका था। रौनक ने जो सोचा था वही हुआ। वसन्तो कुछ देर में बोली—अच्छा, चतुर्दशी के तो अब बहुत दिन नहीं हैं, उस रात का आप देवीपुर से यहाँ आइए न ?

रौनक—आना तो कठिन नहीं, किन्तु विधवा कहाँ मिलेगी ? और विधवा भी ऐसी हो जो रात में यहाँ आना कबूल करे तथा किसीसे इस बात की चर्चा न करे। बाबाजी ने मना कर दिया था कि जड़ी का हाल किसी दूसरे को मालूम न होने पावे।

"मैं तो हई हूँ। न कोई मिलेगी तो मैंही वह जड़ी उखाड़ कर ला दूँगी।"

रौनक मानो परम कृतज्ञ होकर बोला—अहा, जो तुम यह स्वीकार करलो तो मुझे और कहीं जाने की जरूरत ही क्या है ? आज सप्तमी है, आज के सातवें आठवें दिन चतुर्दशी होगी। यदि तुम निश्चय करके कहो तो मैं चतुर्दशी की रात यहाँ आऊँ।

"मैं पक्का वादा करती हूँ। आपका यह काम मैं जरूर कर दूँगी। तो आप किस वक्त आवेंगे ?"

"यहाँ से देवीपुर तीन कोस है। वहाँ का काम करके दफ्तर बन्द कर कुछ दिन रहते चलूँगा तो साँझ होते होते यहाँ पहुँच जाऊँगा।"

"अच्छा, मैं उस समय कुछ बहाना करके मालकिन से

होगया ।' यह कह कर बाबा ने मेरे कान मे मन्त्र कह दिया। मन्त्र बहुत बडा नहीं, तीनही अक्षर का है ।"

बसन्ती गाल में हाथ लगाये चुपचाप रौनक की अनूठी बातें सुन रही थी। रौनक के चुप होजाने पर भी कुछ देर तक उसके मुँह से बात न निकली।

आखिर वह दाँत से जीभ काट कर बोली—अरे दादा क्या यह सच है ?

रौनक—बिना जाँच किये नहीं कहा जा सकता कि यह सच है या नहीं। बाबाजी ने जैसा कहा है उसी तरह करके देखूँगा। रुपया चौगुना हुआ तो अच्छा ही—न हुआ तो मेरा असल रुपया कहाँ जायगा ?

"कब परीक्षा कीजिएगा ?"

रौनक ने कुछ सोच कर कहा—यही तो मैं भी सोच रहा हूँ। अभी दो महीने के लिए एवजी करने देवीपुर जा रहा हूँ—इन दो महीनो के भीतर तो बनेगा नहीं। देवीपुर से लौट कर बाबू से एक महीने की छुट्टी लेकर घर जाऊँगा। वहाँ मेरी फूफी रहती है। वह विधवा है। उसीसे अँधेरे पाख की चतुर्दशी की रात में जडी उखडवाऊँगा। किन्तु फूफी बहुत बूढी होगई है, उसको अब आँख से बहुत कम सूझता है। यही मुश्किल है।

रौनक जानता था कि बसन्ती अवश्यही कहेगी, "आगामी चौदस की रात मे यही परीक्षा हो।" परीक्षा का फलाफल

जानने के लिए वसन्ती की उत्कण्ठा कहाँ तक बढ़ी है, यह उसके स्वर से ही जाहिर हो चुका था। रौनक ने जो सोचा था वही हुआ। वसन्ती कुछ देर में बोली—अच्छा, चतुर्दशी के तो अब बहुत दिन नहीं हैं, उस रात को आप देवीपुर से यहाँ आइए न?

रौनक—आना तो कठिन नहीं, किन्तु विधवा कहाँ मिलेगी? और विधवा भी ऐसी हो जो रात में यहाँ आना कबूल कर तथा किसीसे इस बात की चर्चा न करे। बाबाजी ने मना कर दिया था कि जड़ी का हाल किसी दूसरे को मालूम न होने पावे।

"मैं तो हई हूँ। न कोई मिलेगी तो मैंही वह जड़ी उखाड़ कर ला दूँगी।"

रौनक मानो परम कृतज्ञ होकर बोला—अहा, जो तुम यह स्वीकार करलो तो मुझे और कहीं जाने की जरूरत ही क्या है? आज सप्तमी है, आज के सातवे आठवें दिन चतुर्दशी होगी। यदि तुम निश्चय करके कहो तो मैं चतुर्दशी की रात यहाँ आऊँ।

"मैं पक्का वादा करती हूँ। आपका यह काम मैं ज़रूर कर दूँगी। तो आप किस वक्त आवेंगे?"

"यहाँ से देवीपुर तीन कोस है। वहाँ का काम करके दफ़्तर बन्द कर कुछ दिन रहते चलूँगा तो साँझ होते होते यहाँ पहुँच जाऊँगा।"

"अच्छा, मैं उस समय कुछ बहाना करके, मालकिन से

एक घंटे की छुट्टी लेकर आऊँगी। किन्तु दोने का पेड कहाँ मिलेगा ?"

रौनक ने हँस कर कहा—घोडा मिल जाने पर चाबुक मिलना कौन कठिन है। यदि तुम आजाओगी तो दोने के पेड के लिए काम न रुकेगा। दोने के पेड कितने लोगी? मेरे आँगन के कोनेही मे तो ढेर के ढेर लगे हैं। चलो अभी दिखला दूँ।

रौनक ने हाथ मे दिया लिया। दोनो उठ कर आँगन के कोने मे गये। वसन्ती ने देखा, दोने के बहुतेरे पेड उपजे हुए हैं। वह बोली—अगर उखाडते समय पेड टूट जाय और जड न निकले तो?

रौनक—दोने का पेड इतना कमजोर नहीं होता कि दाँत से कट कर टूट जाय। पहले उसे अच्छी तरह हिला कर उखाडने से क्यो नहीं उखडेगा? उसे तो छोटा सा लडका भी उखाड सकता है। अगर ऐसे न हो तो खुरपी से पहले उसकी जड की मिट्टी खोद कर आँचल के छोर से पेड का बाँधना और फिर उस कपडे की गाँठ को दाँत से दबा कर पेड उखाड लेना।

वसन्ती प्रसन्न दृष्टि से रौनक के मुँह की ओर देख कर बोली—तुम्हारी बुद्धि बडी विलक्षण है।

"इतनी बुद्धि रहने पर भी तो तुम्हारा मन नहीं पा सका" कहते कहते दोनो फिर ओसारे मे लौट आये।

वसन्ती अब खडे खडे ही बोली—बहुत देर हो गई, अब मैं जाती हूँ।

"कुछ देर और न बैठोगी ? मन की कितनी ही बातें तुम से कहनी हैं। यदि भगवान् की दया हुई, साधु के मन्त्र के प्रभाव से रुपया चौगुना बढ़ गया तो अगहन महीने के अन्त तक मुरादाबाद जाकर ब्याह का काम कर डालूँगा।" यह कहते कहते रौनक़ बसन्ती के साथ साथ दरवाज़े तक गया।

बसन्ती ने कहा—चतुर्दशी को सन्ध्या-समय आप अवश्य आवेंगे न ?

"अवश्य। तुमको इस बात का स्मरण रहना चाहिए।"

"रहेगा" कह कर बसन्ती चली गई।



उन्नीसवाँ परिच्छेद

आज नव बजे दिन को रौनकलाल ने देवीपुर पहुँच कर मथुराप्रसाद से चार्ज ले कागज पत्र और तहवील अपने जिम्मे कर ली। तीसरे पहर मथुराप्रसाद ने घर की यात्रा की।

नये पद पर नियुक्त होकर रौनक ने बड़ाही साधुभाव धारण किया। नाई को बुलाकर अपनी दाढ़ी मूँछ मुँड़वा डाली। कार्य न होने पर एक हरिनाम जपने की झोली हाथ में लेकर और खड़ाऊ पहिन कर घूमने लगा। ब्राह्मण को देखते ही धरती पर सिर टेक कर प्रणाम करता था। साधु-सन्यासी को बड़े आदर से अपने घर बुला उन्हे यथेच्छ भोजन कराता था। छोटे बड़े सभी श्रेणी के लोगों की स्त्रियों को माँ कह कर पुकारने लगा। प्रजा को सता कर अन्यायपूर्वक लिये गये पैसे से गोरक्त और ब्रह्मरक्त की तुलना कर, गरीब प्रजा को अपनी सन्तान के बराबर मान कर, रौनक थोड़ेही दिनो मे गाँव मे विलक्षण रूप से परिचित होगया। सभी लोग उसका दयाधर्म देखकर दग होरहे।

इस तरह एक हफ्ता बीता। इसके बाद रौनक ने कमलपुर जाकर मालिक से भेंट की। बाबू एक सूनी कोठरी मे बैठे थे। वहाँ उसकी तलबी हुई। बाबू ने कहा—कहो रौनकलाल, वहाँ का क्या हाल है?

"हुजूर के श्रीचरणों की असीस से सब कुशल मङ्गल है। जब से मैं गया हूँ तबसे २७२॥।) वसूल हुआ है। पन्द्रह दिन के भीतर और तीन चार सौ रुपया वसूल होने की आशा है। छोटे कौम की रियाया अधिक हैं—वे लोग बडे पाजी हैं। मालगुजारी देने मे बडी हुज्जत करते हैं।"

"अच्छा, उस महाल के सब गाँव तो तुम देख चुके ?"

"जी नहीं, सब गाँव तो अभी तक नहीं देखे हैं। कुछ गाँव देखना अभी बाकी रह गया है। सुबह आठ बजे से ग्यारह बजे तक दफ़्तर करके स्नान भोजन करता हूँ। एक बजे घोडे पर सवार होकर महाल देखने निकलता हूँ। साँझ को वापस आता हूँ। सभी गाँवो मे हुजूर का अतुल प्रताप छाया है। हुजूर की धाक से बाघ बकरी एकही घाट में पानी पीते हैं। यह देख कर बडी खुशी हुई।"

रौनकलाल की खुशामदी बातो से गोपीकान्त बहुत खुश हुए। उससे बोले—अच्छा अच्छा, तुमको जैसा परिश्रमी देखता हूँ, तुम बेशक अपनी तरक्की बहुत जल्द कर सकोगे।

रौनक़लाल न सिर निहुरा कर कहा—हुजूर की दया से सब हो सकता है।

जमींदारी के सम्बन्ध में और भी कुछ देर तक बात चीत हुई। इसके बाद बाबू ने कहा—उस मामले का भी कुछ पता लगा ?

"हुजूर का हुक्म था इसलिए उस पर मैं सिर्फ बराबर

गुज़ारी वसूल करने हरखोला जाता हूँ ।' लौटकर दरयाफ़्त करना होगा, वह देवीपुर गया था या नहीं ।"

यह कहकर रौनकलाल चुप हो रहा । गोपीकान्त ने चिन्तित स्वर म कहा—शङ्करपुर का हरिदास ?

"जी हाँ, उसने तो यही कहा है ।"

"उसे तो मैंने यहाँ आते कभी नहीं देखा ।"

"हुजूर, मैं ने तो उसे दो तीन दिन यहाँ देखा है । शायद दीवान जी के पास किसी काम से आया होगा ।"

बाबू ने दीवान को बुला भेजा । दीवान ने आकर कहा— "हरिदास दो दिन बराबर यहाँ आया था । किन्तु दफ़्तर में नहीं आया । छोटे बाबू की बैठक मे गया था ।" यह कहकर दीवान चला गया ।

बाबू ने कहा—देखो रौनक, तुम जाकर चुपचाप खबर लो कि हरिदास के साथ धनीराम का कोई सम्बन्ध है या नहीं । और इन्हीं दिनो वह उसके घर आता जाता है या इसके पहले भी आता जाता था ।

"बहुत अच्छा, मैं जाते ही इसका पता लगाऊँगा । जैसा होगा हुजूर को खबर दूँगा ।" कहकर वह बाबू से आज्ञा ले विदा हुआ ।

कचहरी के सामने से निकल छोटे बाबू की बैठक के आगे से होकर जाते समय रौनक ने देखा कि बरामदे के नीचे सीढी के पास कितना ही कूडा करकट पडा है । उसमें

एक पोस्ट कार्ड भी था। रौनक ने कुतूहल-वश उसे उठा लिया। देखा कि एक पुराना कार्ड है। मोतीलाल बाबू के नाम से किसी ने भेजा था। इधर उधर किसी को न देख रौनक ने झट उसे अपनी पाकेट में रख लिया।

घर जा, भोजन करके कुछ देर विश्राम किया, फिर दिन के पिछले पहर रौनक घोड़े पर सवार हो बागीचे में गया। फाटक पार होकर माली के घर के पास जा वह घोड़े से उतर पड़ा। माली ने घोड़े को समीप ही आम के पेड़ के तने में बाँध दिया।

रौनक ने कहा—कहो चौधरी, अच्छे हो?

"जी हाँ, आपकी दुआ से।"

"बाबू ने कुछ कहला भेजा है?"

"जी, एक दरवान आकर कह गया है कि देवीपुर के दफ़्र में कुछ फलों के पौधे भेज देने होंगे।"

"हाँ, इसीलिए मैं आया हूँ। चलो बाग में कुछ पौधे ठीक कर आवें।—ओफ अभी बड़ी धूप है। तब तक एक चिलम तम्बाकू भर लाओ। धूप घट जाने दो, तब पेड़ देखने चलूँगा।"

माली तम्बाकू भरने गया। इतने में उसका छोटा लड़का रमफलवा नाचते नाचते कहीं से वहाँ आ पहुँचा। रौनक की दाढ़ी मूछ मुड़ी देखकर पहले तो उसने नहीं पहचाना। इधर रौनक उसका नाम भूल गया था—वह बोला, 'क्यों रे बदमाश।' तब लड़के ने आकर रौनक के साथ जान पहचान

की ओर दो पैसे पाकर मन की उमङ्ग से नाचते नाचते वहाँ से चला गया ।

माली तम्बाकू भरकर ले आया और बोला—मेरा महीना बढाने की बात आप ने बाबू से कही थी ?

"नहीं चौधरी, अब भी कुछ कहने का मौका नहीं मिला है। यह जो देवीपुर में बाग़ लगाने की बात ठानी है, उसी अवसर मे बाबू से कहूँगा। कोई सन्धि पाये बिना कैसे कहूँ ? मौका मिलने पर क्या मैं छोड दूँगा ? देखो, देवीपुर के इस बाग़ के लिए एक अच्छे माली की जरूरत है । अगर मैं तुम्हारे लिए बाबू से कहूँ और वे तुम्हे छोड दें तो मैं तुमको देवीपुर ले जाकर पूरी तलब दे सकता हूँ । वह बाग तो मेरेही हाथ में रहेगा। बाबू तुमको छोडेंगे, ऐसा तो जान नहीं पडता ।"

माली—क्या जाने ।

रौनक ने सिर हिलाकर कहा—नहीं, तुमको वे हर्गिज नहीं छोडे गे । तुम्हारे चले जाने पर लीलावती की निगरानी कौन करेगा ? तुम्हारे ऐसा दूसरा विश्वासपात्र आदमी कहाँ पावेंगे ?"

माली ने सन्दिग्ध भाव से रौनक की ओर देखकर कहा—बाबू कौन लीलावती ?

रौनक ने मुस्करा कर कहा—भला, भला । इसी तरह सावधान होकर रहना चाहिए । तुम अब तक भी नहीं जानते

कि लीलावती कौन है । देवीपुर के धनीराम ग्वाले की बहू, जिसको तुम लोग बहूजी कहते हो ।

माली अचम्भे के साथ बोला—आपको कैसे मालूम हुआ। आप से किसने कहा है ?

"और कौन कहेगा ? खुद बाबू साहब ने कहा है। क्या तुम समझते हो कि उनकी कोई बात मुझसे छिपी है ? मेरे साथ बाबू का मन मिल गया है । यहाँ तक कि एक साथ बैठकर (रौनक ने काल्पनिक गिलास हाथ में ले पीने का इशारा करके) यह भी होता है । नहीं तो इतने लोगों के रहने पर भी उन्होंने मुझी को देवीपुर का जिलेदार नियत करके क्यों भेजा ? सिर्फ धनीराम को कब्जे में रखने के लिए। ये सब काम विश्वासी लोगों के सिवा और किसी के हाथ में नहीं दिये जा सकते । गुमाश्ता में एक मेरे ऊपर और नौकरों में तुम्हारे ऊपर—इन्हीं दोनों पर उनका पूरा विश्वास है । नहीं तो मुझको बाबू की नौकरी किये अभी हुए कै दिन हैं—तीन महीने भी पूरे नहीं हुए । पन्द्रह रुपये महीने पर भर्ती हुआ था । दो महीने बाद तीस रुपये मासिक पर जिलेदारी के पद पर नियुक्त हुआ हूँ । बाबू अच्छी तरह जानते हैं कि कौन विश्वासी और कौन अविश्वासी है ।"

माली ने दुःखसूचक स्वर में कहा—विश्वासी नौकर होने का फल आपको तो अच्छा मिला पर मुझको क्या मिला ?

"मिलेगा, जरूर मिलेगा । तुम्हारी भी तरक्की होगी ।

धैर्य धरो । मैं बाबू से कहकर तुम्हारा महीना अवश्य ही बढ़वा दूँगा । तुम जी लगाकर काम तो किये जाओ । और उस मामले में खूब हुशियार रहना । समझ गये न ?

"मुझे यह समझाने की जरूरत नहीं ।"

"अच्छा यह तो कहो, अब भी लीलावती रोती चिल्लाती है ?

"हाँ, अब भी उसी तरह रोती है ।"

"अगर उसे मौका मिल जाय तो क्या भाग जायगी ?"

"भागेगी नहीं तो क्या करेगी ।"

"ताला खूब सावधानी से बन्द करना । वह बुढ़िया शायद तुम्हारी सास है ?"

"जी हाँ ।"

"इसी से बाबू ने कहा था, उसे अच्छी तरह समझाकर कह देना कि जब वह नदी से पानी लेने जाय तब पीछे का दरवाजा मजबूती के साथ बन्द करके जाय । यह न समझे कि नदी तो पास ही में है, झटपट पानी ले आती हूँ–ताला न भी बन्द किया तो क्या ।"

"यही तो किया जाता है। बाबू का हुक्म ही यही है ।"

"यह जानता हूँ, फिर भी सावधान किये देता हूँ । जानते ही हो, लोग कहते हैं 'सावधान रहने से चोरी नहीं होती ।' कुञ्जी तो तुम्हारे ही जिम्मे रहती है । जब बुढ़िया को जरूरत हो तब वह तुमसे माँगले और काम हो जाने पर फिर तुमको देदे ।

क्योंकि वह तो बुढ़िया स्त्री है, उसकी मति गति का ठिकाना ही क्या ? कहीं कुंजी खो दे तो फिर मुश्किल हो जाय।"

"कुंजी मैं ही अपने पास रखता हूँ।"

"कहाँ रखते हो ? घर में किसी जगह मत रख दिया करो। शायद लड़का उसे खेलने के लिए ले जाकर फेंक दे। उसे अपनी कमर में डोरे से कसकर बाँध रखना।"

"जी हाँ—उसी तरह बाँधे रहता हूँ" कहकर माली ने कमर से कुंजी निकालकर दिखला दी।

रौनक ने कहा—कुंजी वैसी तो मजबूत मालूम होती नहीं, देखूँ भला।

माली ने कुंजी उसके हाथ में देदी। रौनक उसे भली भाँति देखकर बोला—नहीं, एकदम मामूली भी नहीं है। अभी इसी से काम लो। फिर बाबू से कहकर एक विलायती ताला भेजवा दूँगा। अगर इस दरमियान में वह राजी हो गई तो फिर ताला कुंजी की जरूरत नहीं होगी।

माली ने कहा—राजी होने के लक्षण दिखाई नहीं देते। एक दिन बाबू से कहती थी—"अगर आप मुझ से कुछ कहेंगे तो मैं छत से कूद कर जान दे दूँगी।"

रौनक काँप कर बोला—भगवान् न करे, उस को ऐसी मति हो। अच्छा, वह बाबू का नाँव गाँव जानती है?

माली ने हँस कर कहा—नहीं, बाबू ने पहले ही से बुढ़िया को सिखा दिया था कि यदि वह पूछे, यह कौन गाँव

है, तो कहना दिलदारगज। मेरा नाम पूछे तो कह देना कि यह दिलदारगज के बाबू हैं।

यह सुन कर रौनक हँसने लगा। बोला—बाबू ने खूब चालाकी की है। 'दिलदारगज का बडा बाबू' कह कर वह खिलखिला कर हँसने लगा। कहाँ दिलदारगज और कहाँ कमलपुर! अच्छा अब धूप भी घट गई। चलो, कुछ फलों के पौधे देख लूँ।

दोनो उठकर बाग के भीतर गये। अनेक फलों के बहुतेरे पेड रौनक ने माली को दिखा दिये। फिर कहा—कल बैलगाडी भेज दूँगा। ये सब पेड लाद कर भेज देना।

सूर्यास्त होने मे विलम्ब न था। रौनक ने कहा—अच्छा तो मैं अब जाता हूँ। साँझ हो गई, अँधेरा पास है। बहुत दूर जाना होगा। एक दिन फिर आकर कुछ पौधे और चुनूँगा।

"आप फिर कब आइएगा?"

"नवरात्र-पूजा के दिन। उस दिन कचहरी बन्द रहेगी न। अगर हो सका तो उसके एक दिन पहले ही आऊँगा।" कह कर रौनक घोडे पर सवार हुआ। कुछ दूर आगे जा, घोडे को रोक कर उसने माली को पास बुला कर चुपके से कहा—चौधरी सुनो तो, एक काम कर सकते हो? कालीपूजा के दिन बाबू के घर से मास मिलेगा। हम शाक्त हैं। उस रात मे भगवती का कुछ प्रसाद खाना जरूरी है। तुम लोग उसे क्या कहते हो? पूजा की बोली में उसे मदिरा कहते हैं। तुम लोगों मे शायद

भी इसे मालूम नहीं । आखिर मैंने उसके आगे जाकर पूछा—
"तुम कौन हो ?" उस ने थथम कर कहा–'मेरा नाम हरिदास
है।' मैंने कहा–'यहाँ क्या कर रहे हो ?' तो 'कुछ नहीं,
बागीचे की शोभा देख रहा हूँ।' यह कह कर बड़े वेग
से चला गया ।"

माली ने कहा—क्या जानें बाबू, कभी किसी को
इस तरह ताकते तो नहीं देखा है । कौन जाने वह किस
मतलब से आया था ।

रौनक गम्भीरतापूर्वक बोला—किन्तु मुझे भारी सन्देह
होता है । अरे ! एक भूल हो गई—उसका घर नहीं पूछा।
ख़ैर, तुम इस बात का पता लगाना कि आस पास के किसी
गाँव में हरिदास नाम का कोई ग्वाला रहता है या नहीं ।

"बहुत अच्छा, पता लगाऊँगा। यह ख़बर तो बाबू साहब
को भी देनी चाहिए ।"

"अवश्य, किन्तु मैं तो आज बाबू साहब से भेंट कर नहीं
सकता । आज मैं अपने एक ख़ास काम से आया हूँ । बड़े
तड़के यहाँ से फिर चला जाऊँगा । मैं एक तरह से छिपकर
ही आया हू । तुम एक काम कर सको तो अच्छा हो । कल
सवेरे जाकर बाबू से तुम्हीं कहना, मेरा नाम लेने की जरू-
रत नहीं । तुम इस तरह कहना जैसे तुम्हीं ने देखा है ।
तुम्हारी इस होशियारी से बाबू खुश भी होंगे। कहना कि
बाग के भीतर तुम जा रहे थे, उसी समय तुमने देखा । समझ

बीसवाँ परिच्छेद

कालीपूजा के एक दिन पूर्व, दिन के पिछले पहर, रौनक लाल पैदल ही बागीचे में आ पहुँचा। उसके हाथ में एक छोटा सा चमडे का बैग था। माली अपने घर के सामने बैठा तम्बाकू पी रहा था—रौनक को देख कर उठ खडा हुआ और बोला—आइए बाबू।

"वाह, वाह! तम्बाकू तो मौजूद ही है" कह कर रौनक चारपाई के ऊपर बैग रख कर बैठ गया।

माली ने कहा—फेज़े की डंडी काटे लाता हूँ।

"नहीं, मेरे पास हुक्का है" कह कर रौनक ने बैग से हुक्का निकाला। दोचार कश खींच कर बोला—हाँ एक बात पूछता हूँ। हरिदास नाम का कोई ग्वाला है, उसे जानते हो?"

माली ने सोच कर कहा—हरिदास? नहीं याद तो नहीं आता। क्यो?

"मैं जब इस बागीचे मे अभी आ रहा था तब देखा कि बगल मे छतरी दबाये, कुरता पहिने और सिर में मुडेठा बाँधे एक अधेड आदमी आम के पेड के नीचे खडा होकर बागीचे के मकान की ओर बड़े गौर के साथ देख रहा है। मैंने सोचा, यह कौन आदमी है, मैं इस के पीछे खडा हूँ, यह

भी इसे मालूम नहीं। आख़िर मैंने उसके आगे जाकर पूछा—"तुम कौन हो?" उस ने थथम कर कहा—'मेरा नाम हरिदास है।' मैंने कहा—'यहाँ क्या कर रहे हो?' तो 'कुछ नहीं, बागीचे की शोभा देख रहा हूँ।' यह कह कर बडे वेग से चला गया।"

माली ने कहा—क्या जानें बाबू, कभी किसी को इस तरह ताकते तो नहीं देखा है। कौन जाने वह किस मतलब से आया था।

रौनक़ गम्भीरतापूर्वक बोला—किन्तु मुझे भारी सन्देह होता है। अरे! एक भूल हो गई—उसका घर नहीं पूछा। ख़ैर, तुम इस बात का पता लगाना कि आस पास के किसी गाँव में हरिदास नाम का कोई ग्वाला रहता है या नहीं।

"बहुत अच्छा, पता लगाऊँगा। यह ख़बर तो बाबू साहब को भी देनी चाहिए।"

"अवश्य, किन्तु मैं तो आज बाबू साहब से भेंट कर नहीं सकता। आज मैं अपने एक ख़ास काम से आया हूँ। बडे तडके यहाँ से फिर चला जाऊँगा। मैं एक तरह से छिपकर ही आया हूँ। तुम एक काम कर सको तो अच्छा हो। कल सवेरे जाकर बाबू से तुम्हीं कहना, मेरा नाम लेने की जरूरत नहीं। तुम इस तरह कहना जैसे तुम्हीं ने देखा है। तुम्हारी इस होशियारी से बाबू ख़ुश भी होंगे। कहना कि बाग के भीतर तुम जा रहे थे, उसी समय तुमने देखा। समझ

गये न ? जो मैंने देखा है उसे तुम अपना देखा हुआ कह कर बयान करना।"

माली—अच्छा कह दूँगा, नाम पूछने पर हरिदास बतला ऊँगा। और क्या कहूँगा ? बगल में मुडासा—

रौनक—नहीं नहीं, कहना बगल में छतरी थी और सिर पर मुड़ासा, कुरता पहिने हुए था। उमर पचास के करीब, नाम हरिदास। स्मरण रहेगा न ?

"हाँ रहेगा।"

तब रौनकलाल ने माली को उत्तम रूप से तालीम दी। वह गवाहों को अच्छी तालीम देना बहुत दिनों से जानता है।

फिर रौनक ने कहा—यह सब तो हो गया। अब यह कहो—जो लाने के लिए मैं कह गया था वह ला रक्खा है न ?

"जी हाँ," कह कर माली ने तीनों बोतलें लाकर सामने रख दीं।

बोतलें देख कर रौनक ने पूछा—इन में एक रुपया वाली कौन है ?

"जिसके मुँह पर सील मुहर की हुई है वही एक रुपये वाली है। और जो सिर्फ काक से बन्द है वह आठ आने वाली हैं।"

रौनक ने मुहर वाली बोतल को बैग में रख लिया। बाकी दोनों माली को देकर कहा—ये तुम लो।

इस अप्रत्याशित उपहार को पाने की खुशी से माली के, दोनो पत्निओं के, दाँत बाहर निकल पडे। बोला—दोनों बोतलें ?

"हाँ, ये दोनों तुम्हारे ही लिए मँगवाई थीं। तुम्हारी स्त्री है, मास है, आखिर उन्हे भी तो कुछ चाहिए। इसमें लज्जा क्या है ? क्या मैं नहीं जानता कि तुम्हारी जाति में इसका चलन है ? तुम तो माली हो, अच्छे अच्छे कायस्थों को मैंने पीते देखा है। उनके घरों की स्त्रियाँ भी पीती हैं।

माली ने सकुचित होकर कहा—हाँ बाबू, कुछ दिन से इसका व्यवहार बहुत बढ गया है। कायस्थ की कौन कहे कितने ही ब्राह्मण भी इससे नहीं बचे हैं।

साँझ हो गई। माली एक चिलम तम्बाकू भरने के लिए भीतर गया। साथ में दोनों बोतलें लेता गया।

रौनक ने बाहर बैठे बैठे सुना—बुढिया कह रही है, तुम अकेले दो बोतलें कैसे पिओगे ? एक बोतल तुम लो—एक बोतल हमें दो। हम माँ बेटी दोनों मिल कर पियेंगी।"

दूसरी चिलम तम्बाकू पीकर रौनक विदा हुआ। माली ने कहा—कल आप कब आवेंगे ?

रौनक—आज रात तो यहीं कमलपुर मे ही रहूँगा। कल तडके उठकर चला जाऊँगा। कल देवीपुर में तीन चार सौ रुपया वसूल होने की बात है। उन रुपयों को ले दोपहर तक ड्योढी पर हाजिर हो जाऊँगा। कालीजी का प्रसाद नहीं छूटने पावेगा।

माली ने कहा—मैं भी जाऊँगा। हर साल जाता हूँ कल सवेरे ही जाऊँगा। बाबू से हरिदास की बात कहूँगा इसके बाद प्रसाद लेकर घर आऊँगा।

"जरूर जाना। बल्कि रमफलवा को भी साथ लेते जाना। शायद उसने कालीजी की पूजा न देखी हो, साथ चला जायगा तो देख आवेगा।" कह कर रौनक धीरे धीरे बागीचे से चला गया।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

कमलपुर मे अपने घर जाकर रौनकलाल ने चिराग जलाया। इसके बाद तालाब से पानी लाकर चूल्हा जला रसोई चढा दी। और कुछ नहीं सिर्फ पूरियाँ बनेंगी। आज रात म रौनक को बहुत काम करना है। बडा ही भयङ्कर काम करने की बात मन मे ठानी है।

रात के नव बजे बसन्ती ने आकर दर्शन दिया। रौनक झट उठ कर बोला—प्यारी बसन्ती आगई ! मैं सोच रहा था, तुमको याद होगी या न होगी।

बसन्ती—मैं वैसी भूलने वाली नहीं हूँ।

"बैठो बैठो, हवेली के सब लोग अच्छे हैं ?"

"हाँ सब लोग अच्छे हैं। छोटे बाबू यहाँ नहीं हैं। आज खा पीकर कहीं गये हैं।"

"कहाँ गये हैं ?"

"घर में किसी से कुछ नहीं कह गये। आज साँझ को मालिक और मालकिन में यही बात हो रही थी। बाबू ने कहा—देखो तो ऐसा भाई, बिछौना कपडा और बक्स लेकर कहाँ चला गया, मालूम नहीं। एक बार पूछा तक नहीं। यह भी नहीं कहा कि कितने दिनों में लौटेगा और कहाँ जा रहा है।"

रौनक—देखता हूँ, भाई भाई में अभी तक मेल नहीं हुआ है।

वसन्ती ने हँस कर कहा—मेल कैसे होगा? उनकी समझ कुछ और, इनकी समझ कुछ और।

"बड़े लोगों को सभी बातें सोहती हैं। तुम्हारे हमार घर में ऐसा होता तो न जानें कितनी निन्दा होती"—कह कर रौनक पूरियाँ सेकने लगा।

वसन्ती ने मुस्करा कर कहा—उस दिन जो आपने कहा था वह आज होगा न?

"अवश्य ही होगा। उसी के लिए तो आज आया हूँ।"

"कितनी देर है, आज मैं देर तक नहीं रह सकूँगी।"

"कुछ देर नहीं है। वसन्ती, तब तक तुम एक काम करो। इस उसारे में अच्छी तरह झाड़ू देकर पानी छिड़क दो। घर में एक कुशासन है, वह लाकर यहाँ बिछा दो। धूपदानी भी लिये आना, यहाँ से आग ले जाकर धूप जला दो। सोने के कमरे मे ताक पर एक टीन के डिब्बे मे धूप है, वह ले आना। तब तक मैं रसोई बनाये लेता हूँ। हाँ, सदर दर्वाजे के किवाड़ बन्द कर आई हो न, जिसमे कोई आ न जाय।"

"साँकल लगा आई हूँ" कह कर वसन्ती रौनक का बताया काम करने गई।

इतने में रौनक ने कड़ाही नीचे उतारदी। उधर वसन्ती भी सब ठीक ठाक कर आई। वह बोली—सब हो गया।

"बहुत अच्छा । तुम कपड़े बदल, खूब पवित्र होकर, आई हो न ?"

"हाँ, कपड़े बदल कर आई हूँ ।"

रौनक ने चौके से निकल कर कपड़े बदल एक लाल वस्त्र धारण किया । पञ्चपात्र से थोड़ा गङ्गाजल ले अपने और बसन्ती के शरीर पर छिड़का । फिर कहा—चलो अब दोने की जड़ उखाड़ लावें ।

रौनक ने हाथ में चिराग लिया । आँगन के कोने में दोनो आदमी जा खड़े हुए । बसन्ती ने सिर के बाल खोल कर धरती में माथा लगा आँचल के छोर से बाँध कर और उसे दाँतों से खूब पकड़ कर दोने के पेड़ की जड़ सहित उखाड़ डाला । रौनक ने कहा—जय माँ काली ! साधु की बात पूरी करो ।

दोने (द्रोणपुष्पी) की जड़ लेकर दोनो फिर उसारे में आये । रौनकलाल एक छोटा सा काठ का कैश बक्स ले आया । वह पीतल का ताला भी लाया । कैश-बक्स खोल कर रुपयों से भरी एक गेरुए की थैली निकाली । थोड़ा सा लाल डोरा भी लाया ।

फिर आसन पर बैठ कर धूपदान में और भी कुछ धूप डाला । आँख मूँद कर सिर ऊपर को उठा छाती के पास दहना हाथ रख वह काली का नाम जपने लगा ।

कुछ देर तक योंही करके उसने कैश-बक्स खोल कर सामने रक्खा । फिर उसके भीतर गङ्गाजल छिड़क दिया । थैली

से रुपया उँडेल कर वीस वीस रुपये के तीन थाक लगा कर उसने कहा—देखो, बसन्ती ! एक विषम समस्या में पड़ गया हूँ।

"क्या ?"

"ये साठ रुपये हैं। सोचता हूँ, सब रुपये बक्स में रख दूँ या कुछ रुपया रख छोड़ूँ ?"

"क्यों ? जितना अधिक रुपया रखोगे उतना ही अधिक होगा।"

"तुम नहीं समझती हो, यह भौतिक लीला है। कौन जाने, यदि सब रुपये उड़ जायँ तो पीछे पछताने ही से क्या होगा। इससे पचास रुपये बक्स में रक्खे देता हूँ और दस रुपये बाहर ही रखता हूँ। साधु बाबा ने जो कहा है वह अगर सच हुआ तो इन पचास रुपया से दो सौ रुपये हो जायँगे। तब इस दस का भी चालीस कर लिया जायगा। कहो तुम्हारी क्या राय है ?"

"अच्छा, तब फिर दो सौ को बढ़ा कर आठ सौ क्यों नहीं कर लिया जायगा ?"

रौनक ने हँस कर कहा—यह होता है कहीं पगली। वह रुपया तो अछूता नहीं रहेगा, उससे काम नहीं चलेगा। फिर नया रुपया देना होगा।

"तो वही करो। दस रुपया रख छोड़ो।"

रौनक ने तब पचास रुपया गिन कर बक्स में रक्खा। ताला लगाते समय बसन्ती ने कहा—ठहरिए, ठहरिए।

रौनक ने चकित हो आँख उठाकर पूछा—क्यों ?

वसन्ती ने आँचल की गाँठ खोल दो रुपया निकाल कर कहा—मेरे भी ये दो रुपये उसमें रख दीजिए। मेरे आठ रुपये हो जायँगे ?

"अभी यह मैं कैसे कहूँ ? मेरा होगा तो तुम्हारा भी होगा और मेरा रुपया उड़ जायगा तो उसके साथ साथ तेरा भी। फिर पीछे मुझे दोष मत देना, यह मैं अभी कहे देता हूँ।"

"नहीं, मैं दोष नहीं दूँगी"—कह कर वसन्ती ने दोनो रुपये दे दिये।

दोनो रुपये भी बक्स में रख कर रौनक ताला बन्द करने लगा तो वसन्ती ने कहा—मैं एक बहुत मजबूत ताला लाई हूँ। यही इसमें लगाइए।

कुछ काल के लिए रौनकलाल के मुँह पर उदासी छा गई। किन्तु उसने तुरन्त अपने को सँभाल कर कहा—यही सही, तुम अपना ही ताला दो।

ताला बन्द होने पर वसन्ती ने कुञ्जी लेकर अपने आँचल के खूँट में बाँध रक्खी। बक्स की जञ्जीर में लाल डोरे से जड़ी को बाँध कर रौनक ने कहा—जय मा काली, साधू की बात पूरी करो।

वसन्ती बोली—रात हुई। अब मैं जाती हूँ।

"जाओ। आधी रात को बक्स के ऊपर हाथ रख कर

से रुपया उँडेल कर बीस बीस रुपये के तीन थाक लगा कर उसने कहा—देखो, वसन्ती! एक विषम समस्या में पड गया हूँ।

"क्या ?"

"ये साठ रुपये हैं। सोचता हूँ, सब रुपये वक्स में रख दूँ या कुछ रुपया रख छोड़ूँ ?"

"क्यों ? जितना अधिक रुपया रखोगे उतना ही अधिक होगा।"

"तुम नहीं समझती हो, यह भौतिक लीला है। कौन जाने, यदि सब रुपये उड जायँ तो पीछे पछताने ही से क्या होगा। इनसे पचास रुपये वक्स में रक्खे देता हूँ और दस रुपये वाहर ही रखता हूँ। साधु बाबा ने जो कहा है वह अगर सच हुआ तो इन पचास रुपया से दो सौ रुपये हो जायँगे। तब इन दस का भी चालीस कर लिया जायगा। कहो तुम्हारी क्या राय है ?"

"अच्छा, तब फिर दो सौ को वढा कर आठ सौ क्यों नहीं कर लिया जायगा ?"

शैनक ने हँस कर कहा—यह होता है कहीं पगली। वह रुपया तो अछूता नहीं रहेगा, उससे काम नहीं चलेगा। फिर नया रुपया देना होगा।

"तो वही करो। दस रुपया रख छोडो।"

ने तन पचास रुपया गिन कर वक्स में रक्खा।

समय वसन्ती ने कहा—ठहरिए, ठहरिए।

रौनक ने चकित हो आँख उठाकर पूछा—क्यों ?

वसन्ती ने आँचल की गाँठ खोल दो रुपया निकाल कर कहा—मेरे भी ये दो रुपये उसमें रख दीजिए। मेरे आठ रुपये हो जायँगे ?

"अभी यह मैं कैसे कहूँ ? मेरा होगा तो तुम्हारा भी होगा और मेरा रुपया उड़ जायगा तो उसके साथ साथ तेरा भी। फिर पीछे मुझे दोष मत देना, यह मैं अभी कहे देता हूँ।"

"नहीं, मैं दोष नहीं दूँगी"—कह कर वसन्ती ने दोनों रुपये दे दिये।

दोनों रुपये भी बक्स में रख कर रौनक ताला बन्द करने लगा तो वसन्ती ने कहा—मैं एक बहुत मजबूत ताला लाई हूँ। यही इसमें लगाइए।

कुछ काल के लिए रौनकलाल के मुँह पर उदासी छा गई। किन्तु उसने तुरन्त अपने को सँभाल कर कहा—यही सही, तुम अपना ही ताला दो।

ताला बन्द होने पर वसन्ती ने कुंजी लेकर अपने आँचल के खूँट में बाँध रक्खी। बक्स की जंजीर में लाल डोरे से जड़ी को बाँध कर रौनक ने कहा—जय मा काली, साधू की बात पूरी करो।

वसन्ती बोली—रात हुई। अब मैं जाती हूँ।

"जाओ। आधी रात को बक्स के ऊपर हाथ रख कर

से रुपया उँडेल कर बीस बीस रुपये के तीन थाक लगा कर उसने कहा—देखो, बसन्तो ! एक विषम समस्या में पड गया हूँ ।

"क्या ?"

"ये साठ रुपये हैं । सोचता हूँ, सब रुपये बक्स में रख दूँ या कुछ रुपया रख छोड़ूँ ?"

"क्यो ? जितना अधिक रुपया रखोगे उतना ही अधिक होगा ।"

"तुम नहीं समझती हो, यह भौतिक लीला है । कौन जाने, यदि सब रुपये उड जायँ तो पीछे पछताने ही से क्या होगा । इमसे पचास रुपये बक्स में रक्खे देता हूँ और दस रुपये बाहर ही रखता हूँ । साधु बाबा ने जो कहा है वह अगर सच हुआ तो इन पचास रुपया से दो सौ रुपये हो जायँगे । तब इस दस का भी चालीस कर लिया जायगा । कहो तुम्हारी क्या राय है ?"

"अच्छा, तब फिर दो सौ को बढा कर आठ सौ क्यो नहीं कर लिया जायगा ?"

रौनक ने हँस कर कहा—यह होता है कहीं पगली । वह रुपया तो अछूता नहीं रहेगा, उससे काम नहीं चलेगा । फिर नया रुपया देना होगा ।

"तो वही करो । दस रुपया रख छोडो ।"

रौनक ने तब पचास रुपया गिन कर बक्स में रक्खा । ताला लगाते समय बसन्ती ने कहा—ठहरिए, ठहरिए ।

रौनक ने चकित हो आँख उठाकर पूछा—क्यों ?

बसन्ती ने आँचल की गाँठ खोल दो रुपया निकाल कर कहा—मेरे भी ये दो रुपये उसमें रख दीजिए। मेरे आठ रुपये हो जायँगे ?

"अभी यह मैं कैसे कहूँ ? मेरा होगा तो तुम्हारा भी होगा और मेरा रुपया उड़ जायगा तो उसके साथ साथ तेरा भी। फिर पीछे मुझे दोष मत देना, यह मैं अभी कहे देता हूँ।"

"नहीं, मैं दोष नहीं दूँगी"—कह कर बसन्ती ने दोनो रुपये दे दिये।

दोनो रुपये भी बक्स में रख कर रौनक ताला बन्द करने लगा तो बसन्ती ने कहा—मैं एक बहुत मजबूत ताला लाई हूँ। वही इसमें लगाइए।

कुछ काल के लिए रौनकलाल के मुँह पर उदासी छा गई। किन्तु उसने तुरन्त अपने को सँभाल कर कहा—यही सही, तुम अपना ही ताला दो।

ताला बन्द होने पर बसन्ती ने कुञ्जी लेकर अपने आँचल के खूँट में बाँध रक्खी। बक्स की जंजीर में लाल डोरे से जड़ी को बाँध कर रौनक ने कहा—जय मा काली, साधू की बात पूरी करो।

बसन्ती बोली—रात हुई। अब मैं जाती हूँ।

"जाओ। आधी रात को बक्स के ऊपर हाथ रख कर

१०८ बार मन्त्र जपना होगा । एक महीने बाद चतुर्दशी की रात मे फिर आना । बक्स खोल कर देखूँगा, माँ काली क्या करती हैं । कहीं तुम आने की बात न भूल जाना ।"

"नहीं भूलूँगी" कहकर बसन्ती उठ चली । रौनक दर्वाजे तक उसके साथ गया, बोला—आज भूत चतुर्दशी की रात है । भूत-प्रेत, डाकिनी, योगिनी सब आज रात मे घूमेंगी । सावधानी से जाना ।

बसन्ती के चले जाने पर सदर दर्वाजे को भीतर से बन्द करके रौनक आ बैठा । बोतल को खोल कर कुछ शराब पी ।

मन मे कहने लगा—औरत बडी चालाक है, अपना ताला लाई थी । जैसे मैं उस बक्स को खोल ही नहीं सकूँगा । मेरे पास सौ कुंजियो का गुच्छा है । किसी न किसी से तो खुलही जायगा ।

दो एक गिलास और पीते पीते दस बज गये । तब रौनक ने भर पेट भोजन किया । एक चिलम तम्बाकू भर कर पीते पीते रौनक भाँति भाँति की बातें सोचने लगा । क्रमश रात गहरी हुई । रौनक ने उठ कर उस लाल कपडे को साडी की तरह लपेट कर पहिना । दूसरे सन्दूक से लम्बी जटाएँ निकाल कर माथे पर रख लीं । एक त्रिशूल निकाल कर उसके अगले भाग मे, तेल मे घोला हुआ, सिन्दूर लगा दिया । इसके बाद आइने के सामने खडे होकर उसने अपने छद्म रूप की अच्छी तरह जाँच कर ली । अब वह एक गिलास भर मद्य और पी

कर कुंजी के गुच्छे को अपनी कमर मे बाँध, सदर फाटक में ताला लगा कर, एक ओर चल दिया ।

रास्ते में जाते समय उसने हँस कर मन मे कहा—"बसन्ती से कहा था, आज रात में अनेक भूत, प्रेत, डाकिनी, योगिनी निकलेंगी । सो अनेक नहीं तो एक डाकिनी तो निकली ही । माली साला इस समय अपने घर वालो के साथ दारू के नशे में बेहोश पड़ा होगा । नदी-किनारे जाकर देखूँ मेरे खाने के योग्य एक आध लाश मिलती है या नहीं ।" यह कह कर वह बड़ी तेजी के साथ अन्धकार में गायब हो गया ।

बाईसवाँ परिच्छेद

रौनक के चले जाने पर सन्ध्या होने के अनन्तर बागीचे मे माली ने अपने घर के सामने चारपाई पर बैठ कर रौनक लाल की दी हुई एक बोतल खोली। उसकी स्त्री पीतल के कटोरे मेँ कुछ भूनी हुई मछलियाँ और बेसन की फुलौरियाँ दे गई। माली उसके साथ बडी लज्जत से बोतल का रस गिलास मेँ ढाल कर थोडा थोडा पीने लगा। माली की सास उसी राह से जा रही थी। उसे देख कर वह बोला,—माई महल बन्द कर आई हो न ?

बुढिया—नहीं, पानी देकर आई हूँ। अभी चूल्हे मे आग नहीं दी है।

"तो बहुत विलम्ब नहीं करना। सब काम जल्दी खतम कर मकान बन्द करके कुंजी मुझे दे देना।"

बुढिया ने धीरे धीरे घर के पिछवाडे की ओर जाकर पूर्व-वर्णित द्वार का ताला खोला। भीतर जाकर अन्दर से जंजीर लगा कर उस ताले को बन्द कर दिया। वहाँ बडा ही अँधेरा था। दीवार को हाथ से टटोल एक ताक से दियासलाई उतार कर बुढिया ने चिराग जलाया। उस कोठरी के एक कोने मेँ ऊपर जाने के लिए जीना था। हाथ मेँ चिराग लेकर बुढिया सीढी पर चढ कर ऊपर गई।

ऊपर एक लम्बा, कम चौड़ा, बरामदा था। उसका किनारा लकड़ी की झिलमिली से घिरा था। दूसरी ओर एक दर्वाजा था, जिसमें बाहर से जंजीर लगी थी। जंजीर खोल कर बुढ़िया भीतर गई। अन्दर की जगह कम लम्बी चौड़ी, पर खुली हुई थी। वह ऊँची दीवारों से घिरी थी। उसमें दो तीन कोठरियों के दर्वाजे थे, जिनमें एक खुला था। भीतर से कुछ रोशनी बाहर आ रही थी। बुढ़िया ने उसी कोठरी में प्रवेश किया।

कोठरी भली भाँति सजी हुई थी। टेबल, कुरसी, चौकी, तसवीर, आइने आदि कितनी ही चीजें उस कोठरी की शोभा बढ़ा रही थीं। एक बहुत बढ़िया हाथीदाँत का पलँग बिछा था तथापि एक दुबली पतली युवती नीचे चटाई पर लेटी थी। टेबल के ऊपर एक बड़ा आइना और अनेक प्रकार के सुगन्धित तेल की शीशियाँ रक्खी थीं। किन्तु इस रमणी की केश-राशि रुच और बिखरी हुई थी। चटाई के ऊपर अपनी बाँई बाँह को तकिया बना कर लीलावती लेटी हुई थी।

बुढ़िया को आते देख कर लीलावती चकित भाव से उठ बैठी। बत्ती तेज कर दी। उस प्रकाश में वह अभागिनी बड़ी ही सुन्दर दीख पड़ी। उम्र उसकी अट्ठारह उन्नीस वर्ष से अधिक न होगी। दोनों आँखें बड़ी और कोमलता से भरी थीं। पर चेहरा अत्यन्त उदास था।

वृद्धा को देख कर लीलावती ने कहा—कहो माई, आज इतनी देर क्यों हुई?

"कल हमारे यहाँ त्योहार है न, इसी से खाने-पीने की वस्तुएँ बना रही थी।"

"त्योहार क्या है ?"

"कल दिवाली है।"

"क्या है दिवाली ?"

"हाँ, बढिया बढिया चीजें बना कर लोग खाते पीते हैं। रात मे सब लोग अपने अपने घरो में बहुत चिराग जलाते हैं। लक्ष्मीजी की और काली माई की पूजा होती है। क्या तुम नहीं जानती ?"

"अरे! कल लक्ष्मीपूजा है ? आज नरकचतुर्दशी है, इसी से इतना अन्धकार है।"

"हाँ बेटी, कल काली पूजा है–दिवाली है। बाबू साहब के यहा पूजा होगी। बकरों का बलिदान होगा। कल वहाँ से प्रसाद आवेगा। तुम लोगी न ?"

"मास ?"

"हाँ, बकरे का गोश्त।"

" राम राम, मैं मछली मास नही खाती। मैं बेवा हूँ।"

"बेवा होने से क्या हुआ ? तुम तो बाभन बनिये की लड़की नहीं हो। हमारे यहाँ के ग्वालो की स्त्रियाँ विधवा होने पर भी मास मछली खाती हैं।"

"हम नहीं खाती हैं। खाने से पाप होता है।"

"तुम्हारे यहाँ का रिवाज बडा खराब है। हमारे यहाँ

ग्वाले की लडकी बेवा हो जाय तो उसको फिर दूसरे के घर बिठला देते हैं । एक बार की कौन कहे, चार चार पाँच पाँच बार बिठलाई जाती हैं । माँ-बाप अपनी खुशी से बेवा लडकी को दूसरे के यहाँ बिठला देते हैं। कैसा अच्छा व्यवहार है। तुम अगर हमारे देश मे होतीं तो तुम्हे भी रँडापे का दु ख न भोगना पडता। तुम्हारी यह कची उम्र, ऐसा खूबसूरत चेहरा! हाय हाय, देख कर कलेजा फटता है। तुम्हे देख कर कितने ही लोग तुम्हें घर बिठलाने के लिए पागल हो उठते।"

लीलावती काँप कर बोली—नहीं नहीं—छि छि, ऐसी बात मत बोलो।

बुढिया चुप हो रही। लीलावती ने कहा—माई, इस दिलदारगज से मेरा देवीपुर कितनी दूर है?

"बहुत दूर। सात आठ कोस।"

"यहाँ के बाबू मुझे और कितने दिन अटका रक्खेंगे? उनसे कहो कि मुझे अब छोड दे।"

बुढिया—अगर छोड देगे तो तुम कहाँ जाओगी?

"क्यों? मेरे सास ससुर का घर है—माई बाप का घर है। कहीं चली जाऊँगी। ईश्वर ने मेरे रहने के लिए बहुत घर दिये हैं।"

"वे लोग क्या तुमको अब अपने घर में रक्खेंगे?"

यह सुन कर लीलावती हताश हो गाल पर हाथ रख कर चुप हो रही। भागने का कोई उपाय न रहने पर भी वह

इसी तरह मनही मन प्रार्थना करते करते वह निद्रा से अभि-भूत हो सो गई ।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

आधी रात का समय था । चारो ओर घोर अन्धकार छाया था । विलकुल सन्नाटा था । लीलावती उसी निद्रित अवस्था मे पडी थी । एकाएक उसके मस्तक मे किसी कठिन पदार्थ का स्पर्श होने से उसकी नींद टूट गई । आँख खे कर देखा तो दिये की रोशनी खूब वढी हुई है । लाल साडी पहिने काले रग की एक स्त्री सामने खड़ी है । उसके हाथ मे त्रिशूल मन्द मन्द हिल रहा है और उसका अगला हिस्सा लोहू से लिप्त है । इस दृश्य को क्षणमात्र देख कर उसने अपनी आँखे वन्द कर ली । डर से उसका सारा शरीर सर्द होगया । वह वास्तव मे जागती है या सपने मे कोई भय-ङ्कर दृश्य देख रही है—इसका कुछ निश्चय नहीं कर सकी ।

कुछ देर वाद मानों किसी ने अस्वाभाविक विकृत कण्ठ से कहा—कुछ डर नहीं ।

यह सुन कर लीलावती ने फिर आँखे खोली । छद्मवेशी रौनकलाल तव धीरे धीरे सिर हिला कर वोला—डरो मत,—मैं मा काली की डाकिनी हूँ । डरो मत ।

तव लीलावती को सोने के पहले की प्रार्थना याद आई उसे स्मरण हुआ, उसने कहा था 'माँ, मेरा उद्धार करो, या अपनी डाकिनी से कहो, आकर मुझे मार डाले ।' अव लीला



से चल कर बहुत दूर निकल आई। यद्यपि मार्ग के परिश्रम से उसके सर्वाङ्ग से पसीना चूने लगा फिर भी उसे कुछ थकावट नहीं मालूम हुई।

इस प्रकार कोई दो घंटे चलकर दोनों सड़क के किनारे एक मन्दिर के पास आ पहुँचे। डाकिनी ने कहा—जानती है यह कामेश्वरनाथ महादेव का मन्दिर है?

लीलावती—शिवनगर के कामेश्वरनाथ?

"हाँ, शिवनगर गाँव यहाँ से नजदीक ही है। अभी अँधेरे में दिखाई नहीं देता। कभी इस मन्दिर में आई थी?"

"हाँ, कई बार इनका दर्शन-पूजन कर गई हूँ। यहाँ से मेरा गाँव दो कोस है।"

डाकिनी ने कहा—ले, अब मैं तेरे साथ नहीं रह सकती। अब रात बहुत नहीं है। सूर्योदय के पहलेही माँ सिंहासन पर बैठेंगी। हम सब डाकिनी योगिनी मिल कर माँ का सिंगार करेंगी। मैं अब जाती हूँ। तू यही सीधी सड़क पकड़ कर अपने घर चली जा। थोड़ी ही दूर पर देवीपुर गाँव मिलेगा। कुछ रात रहते ही तू वहाँ पहुँच जायगी।

तब लीलावती ने धरती में घुटने टेक डाकिनी के पैर छूकर प्रणाम किया और कहा—माँ, अगर वे मुझे अपने घर में न रहने दें तो मैं क्या करूँगी? कहाँ जाऊँगी?

रैनक ने कहा—उन्होंने लोगों से कहा है कि तू बाप के घर गई है। किसी कलङ्क का डर नहीं। फिर भी अगर वे

तुझे ग्रहण न करे तो तू कहना—मेरे स्वामी की सम्पत्ति बाँट कर आधी मुझे दे दो। मैं काशीवास करूँगी।

"अगर वे इतने पर भी न मानें, मुझे घर में न रहने दें तो?"

"नहीं रहने दें तो तू गाँव के जिलेदार के पास जाकर नालिश करना। रौनकलाल जिलेदार बड़ा धर्मात्मा है। वह कालीमाई का प्रधान भक्त है। वह तेरे जेठ को बुलाकर जूते से सीधा कर देगा। अब तू जा।"

लीलावती उसे प्रणाम करके देवीपुर की ओर चली और रौनक वहीं कुछ देर सुस्ताने लगा। उसने मन में कहा—काम तो कुछ बुरा नहीं किया है। अब रात अधिक नहीं है। ढाई बजा होगा। दो घटे मे कमलपुर पहुँचना चाहिए, नहीं तो गाँव के लोग सबेरे मेरा यह डाकिनी-स्वरूप देखकर मूर्च्छित हो जायँगे। इसलिए कुछ रात रहतेही वहाँ पहुँचना चाहिए। कुछ डग बढा कर चलने से अँधेरे अँधेरे ही घर पहुँच जाऊँगा—कह कर वह बडी तेजी से कमलपुर की ओर लौट चला।

तेईसवाँ परिच्छेद

रात बीत गई। सवेरा हुआ। "बहुत खाने पीने" के प्रभाव से गोकुल माली के घर में सबके सब सोये हुए हैं, अभी तक किसी की नींद नहीं टूटी है। सिर्फ रामफलवा उठकर बाग में जा बाँस की लग्गी हाथ में ले सवेरे सवेरे कुछ खाने के लिए मीठे फल ढूँढ रहा है।

धीरे धीरे धूप निकल आई। दिन बहुत चढ़ आया। तब माली के घर में लोगों का एक-आध शब्द बाहर से सुन पड़ने लगा। माली की स्त्री ने उठ कर दो चिलम तम्बाकू भर कर एक स्वामी को—और एक माँ को दी। बुढ़िया ने अपनी चटाई के ऊपर बैठ, दो एक बार जम्हाई लेकर, दोनों हाथों से आँखें मलीं, फिर दो एक बार खाँस कर हुक्का पीने लगी।

माली ने कहा—माई, आज बाबू साहब के घर काली-पूजा है। आज सवेरे ही स्नान करके पानी वानी पीकर मैं वहाँ जाऊँगा।

अमरूद चबाता उछलता-कूदता हुआ रामफलवा आकर बोला—हम भी जायँगे।

माली—तू जायगा। तुझको गोदी में कौन ले जायगा?

एक चक्कर लगा कर रामफलवा बोला—तुम्हारे कन्धे पर चढ़कर चलूँगा।

बुढिया ने कहा—अच्छा है लेजाना। बच्चा है, तमाशा देख आवेगा।

माली ने कहा—तो तुम भी न चलो। रामफलवा को गोदी मे लेजाना होगा।

हम तुम देनो चले चले तो उसकी देख-भाल कौन करेगा? बाबू नाराज होजायँ तो?

"यह बात ठीक है"—कह कर माली चुपचाप हुक्का पीने लगा। आखिर यह बात पक्की हुई कि पहले बुढिया रमफलवा को लेजाकर पूजा देख आवे, फिर दोपहर को उसके लैाट आने पर गोकुल जायगा।

पूजा देखने जायगा, यह जानकर रामफलवा की माँ बेटे को सजाने लगी। उसका अँगरखा खोल डाला। छटाँक भर सरसो का तेल उसके धूल भरे माथे में डाल कर जब वह दोनो हाथो से जोर से मलने लगी तब तो रामफलवा कुछ न बोला। पर जब नहाने की बारी आई तब उसने रो रो कर सेरो आँसू बहा दिये। उसने उम्र भर में सिर्फ दो बार स्नान किया है। आँगन के कोने में एक घडा पानी रक्खा था। माता उसका हाथ पकड, जोर से खींच कर, जब घडे के पास लेगई तब वह चिल्ला चिल्ला कर रोने लगा। आँखों में आँसू भर कर बार बार गिडगिडा कर कहने लगा, 'मैं पूजा देखने नहीं जाऊँगा।' उसने अपना हाथ छुडा कर भागने की बडी चेष्टा की किन्तु उसकी इस छटपटाहट का कोई फल नहीं हुआ। घडे का ठंढा जल लोटे में ढाल ढाल

कर माँ उसके सिर पर डालने लगी । उसे अच्छी तरह स्नान करा धो-पोछ कर माता ने कंघी से उसके बाल सँवारे । फिर आँखों में काजल डालकर हलदी के रङ्ग में रँगी हुई पीली धोती और छींट का कुरता पहना दिया । अब रामफलवा के मुँह मे फिर हँसी दिखाई देने लगी ।

बुढ़िया ने भी मुँह-हाथ धो, कपड़े बदल, बेसन की दो चार बासी फुलौरी खाकर पानी पिया । अब उसने कहा—वहाँ पानी देकर चूल्हा जला आऊँ, फिर पूजा देखने जाऊँगी ।

बुढ़िया अपने दामाद से कुंजी लेकर धीरे धीरे वाटिका-भवन के पीछे की ओर गई । वहाँ जाकर देखा तो दरवाजा खुला पड़ा है । यह देखते ही उसके सिर में चक्कर आ गया । उसके हाथ पैर थर थर काँपने लगे । सोचा, अरे दादा ! यह क्या हुआ ! दरवाजा खुला क्यो है ? लीलावती है या नहीं ?

हाँफती हुई वह बड़े वेग से ऊपर गई । देखा तो कहीं कोई नहीं है ।

हर एक कोठरी मे दो तीन बार खोज कर देखा, कहीं कोई नहीं । "लीलावती"—"लीलावती" कहकर वह बार बार चिल्लाने लगी, पर कहीं से कुछ उत्तर नहीं मिला । तब बुढ़िया ने हताश हो रोते रोते आकर दामाद को यह खबर दी ।

यह सुन कर माली मानो आसमान से गिरा । उसकी आँखें धँस गईं—गला बैठ गया । टूटे स्वर से बोला—चलो मैं भी देखूँ ।

धीरे धीरे दोनो मकान के पीछे पहुँचे । माली ने खडे होकर खुले द्वार की ओर देखा । क्रम क्रम से उसके मुँह का भाव बदलने लगा । उसके दोनो नेत्र लाल होगये । खूब जोर से दाँत पीस कर वह बुढिया का झोटा पकड बोला—हरामजादी, तेरी ही गफलत से यह सर्वनाश हुआ है ।

बुढिया इस आकस्मिक अपमान से आगबबूला होकर बोली—क्यो रे मूँझौंसे, मेरा क्या कसूर है ? पाजी, बदमाश, छोड, मेरी चोटी छोड ।

"तेरा कसूर नहीं है ? जरूर तेरा कसूर है । कल शराब पीकर मस्त हो गई । तू ने ताला बन्द नहीं किया । यह देख, एक कडी में ताला लगा है । द्वार खुला पाकर लीलावती भाग गई है ।"

वृद्धा ने देखा कि ताला एक कडी में लटका हुआ झूल रहा है । वह बोली—कभी नहीं, मैं दोनो कडियो मे ताला बन्द करके गई थी । उस समय तो मैंने शराब हाथ से छूई तक न थी । तुम्हीं शराब पिये बेहोश पडे थे—कुञ्जी कहीं फेंक दी होगी । किसी ने लेकर ताला खोला होगा ।

माली ने चोटी छोड दी । तब दोनो ऊपर गये । लीलावती के शयनगृह में जाकर माली ने देखा कि चटाई पर एक पोस्ट-कार्ड पडा है । उठाकर बोला—यह क्या ? यह चिट्ठी कहाँ से आई ? यह तो डाक से आई हुई जान पडती है ।

बुढिया—मैं नहीं जानती । यह चिट्ठी तो मैंने यहाँ कभी नहीं देखी ।

माली—लीलावती को शायद किसी ने चिट्ठी लिखी थी। इस चिट्ठी के पढ़ाने से पता लगता कि कौन उसे ले गया है।

बुढ़िया—धत नासमझ! लीलावती को चिट्ठी कौन दे जायगा? मालूम होता है, जो उसको लेने आया था वही फेंक गया है।

माली ने पोस्टकार्ड को लेकर बड़े यत्न से अपनी धोती के खूँट में बाँध रक्खा। बोला—बड़ा ही अनर्थ हुआ। इतने दिन से यहाँ नौकरी करके किसी तरह गुजर कर रहा था। अब नौकरी गई। अब क्या बाबू मुझको रक्खेंगे? अभी मार पीट कर निकाल देंगे। इस बुढ़ापे में अब बाल-बच्चों को लेकर कहाँ जाऊँगा?

लम्बी साँस लेकर दोनों कुछ देर तक चुप रहे। फिर बुढ़िया बोली—अगर भाग कर गई है तो अब भी बहुत दूर न गई होगी। जरूर ही कहीं आस पास छिपी होगी। एक बार खोजो तो।

दोनो फिर बाहर आये। ताला बन्द करके माली उदास मुँह से बोला—लो जाता हूँ, खोजकर देखता हूँ। शायद कहीं मिल जाय।

दोपहर ढलने पर माली ने लौट कर कहा—उसका कहीं पता नहीं लगा। अब बाबू को खबर देने जाता हूँ।

बुढ़िया—क्या कहोगे?



"कहूँगा—कोई दुष्ट दूसरी चाबी से ताला खोलकर लीला-वती को भगा ले गया ।"

वृद्धा—कैसी तुम्हारी बुद्धि है ! यह बात कहने से क्या बाबू विश्वास करेंगे ? वे कहेंगे कि जरूर तुम लोग ताला बन्द करना भूल गये ।

"तो क्या कहूँ ?"

"कुछ लाकर ताले को तोड डालो । वह टूटा ताला हाथ में लिये जाना । कहना, कल रात मे कोई ताला तोडकर लीला-वती को भगा ले गया ।"

माली—"यही सलाह ठीक है ।" उसने अपने घर से लोहे के दो काँटे खोज निकाले । उन्हीं से बडी देर तक पीटते रहने पर ताला टूटा । इसके बाद खा पीकर जब पहर दिन बाकी रहा तब वह रोती सूरत से बाबू साहब के दरबार में हाजिर हुआ ।

तब दोपहर की पूजा समाप्त हो गई थी । ब्राह्मण-भोजन भी हो गया था । कङ्गालो को भोजन दिया जा रहा था । नौकर उन्हे परोसकर खिला रहे थे । रौनक एक ओर खडा होकर परोसनेवालों की देख-रेख कर रहा था और कङ्गालो की पत्तल पर जिस चीज की कमी देखता था, वह उन्हें दिलवा रहा था । उसी के पास माली जा खडा हुआ ।

रौनक ने कहा—क्योंजी गोकुल, आज तुम इतनी देर कर क्यों आये ?

गाकुल माली ने धीरे से कहा—क्या कहूँ बाबू, सर्वनाश गया है।

बडे आश्चर्य का भाव दिखाकर रौनक ने कहा—क्यों ा हुआ है, रामफलवा तो अच्छा है?

"हाँ वह तो अच्छा है पर लीलावती भाग गई।"

"अयँ—यह क्या कहते हो— कैसे भाग गई?"

"कल रात को कोई ताला तोडकर उसे निकाल ले गया।"

रौनक—ओफ! बडा अनर्थ हुआ! अब क्या उपाय है? ास ने ऐसा काम किया?

"बाबू क्या कहूँ, यह तो मैं नही जानता। लीलावती के मरे मे यह चिट्ठी पडी मिली है।" यह कहकर माली ने चिट्ठी । रौनक ने उसे उलट पलट कर देख माली को लौटा दिया। ला, चश्मा नहीं है। नहीं पढ सका। किसने यह काम िया, यही सोच रहा हूँ। अच्छा वही आदमी, जिसका ाम हरिदास है—जो मकान की ओर टकटकी लगा कर देख हा था—उसी ने तो नहीं?"

"क्या मालूम। अब मालिक को खबर देनी होगी।"

"हाँ खबर देना तो जरूरी है। अगर तुमसे बाबू पूछें क तुम्हारा किसी के ऊपर सन्देह है या नहीं, तो तुम साफ ाफ कह देना कि हुजूर कल शाम को एक अधेड आदमी ुरता पहिरे, साफा बाँधे, बगल में छतरी दबाये बाग में खडा ाकर एक नजर से मकान की ओर देख रहा था। नाम

पूछने पर हरिदास बताया । उसी पर मुझे सन्देह होता है। जो तुम यह न कहोगे तो तुम्हीं पर वाबू के मन में सन्देह होगा कि माली ने घूस लेकर लीलावती को भगा दिया है ।"

"मैं भगाता तो ताला क्यों तोड़ता ? कुञ्जी तो मेरे ही पास थी ।" यह कहकर माली ने टूटा ताला निकाल कर दिखाया।

माली की बुद्धि देख कर रौनक मन ही मन हँसा। फिर बोला—ठीक कहते हो, अच्छा तो मैं जाकर देखूँ कि वावू कहाँ क्या करते हैं, इसके वाद तुमको लेजाऊँगा। बिना एकान्त के यह बात कही नहीं जायगी। तुम यहीं खड़े रहो।

माली—वावू, गरीब की नैाकरी तो रहेगी ?

"नैाकरी ? ऐसी हालत में नैाकरी रहना मुश्किल है। मैं उनसे कहूँगा–तुम्हारे लिए मैं पूरी कोशिश करूँगा। तुम यहीं हाजिर रहो। मैं वावू को देख आता हूँ।"

कुछ देर बाद रौनक लौट कर बोला—आओ। अच्छा तरह याद रखना—हरिदास, साफा, छतरी। उसका मकान पूछना भूल गये। वह पोस्टकार्ड भी वावू को देना, आओ।

कमरे की बगलवाली एक छोटी कोठरी में वावू बैठे थे। रौनक ने माली को वहाँ तक पहुँचा दिया और आप कमरे के बाहर बरामदे में जा बैठा।

दस मिनट के बाद माली बाहर आया। रौनक ने पूछा—कहो, क्या हुआ ?

"सब बात वावू से कह दी।"

"बाबू तुम पर बहुत खफा तो नहीं हुए ?"

"जी नहीं। कहने लगे—तेरी ही गफलत से यह काम हुआ है। अच्छा अभी जा। फिर देखा जायगा।"

"अच्छा तुम जा कर प्रसाद पाओ। बाबू साहब से कह सुनकर ऐसा बन्दोबस्त कर दूँगा जिसमें तुम्हारी नौकरी बनी रहेगी।"

माली चला गया। तब रौनक़ बाबू साहब के पास जा, सिर झुका कर, खड़ा हुआ। उसे देख बाबू ने कहा—रौनक़, किवाड़ बन्द कर दो।

रौनक़ ने दरवाजा बन्द कर दिया। बाबू साहब के मुँह की ओर ध्यान से देखा तो डर से उनका मुँह सूख गया था। गोपी-कान्त बोले—तुम्हारे कहने के अनुसार मैंने माली के सामने चिन्ता का भाव प्रकट नहीं किया। किन्तु मेरा जी घबरा रहा है। समझ में नहीं आता, क्या करूँ।

रौनक ने मुँह उदास करके कहा—घबराने की तो बात ही है। अगर थाने में जाय तो सगीन मुक़द्दमा खड़ा हो। एकबारगी हीरे का मुक़द्दमा।

"क्या थाने में जायगा ?"

"जी हुजूर—कौन कौन इस मामले के भीतर हैं—कौन उसे भगा ले गया है, यह सब जाने बिना कुछ कहना कठिन है।"

"यह मैं जानता हूँ। हरिदास, और मेरा छोटा भाई।"

"आर्य! आपके भाई? छोटे बाबू? भला ऐसा भी कहीं हो सकता है? सभव नहीं।"

"क्यों नहीं हो सकता! पक्का निश्चय है। लीला के कमरे मे मोतीलाल के नाम का एक कार्ड पडा मिला है और कल शाम को माली ने देखा था कि बाग में हरिदास खडा खडा लीलावती के मकान की ओर टकटकी बाँधे देख रहा था।" यह कह कर बाबू साहब ने रौनक के हाथ में पोस्टकार्ड दिया।

रौनक़लाल ने उसे देख भाल कर फिर बाबू को दे दिया। उसने कहा—क्या इसी मतलब से हरिदास दौड दौड कर छोटे बाबू के पास आता था? अब समझ में आ गया।

बाबू साहब—हाँ जी, यह सही है। इसी से कल मोती भी अपने कपडे, बिछौना और पटी लेकर कहीं चला गया है। किसी से कुछ कहा भी नहीं।

कुछ देर तक चुप रह कर रौनक बोला—भाई होकर भी क्या भाई के हाथ मे हथकडी डलवावेंगे? थाने में जाकर उसकी तरफ से गवाही देंगे?

"रौनक, तुम उसे नहीं जानते। ऐसा नालायक लडका मेरे घर में कोई पैदा नहीं हुआ। वह क्या नहीं कर सकता है? जो न करे वही थोडा है। यदि वह आप थाने में न जायगा तो लीलावती के किसी रिश्तेदार को थाने में दरख्वास्त देने के लिए भेज देगा। अब क्या करना चाहिए?"

रौनक उदास मुँह करके सोचने लगा। फिर बोला—यह

नहीं जान पड़ता कि आज थाने मे दरख्वास्त दी होगी, अगर दी होती तो अब तक तहकीकात करने के लिए पुलिस आ गई होती। और यह भी हो सकता है कि थाने में दारोगा न रहा हो, जमादार ने इजहार लिख लिया होगा। दारोगा के आने पर कार्रवाई शुरू होगी।

"अब क्या उपाय करना होगा?"

रौनक ने सोच विचार कर कहा—अगर दास से उपाय पूछा जाता है तो मेरी क्षुद्र बुद्धि में जो सूझ पड़ा है वह निवेदन करता हूँ। हुजूर को आज रात मे ही यह स्थान छोड़ देना उचित है। कदाचित् कल सबेरे ही दलबल के साथ दारोगा यहाँ आकर तहकीकात करने लगे। आप इज्जतदार रईस ठहरे। अगर वह कोई ऊँच नीच बात कह दे तो उसीमें सब मान-महत्व चला जायगा। भले आदमियों के लिए अपमान मरण से भी बढ कर होता है। इसलिए आज रात में ही आप कहीं चल दें और मुझे कुछ रुपया देते जायँ। मैं कल सबेरे ही थाने में जाकर दारोगा को ठीक कर लूँगा। संसार रुपये के वश में है। पुलिस की तो कोई बात ही नहीं। आप यहाँ यह बात प्रकट कर दें कि आप कलकत्ते जा रहे हैं। स्टेशन में जाकर काशी का एक सेकेण्ड क्लास का टिकट ले लीजिए। वहाँ से हरद्वार या मसूरी का टिकट ले लीजिएगा, किन्तु रास्ते में कहीं एक जगह उतर जाइएगा, स्टेशन में टिकट न दीजिएगा। कहिएगा, मैं यहाँ कुछ देर आराम करके दूसरी

ट्रेन से जाऊँगा। इसके बाद दूसरी ट्रेन से आप फिर चल दीजिएगा। मैं यहाँ सब ठीक ठाक कर लूँगा। जब आग बुझ जायगी तब आप आजाइएगा। यहाँ जो कुछ करना होगा वह सब मैं कर लूँगा। किसी को मालुम न होने दूँगा।

बाबू ने कहा—देखो एक बात है। वह स्त्री तो यही जानती है कि दिलदारगज के बडे बाबू ने उसे बागीचेवाले मकान में कैद कर रक्खा था।

रौनक—जी हाँ, किन्तु हरिदास और छोटे बाबू—

"ठीक कहते हो। यह बात मेरे ध्यान मे नहीं आई थी। इस समय मेरा होश-हवास सब हवा खाने चला गया है। तुम जो कहोगे वही करूँगा। आज रात को ही चल दूँगा। अभी तुमको कितना रुपया चाहिए?"

रौनक—सगीन मुकद्दमा है। बडा आदमी मुद्दाअलेह है। पुलिस एकबारगी पैर फैला बैठेगी। पाँच छ सौ रुपया देते जाइए।

उस कोठरी में लोहे का एक सन्दूक था। बाबू झट उठ कर कुञ्जी से सन्दूक खोल नोट निकाल लाये। दस दस रुपये के सौ नोट गिन कर रौनक के हाथ में दे करके बोले—यह हजार रुपया लो। जितना दरकार हो, खर्च करना। मुझे इस बार बचाओ। तुम मेरे नौकर नहीं—सहोदर भाई हो।

"मैं हुजूर का दासानुदास हूँ। हुजूर का नमक खाता हूँ। हुजूर के लिए जान हाजिर है। प्राण रहते नमकहरामी

नहीं करूँगा ।" यह कह कर रौनक ने बाबू के दोनों पैर पकड़ लिये ।

सूर्यास्त होने में विलम्ब न था । बाबू ने रौनक का हाथ पकड़ कोठरी से बाहर लाकर कहा—मैं जहाँ रहूँगा वहाँ से तुमको चिट्ठी लिखूँगा । अगर और भी रुपये-पैसे की जरूरत हो तो मुझे लिखना, मैं बन्दोबस्त कर दूँगा । अगर मैं इस दफ़े बच गया तो तुम्हारा यह उपकार कभी नहीं भूलूँगा । इसका पुरस्कार भी तुम्हें मिलेगा ।

रौनक—हुजूर का स्नेहही मेरे लिए पुरस्कार है । मैं अन्य पुरस्कार को तुच्छ समझता हूँ ।

रौनकलाल को विदा करके बाबू अपनी यात्रा की तैयारी करने लगे ।

चौबीसवाँ परिच्छेद

आजमगढ से पाँच छः कोस दूर मदनपुर नाम का एक गाँव है। हमार पूर्व-परिचित डिपुटी मैजिस्ट्रेटी चाहने वाले नारायणप्रसाद के पिता बाबू बलदेवनारायण इस गाँव के जमींदार हैं। बलदेव बाबू के एक और भाई थे। ज्येष्ठ कृष्णदेव बाबू जमींदारी देखते थे, और आप डिपुटी मैजिस्ट्रेट का काम करते थे। एक वर्ष हुआ, कृष्णदेवजी संसार से चल बसे। उनके छोटे छोटे दो बालक हैं। अब जमींदारी देखने वाला कोई नहीं रहा। इस कारण बाध्य होकर बलदेव बाबू, तीस वर्ष की नौकरी पूर्ण होने के पहले ही, डाक्टर का सर्टिफिकेट दाखिल कर पेन्शन ले घर आ गये हैं।

बलदेव बाबू के दो पुत्र और एक कन्या है। ज्येष्ठ पुत्र का नाम नारायणप्रसाद और छोटे का वीरेन्द्र है। इसकी उम्र ग्यारह वर्ष की है। इनकी अपेक्षा इसकी बहन कनकलता की उम्र दो वर्ष अधिक है। इसी के ब्याह के लिए नारायणप्रसाद के पिता कुछ चिन्तित हैं। कनकलता को इस नाम से कोई पुकारता नहीं। उसे सब कोई 'सुधा' कहते थे।

बलदेव बाबू युवावस्था में आर्यसमाज में जाते आते थे और एक प्रकार से यह भी स्थिर हो गया था कि वे पक्के समाजी हो जायँगे। किन्तु किसी किसी ने उन्हें भय दिखलाया—'पैतृक

धर्म परित्याग करने से कहीं पैतृक सम्पत्ति से हाथ न धोना पड़े।' इसी कारण से वे प्रकट रूप से आर्यसमाज में प्रविष्ट नहीं हो सके किन्तु उक्त सम्प्रदाय के साथ उनकी पूर्ण सहानुभूति थी। पादरिन मेम इनके घर की स्त्रियों को लिखने-पढ़ने और शिल्प-कर्म्म की शिक्षा देने लगी। वर्षों तक इसी प्रकार चलते चलते वे धीरे धीरे वैष्णव धर्म की ओर झुके। अब उनकी जुल्फें छट गई हैं, खासी चुटिया का राज है। मछली माँस खाना भी उन्होंने छोड़ दिया है। नित्य श्रीमद्भगवद्गीता और तुलसी-कृत रामायण का पाठ करते हैं। लड़की को पाठशाला में नहीं भेजते। वह घर मे ही अपनी मा से लिखना-पढ़ना और भाई से हार्मोनियम बजाना सीखती है। बलदेव बाबू इसमें कोई आपत्ति नहीं करते।

नारायण बाबू की स्त्री का नाम सुशीला है। सुशीला के माँ बाप भी नये खयाल के मनुष्य थे। हिन्दू गृहस्थ होकर भी उन्होंने कुछ अधिक अवस्था होने तक लड़की को क्वारी रक्खा था और उसे पाठशाला न भेज कर घरही में प्रारम्भिक शिक्षा दी थी। सुशीला विशेष सुन्दरी न होने पर भी बड़ी हँसमुख थी। उसकी उम्र सत्रह वर्ष की होगी।

नारायणप्रसाद जिस दिन कमलपुर से लौट कर आया उस दिन दोपहर के बाद उसकी स्त्री सुशीला ने पूछा—कहिये, आपके मित्र का क्या समाचार है?

"अच्छा समाचार है।"

"कुछ ब्याह की बातचीत हुई ?"

"कुछ नहीं।"

"यह क्या ! तब आप गये थे क्या करने ?"

"सिर्फ उसका मन टटोलने के लिए।"

"कैसा देखा ?"

"ब्याह करने का लक्षण तो देखने मे नहीं आया।"

"क्या कहते हो, लक्षण नहीं है ? क्या जन्म भर वे क्वारे ही रहेगे ?"

"मालूम तो ऐसा ही होता है। वह कहता है, ससार-बन्धन मे रहने से अपनी आध्यात्मिक उन्नति होने की सभावना नहीं है। सन्यासी होना पड़ेगा।"

यह सुन कर सुशीला अपने मन मे कहने लगी—ससार-बन्धन मे रहने से अपनी आध्यात्मिक उन्नति होने की सभावना नहीं—सन्यासी होना पड़ेगा। (प्रकाश्य) अच्छा, आध्यात्मिक उन्नति किसे कहते हैं ?

नारायणप्रसाद ने हँस कर कहा—मैं क्या तुम्हारा 'कोश' हूँ ? जाकर 'कोश' में देख न लो ?

सुशीला बोली—क्या आप समझते हैं, मैं आध्यात्मिक शब्द का अर्थ नहीं जानती ? महाशय, यह तो मैं जानती हूँ। मैं सिर्फ़ जानना चाहती हूँ—'आध्यात्मिक उन्नति' क्या विषय है ? जैसे किसी की शारीरिक उन्नति कहने से समझा जाता है कि उसके शरीर में ख़ूब जोर है, वह ख़ूब कुश्ती लड

सकता है इत्यादि, मानसिक उन्नति कहने से समझा जाता है कि उसकी बुद्धि बड़ी तेज है, वह बड़े बड़े कठिन सवालों को योंही हल कर सकता है, वह कठिन से कठिन विषय को पढ कर सहज ही समझ सकता है,—अच्छी अच्छी पुस्तकें लिख सकता है, नैतिक उन्नति कहने से जैसे जाना जाता है कि वह सदा सत्य बोलता है, किसी का अनिष्ट नहीं करता है, कोई बुरा काम नहीं करता, और पाप-वासना को मन में जगह नहीं देता—इसी तरह मुझे बता दीजिए कि आध्यात्मिक उन्नति कहने से क्या समझा जाता है।

यह सुन कर नारायणप्रसाद कुछ चिन्तित हो पड़े, बोले—यह तुम नहीं जानती? मानलो, जैसे पूर्व काल के ऋषि-मुनियों ने अपनी उन्नति की थी।

सुशीला कुछ व्यङ्ग की हँसी हँस कर बोली—नारद मुनि वीणा बजा कर आकाश मार्ग में उड़ते फिरते थे। क्या मोती बाबू उसी तरह हार्मोनियम बजाते बजाते उड़ना चाहते हैं?

नारायण बाबू हँस कर बोले—नारद मुनि सिर्फ उड़ सकते थे, यही नहीं—वे भगवान् के पास तक पहुँच जाते थे। उनके सदृश भगवद्भक्त बहुत कम पाओगी।

सुशीला—तो मोती बाबू के ऐसा भक्त पाना भी वैसा ही कठिन होगा। क्या विवाह करने से ईश्वर की भक्ति भली भाँति नहीं की जा सकती?

"हाँ, उनका यही मत है। सब कुछ छोड़ छाड़ कर संसार

के बाहर न जा बैठें तो एकाग्रमन से ईश्वर की उपासना नहीं हो सकती ।"

सुशीला मुस्कुराने लगी । वह बोली—यह कैसे जाना ?

"कैसे जाना ?"

"यह तो पुस्तक पढ़े ही बिना समालोचना हुई ।"

नारायण बाबू ने विस्मित होकर स्त्री के मुँह की ओर देखा । वे बोले—तुम्हारी बात समझ में नहीं आई ।

सुशीला धीरे धीरे कहने लगी—ईश्वर की भक्ति करने का अर्थ दिन भर मन्दिर में बैठे बैठे घटी बजा कर पूजा करना और हलुआ-पूड़ी, मिठाई आदि भोग लगा कर आनन्द से माल छकना नहीं है ।

नारायण बाबू ने स्वीकार किया—यह तो वास्तविक भक्ति नहीं है ।

सुशीला बोली—वे स्नेह करके, दया करके हम लोगों का जो कल्याण करते हैं—आशीर्वाद-स्वरूप उनसे हम लोग नित्य जो सुख की सामग्री पा रहे हैं—इन सब के लिए उनके प्रति कृतज्ञ होना, और उनके सभी काम शुभमय हैं यह मन ही मन जानना—इसी का नाम भक्ति है ।

नारायण बाबू—मैं भी यही समझता हूँ ।

"तो देखिए, अगर आप विवाह न करें तो ईश्वर क्या इसे भक्ति समझ प्रसन्न होंगे ? अगर ब्याह न करना ही ईश्वर की भक्ति का मुख्य साधन होता तो पूर्वकाल के कोई भी ऋषि

मुनि ब्याह नहीं करते। मान लीजिए, कृपालु ईश्वर आपके ऊपर दया करके स्त्री का प्रेम, लड़के-लड़की का स्नेह-सुख—ये सब सुन्दर उपहार हाथ में ले आ खड़े हुए हैं, और यदि आप उन सब का अनादर कर विरक्त हो जंगल में चले जाना चाहें, और वहाँ रह कर उनकी भक्ति करें तो पुस्तक पढ़े बिना समालोचना करना और रसोई चखे बिना ही रसोई करने वाली की प्रशंसा करना हुआ या नहीं?"

स्त्री के मुँह से ये बातें सुन कर नारायणप्रसाद की आँखें सहानुभूति के भाव से भर गईं। वह बड़ी प्रसन्नता से सुशीला की ओर देख कर बोला—तुमने बड़ा ही सुन्दर दृष्टान्त दिया है। मैंने इतना पढ़ा लिखा है, इन सब विषयों का कुछ मनन भी किया है किन्तु ऐसी सरल युक्ति कभी मेरे मस्तिष्क में न आई थी।

कुछ देर के लिए अपनी गम्भीरता छोड़ कर सुशीला चपल हास्य के साथ बोली—आवेगी कैसे, पुरुष के दिमाग हो तब न?

नारायणप्रसाद ने मुस्कुरा कर कहा—यही सही। मैं जब मोती के साथ तर्क कर रहा था तब यह दृष्टान्त ज्ञात होता तो एक ही मिनट में भैया को चुप कर देता। अच्छा, वह आ ही रहा है—फिर तर्क होगा।

सुशीला—क्या मोती बाबू यहाँ आ रहे हैं?

"हाँ।"

"कब, कब आवेंगे?"

"तीन चार दिन के भीतर ही।"

दो एक मिनट तक सुशीला चुपचाप कुछ सोचने लगी। धीरे धीरे उसके होठों पर मुस्कुराहट झलक उठी। फिर वह बोली—अच्छा अच्छा, आने दो।

नारायणप्रसाद अपनी स्त्री के स्वभाव से भली भाँति परिचित था। वह बोला—क्या, कुछ कहो भी? तुम्हारा मतलब क्या है?

"मतलब है। अभी नहीं कहूँगी।"

"नहीं, कहना होगा।"

"अभी नहीं। ओफ! इतनी जल्दी क्या है—छोड़ो, आँचल छोड़ दो। मैं एक किताब खोजने जाती हूँ।"

"कौन किताब?"

"Lamb's Tales from Shakespeare."

"शेक्सपीअर के ऊपर एकाएक इतनी भक्ति कैसे उमड़ पड़ी?"

"एक किस्सा पढ़ना चाहती हूँ।"

"कौन किस्सा?"

"नहीं बताऊँगी।"

"तो मैं नहीं जाने दूँगा।"

"अच्छा, बतलाती हूँ। "Much Ado about Nothing" कह कर सुशीला बड़ी फुर्ती से बाहर चली गई।

पचीसवाँ परिच्छेद

अपराह्न का समय है। बलदेव बाबू कमरे मे आराम-कुरसी पर लेटे एक अँगरेजी पुस्तक पढ रहे थे। आँखो में सुनहरा चश्मा लगा था। वहाँ और कोई नहीं था।

बलदेव बाबू की उम्र पचास के ऊपर थी। रङ्ग गोरा था। युवावस्था में ये सुन्दर पुरुषों में गिने जाते थे। अब शरीर कुछ मोटा हो गया है। किन्तु हैं बलिष्ठ। सिर के बाल कुछ विरले हो गये हैं जिनमें अधिकाश पके हैं। आँखें बडी बडी और प्रफुल्ल हैं। हजामत कराये हुए मुख-मण्डल से सहृदयता का भाव प्रस्फुटित हो रहा है। एक पतली सादी फ़्लालेन की कमीज पहने हैं। बगल में तम्बाकू भरा हुआ हुक्का रक्खा है। चिलम से थोडा थोडा धुआँ निकल रहा है किन्तु वृद्ध का उस ओर कुछ ख़याल नहीं है। पीने-वाले के अनादर से तम्बाकू आपही आप जल रही है। बलदेव बाबू जब कुछ पढने बैठते हैं तब उनकी बगल में तम्बाकू भरा हुआ फर्शी हुक्का बराबर मौजूद रहता है। बीच बीच में दो एक बार पी लेते हैं। जब पीकर देखते हैं कि तम्बाकू जल गई तब चिलम बदलने का हुक्म देते हैं। खुशबूदार तम्बाकू को इस तरह मुफ़्त में जलते देख नौकरों को बडा दुःख होता है।

कमरे के सामने खूब लम्बा चौडा मैदान है। बरामदे के

नीचे गुलाब के पेड कुछ जगह रोके हुए हैं । वहाँ लाल, पीले, और उजले रङ्ग के गुलाब के फूल खिले हुए शोभा दे रहे हैं। चार बजने पर बाहर पालकी गाडी के आने की आहट सुन पडी। क्रमश गाडी कमरे के सामने आ पहुँची । बलदेव बाबू ने बाहर की ओर झुक कर देखा कि एक अपरिचित युवा गाडी से उतर रहा है । कमरे के दूसरे भाग से नारायणप्रसाद चट्टी जूता पहने बाहर आगया । मोतीलाल का स्वागत करके उसने गाडी से बिछौना और चमडे का बेग उतरवा नौकरों के जिम्मे किया । फिर मोतीलाल को साथ ले पिता के पास आया । कहा—"बाबूजी, यही मेरे मित्र मोतीलाल हैं ।" इसके साथ ही मोतीलाल ने खूब सिर नवा कर बलदेव बाबू को प्रणाम किया ।

"आओ, बाबू आओ, अच्छे हो ?" कह कर बलदेव बाबू खडे होगये । चश्मा खोल कर जेब में रक्खा और जहाँ पढते थे वहाँ एक चिह्न रख कर छोटी टेबल पर पुस्तक रख दी ।

"आपकी कृपा से अच्छा हूँ । आप अच्छे हैं ?" कह कर मोतीलाल सिर झुका कर खडा हो रहा ।

"हाँ, सब लोग अच्छे हैं, आओ बैठो"—कह कर वे कुरसियों से घिरी हुई टेबल की ओर अग्रसर हुए। उनके बैठने पर मोती और नारायण भी बैठे । बलदेव बाबू स्नेह-भरी दृष्टि से मोतीलाल की ओर देख कर बोले—घर से कब चले ?

"सप्तमी को । दो दिन आजमगढ में ठहर गया था ।"

नारायण ने कहा—आजमगढ की वैद्युतिक महासभा में मोतीलाल का निमन्त्रण था ।

बलदेव बाबू ने कहा—हाँ, हाँ, वैद्युतिक महासभा की ओर से मुझे भी निमन्त्रण था । सभा का नाम सुन कर कुछ अचम्भे में आ गया था । कैसी सभा है, उसका कुछ हाल कहो तो मालूम हो ।

मोतीलाल ने मुस्कुरा कर कहा—उस सभा के सदस्यों का मत एक विचित्र ही प्रकार का है । वे लोग कहते हैं, आध्यात्मिक संसार की एकमात्र शक्ति विजली ही है ।

वृद्ध विस्मित होकर बोले—विद्युत ? विद्युत ही आध्यात्मिक जगत् की एकमात्र शक्ति है ?

"जी हां । वे यह भी कहते हैं कि मनुष्य की आत्मा और कुछ नहीं—विद्युत् का कुछ अंशमात्र है । पूजा, होम, जप, तप, करने का एकमात्र उद्देश्य इस विद्युत् के परिमाण का बढाना है ।"

यह सुन कर बलदेव बाबू हँसने लगे । बोले—उन लोगों के दिमाग में कुछ हो तो नहीं गया है ? किन लोगों ने यह सभा स्थापित की है ?

मोतीलाल—शहर के निकम्मे नवयुवकों ने ।

"अच्छा ! मैंने समझा था, किसी पढे लिखे आदमी ने स्थापित की होगी । लडकों के सिवा ऐसे कुतूहल की सभा और कौन करेगा ?"

नारायण ने कहा—क्यो बाबूजी, कोई कोई वयस्क लोग भी तो ऐसे मत का प्रचार करते हैं । हिन्दू-धर्म के अधिकाश क्रिया-कर्मों के विषय में वैद्युतिक व्याख्यान दिया करते हैं ।

मोतीलाल—इस युग में धर्म के साथ जड-विज्ञान का घोर युद्ध चल रहा है । इसी से कोई कोई धर्म-प्रचारक कभी कभी विज्ञान के साथ सन्धिस्थापन की चेष्टा करते हैं ।

बलदेव बाबू ने कहा—यह ठीक नहीं । धर्म के साथ जड-विज्ञान का कोई विरोध नहीं और विरोध की सभावना भी नहीं । मैं प्रकृत सत्य धर्म की बात कहता हूँ । डग्मा (सिद्धान्त) की बात नहीं कहता ।

नारायण ने कहा—किन्तु सभी प्रचलित धर्म तो डग्मा (तत्ववाक्यो) से भरे हैं । किरिस्तानी धर्म–इसलामी धर्म–हिन्दूधर्म—

बलदेव—हिन्दूधर्म सब धर्मों की अपेक्षा इस विषय में निष्कण्टक है । जब पीथागोरस और कोपर्निकस ने प्रचार किया था कि सूर्य स्थिर है पृथिवी ही उसके चारो ओर घूमती है तब ईसाइयो में भारी आन्दोलन उठा था । पादरियो ने कहा था यह 'entirely opposed to holy writ,'—बाईबिल के सर्वथा विरुद्ध है । पोप पञ्चम पाल ने हुक्म दिया था, 'In order that this opinion may not further spread to the damage of Catholic Truth'—यह मत पीछे फैलकर सार्वजनीन सत्य को नष्ट करेगा इसीसे इस सम्बन्ध

के सब ग्रन्थ Suspended, forbidden and condemned हुए। किन्तु हिन्दू ज्योतिषियों ने जब यह सत्य आविष्कार किया था तब हिन्दू धर्म आर्तनाद नहीं कर उठा।

नारायण—आप उच्चकोटि के हिन्दू-धर्म की बात कहते हैं। किन्तु प्रचलित हिन्दूधर्म—क्रिया-कर्म्म-मूलक जो हिन्दूधर्म है वह—क्या सब जगह विज्ञान-सम्मत है? मान लीजिए जैसे मूर्ति-पूजा।

वृद्ध कुछ देर तक चुप रहकर बोले—मनुष्य के मन में जो एक भक्ति भाव है उसे चरितार्थ करने के लिए यदि वह मूर्ति बनाकर ही ईश्वर की पूजा करे तो इसमें हानि क्या है?

नारायण—मूर्ति में ईश्वर हैं या नहीं, यह तो बहुत दूर की बात है। विज्ञान आज तक इसीका उत्तर नहीं दे सका है कि ईश्वर है भी या नहीं। इसलिए यह बात कैसे मान लूँ कि विज्ञान के साथ धर्म का विरोध नहीं है?

बलदेव बाबू ने हँस कर कहा—अहा! ईश्वर नहीं है, यह बात तो विज्ञान नहीं कहता। विज्ञान सिर्फ यही कहता है—'मैं नहीं जानता'। तुम रामायण, महाभारत, पुराण खोल कर देखो—सभी जगह लिखा है, वे अचिन्त्य हैं—बड़े बड़े ऋषि मुनि भी उन्हें ध्यान में नहीं लख पाते। इसी से तो सिद्ध होता है स्पेन्सर का वह Unknowable—अज्ञेय। ईश्वर है या नहीं, इस विषय पर तर्क करना बिलकुल निष्फल है। मनुष्य के मन में ईश्वर के लिए जो एक इच्छा है, यही असल बात

हुई। इस विषय में धर्म और विज्ञान दोनों ही का एकमत है। इसी इच्छा की पूर्ति के लिए कोई गिर्जे में जाकर उपासना करता है, और कोई मसजिद में जाकर नमाज पढता है तथा कोई आर्यसमाज मे जाता है, और हिन्दू मिट्टी या पत्थर की मूर्ति बनाकर पूजता है। क्या किरिस्तान, क्या मुसलमान, क्या आर्य, कोई भी ऐसी बात कह सकता है कि उनके मन में जो ईश्वर की धारणा हुई है वही ईश्वर का प्रकृत स्वरूप है? कोई भी बुद्धिमान् ऐसी बात न बोलेगा। फिर जो भक्त हैं वे—आर्य हों चाहे किरिस्तान हो या मुसलमान—कहेंगे कि पहाड के साथ बालू के कण का जो परिमाण-भेद है, ईश्वर के स्वरूप के साथ मेरी क्षुद्र बुद्धि की इस धारणा का उसकी अपेक्षा भी अधिक भेद है। क्या हिन्दू यह नहीं जानते कि मैं जिसकी पूजा करता हूँ, यह मिट्टी की मूर्तिमात्र है? इस बात को वे अच्छी तरह जानते हैं। असल देवता कहाँ मिलेगा? इधर भक्ति को भी किसी तरह चरितार्थ करना चाहिए। इसलिए वे उस मूर्ति को ही देवता मान कर अपने मनोरथ को पूरा करते हैं। ये जो छोटी छोटी बालिकायें मिट्टी का घर बना कर खेलती हैं, धूल-मिट्टी का दाल-भात बनाती हैं, कङ्कड-पत्थर की तरकारी बनाती हैं और पुतले पुतलियो को खिलाती हैं—वे क्या यह नहीं जानतीं कि यह घर नहीं है, यह भात भी नहीं है और ये बच्चे भी नहीं हैं? जानती हैं, खूब जानती हैं। तो वैसा क्यो करती हैं? कोई कोई कहते हैं कि यह

केवल देखादेखी की प्रवृत्ति है। माँ-बाप को जो करते देखती हैं वे उसीका अनुकरण करती हैं। पर यह बात नहीं है। बीज या गुठली के भीतर जैसे पेड रहता है वैसेही बालिका के भीतर एक माता छिपी रहती है। उसके मन के भीतर घर-द्वार बनाने और सन्तान पालने की एक इच्छा है। इस उम्र में वे घर कहाँ पावेंगी? सन्तान कहाँ पावेगी? इसीलिए वे खेलने का घर बना गुड़िया को बच्चा मानकर अपनी इच्छा पूरी करती हैं।

मोतीलाल ने कहा—पतिव्रता स्त्री जैसे विदेश-स्थित स्वामी का चित्र देखकर धैर्य धारण करती है, यह भी कुछ कुछ ऐसाही हुआ।

नारायण—ऐसा ही कैसे हुआ? असल के साथ नकल का सादृश्य कैसे हो सकता है? चित्र तो मनुष्य का स्मरण दिलाता है किन्तु मूर्ति के साथ देवता की समता कहाँ है? देवता की तुलना में मूर्ति कुछ नहीं के बराबर है। मूर्ति को देवता मान लेना अपमान करना हुआ या नहीं? इससे क्या देवता प्रसन्न हो सकते हैं?

बलदेव बाबू बोले—अच्छा, मैं एक उदाहरण देकर इस बात का उत्तर देता हूँ। मानलो, एक आदमी विदेश में नौकरी करने गया। वह कई साल तक घर नहीं आया। जब वह विदेश जाने लगा था तब उसके लड़के की उम्र चार पाँच वर्ष की थी। वह लडका क्रम क्रम से बडा हुआ। उसके मन में सदा इस बात का दु:ख बना रहता था, 'सभी लडके अपने अपने बाप के

पास हैं, केवल मैं ही अपने बाप के पास नहीं हूँ।' वह बालक से युवा हुआ तो भी उसने अपने बाप को नहीं देखा। उसके सभी साथी अपने अपने बाप की यत्न-पूर्वक सेवा करते हैं—यह देख कर उसके मन मे दुःख होने लगा कि मैं ही एक ऐसा भाग्यहीन हूँ जो अपने पिता की सेवा से वञ्चित हूँ। वह साधारण चित्र बनाना जानता था। उसे बाप का एक चित्र बनाने की इच्छा हुई। उसने उसी छोटी सी उम्र मे अपने बाप को देखा था—कुछ कुछ परछाहीं की तरह याद था। उस स्मरण के अनुसार उसने अपनी सामान्य चित्र-विद्या की सहायता से बाप का एक चित्र बनाया। किन्तु वास्तव मे वह चित्र बाप के स्वरूप से तनिक भी नहीं मिला। वह उसी चित्र को सामने रख कर प्रणाम करता था और पूजा करता था। इस तरह करते करते कुछ [illegible] एक दिन वह बैठ कर चित्र की पूजा कर रहा था कि सहसा उसके बाप ने आकर यह व्यापार देखा। तो क्या वह बाप लड़के को जूते मार कर कहेगा—पाजी, बदमाश, इस तरह चित्र बनाकर क्यों मेरा अपमान कर रहा है, या आनन्द से उसका हृदय उछल उठेगा—और लड़के को प्रेम पूर्वक छाती से लगावेगा?

यह उदाहरण सुनकर नारायण और मोतीलाल दोनों निरुत्तर हो गये। उदाहरण की मधुरता ने मोती के मन को मोहित कर लिया।

दोनो युवकों को चुप देख कर वृद्ध बलदेव बोले—नारा-

यण! ये बाबू थक गये होंगे, इनको ले जाओ। जाओ बाबू, हाथ-मुँह धाओ। हवेली के भीतर मेरे श्रीराधारमणजी हैं, उनको प्रणाम करके कुछ जलपान करो।

नारायण मोतीलाल को ले गया। जाते जाते मोती ने कहा—मूर्त्ति-पूजा के पक्षपोषण में अनेक युक्तियाँ सुनी हैं, किन्तु इन्होंने आज कथा के व्याज से जिस युक्ति का हवाला दिया है वह बड़ी ही हृदयाकर्षक है।

नारायण—बाबूजी इतने दृष्टान्त जानते हैं जिनकी संख्या नहीं। हम लोगों ने उन्हें दृष्टान्तार्णव की उपाधि दी है। परन्तु उनके मुँह पर यह बात नहीं कहता हूँ।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

कमरे के पीछे मकान का बाहरी हिस्सा था। उसी के भीतर एक सजा हुआ कमरा मोतीलाल के लिए निर्दिष्ट हुआ। उस कमरे के समीप ही नहाने और मुँह-हाथ धोने की कोठरी थी। नारायणप्रसाद मोतीलाल को उस कमरे में ले गया। सब कुछ दिखा-सुना कर वह थोडी देर के लिए वहाँ से हट आया।

कुछ देर बाद नारायण ने फिर लौट कर देखा कि मोतीलाल ने हाथ-मुँह धोकर कपडे बदल लिये हैं। आलमारी से एक पुस्तक निकाल कर वह खिडकी के पास कुरसी पर बैठा बैठा पढ रहा है।

नारायण—क्या पढ रहे हो?

"हक्सले की प्रबन्धावली।"

"मत पढो, मत पढो। नास्तिक हो जाओगे।"

मोती ने पोथी रख हँस कर कहा—मेरी आस्तिकता ऐसी चणस्थायी नहीं है।

नारायण—अन्दर चलो, भगवान् को प्रणाम करना, माँजी से भेट करना।

मोती उठकर नारायण के पीछे पीछे अन्दर गया। आँगन में एक सात वर्ष का लडका पपीता खा रहा था। दासी और

दास अपने अपने काम मे लग गये। नारायणप्रसाद ने उस लड़के से पूछा—माँ कहाँ हैं?

आगन्तुक की ओर सन्दिग्ध भाव से देख कर बालक बोला—कोठे पर।

तब नारायणप्रसाद मोती को लेकर ठाकुरजी वाले कमरे में गया। सिंहासन पर प्रस्तरनिर्मित श्रीराधारमणजी वंशी हाथ में लिये खड़े हैं। बगल में श्रीराधाजी खड़ी हैं। मोतीलाल ने मूर्त्ति के सामने जा धरती में घुटने टेक सिर नवा कर प्रणाम किया।

उसके बगल वाले दूसरे कमरे में मोती को बिठाकर नारायण माँ को बुलाने गया। मोती ने देखा कि कमरे में अँगरेजी चाल का सामान पड़ा है। बीच में एक संगमर्मर की गोल टेबल है। उसके चारों ओर कुरसियाँ है। दीवार से सटी हुई, चारों ओर, चार आराम-कुरसियाँ हैं। टेबल के ऊपर एक बड़ा सा पंखा भी कड़ी से लगा हुआ लटक रहा है। मोती एक आराम-कुरसी पर बैठ कर उनके आने की राह देखने लगा।

थोड़ी ही देर में नारायण, माँ को साथ ले, वहाँ आया। मोती ने विस्मित होकर देखा कि इसका वेश-विन्यास साधारण हिन्दू गृहस्थ के घर की स्त्री की तरह नहीं है। ब्राह्म-समाजी या सुधारक की स्त्री की भाँति है। पैरों में सिर्फ जूता और मोजे नहीं हैं।

नारायण ने कहा—माँ, यह मेरे कालेज के सहपाठी मित्र मोती बाबू हैं ।

मोतीलाल ने नारायण की माँ को प्रणाम किया ।

उसकी माँ कमला ने कहा—चिरंजीव रहो बेटा, राज-राजेश्वर हो ।

नारायण—माँ, यह होने की तो सभावना नहीं। मोती तो सन्यासी होगा ।

कमला—यह क्या कहते हो। सन्यासी क्यों होगा ? यह क्या संन्यासी होने की उम्र है ?

नारायण—हमारा मोती "नवीन सन्यासी" होगा ।

इसी समय एक तेरह चौदह वर्ष की बालिका कमला के पास आ खडी हुई ।

मोती ने देखा कि बालिका का पहिनावा भी माँ की ही भाँति नये फैशन का है । उसका मुँह बडा ही सुश्रीक और रङ्ग भी सुन्दर है । सिर के बाल खुले हुए पीठ पर पडे हैं, जैसे इस उम्र मे अँगरेजों की लड़कियो के रहते हैं । माथे में हिन्दू-जाति का चिह्न स्वरूप एक बिन्दी है । पैरो में जूता-मोजा नहीं है ।

नारायण ने उससे कहा—इनको पहचानती है ?

बालिका ने सिर हिला कर सूचित किया—नहीं ।

नारायण—मेरे मित्र मोती बाबू हैं । हम दोनो एक साथ प्रयाग में पढते थे ।

यह सुन कर लड़की ने हाथ जोड़ सिर नवा कर मोतीलाल को नमस्कार किया। मोती की ओर देख कर नारायण बोला—यह मेरी छोटी बहन मुधा है।

लड़की ने एक बार माँ की ओर और एक बार भाई की ओर देख कर कहा—जाओ भैया, मेरा नाम मत बिगाड़ो।

"क्यों, तेरा नाम मुधा नहीं है ?"

"नहीं।"

"तो क्या सुधा है ?"

बालिका ने खूब जोर से सिर हिला कर कहा—नहीं।

"तो क्या सुधा ?"

बालिका दोनों भौंहें तान कर बोली—ऊँह ! देखो न माँ।

कमला ने कन्या के सिर के बालों को सुरझाते सुरझाते कहा—"हाँ बेटा, यह सच है। मुधा कहने से अगर यह चिढ़ती है तो उसे क्यों मुधा कहते हो ? जब छोटी थी तब जो तुम्हारे जी में आता था, कहते थे। इससे क्या बराबर यही कहते रहोगे ?" यह कह कर और बेटी को लेकर कमला पास ही एक आरामकुरसी पर बैठ गई। मोती और नारायण टेबल के पास की कुरसियों पर बैठ गये।

नारायण ने कहा—क्या वह अब भी बच्ची नहीं है ? बूढ़ी हो गई ? आँखों से धुँधला सूझता हो तो चश्मा मँगा दूँ ?

माँ का एक हाथ अपने हाथों में लेकर सुधा बोली—भैया अब तब कहते हैं, "चश्मा लगाओगी ?" चश्मा खरीदने के लिए

तो सदा तैयार रहते हैं किन्तु जो ला देने के लिए इतने दिनों से कह रही हूँ उसे खरीद देने का नाम ही नहीं लेते।

माँ ने कहा—अबकी फिर क्या फरमायश की है?

"भैया से पूछो न।"

नारायण ने गम्भीर भाव से कहा—रामनामी अँगौछा माँगती है।

सुधा—चलो, जाओ—भूल गये?

नारायण—तो क्या खेलने के लिए गुड़िया?

"तुम्हें खूब याद है। तुम सिर्फ मुझे चिढ़ाते हो। नहीं माँ, यह कुछ नहीं।"

माँ ने कहा—तो क्या? तू ही कह न।

सुधा ने माँ क कान के पास मुँह लेजाकर कहा—ग्रामोफ़ोन।

कमला ने कहा—ग्रामोफोन! नहीं बेटी, ऐसा काम न कर। ग्रामोफोन लेकर क्या करेगी? वह कान फोड़े डालता है। जब हम काशी मे थीं तब हमारे घर के पास ही एक सौदागर रहता था। उसका लड़का एक ग्रामोफोन खरीद लाया। वह दिन-रात उसे बजाता था। उसके मारे मैं तो त्राहि त्राहि करने लगी। जितने रेकार्ड थे उनमें सबसे पसन्द था उसे जानवरों की बोली वाला रेकार्ड। वह दिन भर सुबह, दस बजे, दोपहर को, जब देखो तब उसीको बजाता था। उसका कोई दोस्त आता था तो उसे वही रेकार्ड सुनाता था। भाग्य से कुछ दिनो

के बाद उसकी कल बिगड गई, नहीं तो मुझे दूसरा मँगा भाडे पर लेना पडता। तब तू दस वर्ष की थी। याद नहीं है?

सुधा—हाँ, याद है। अहा! उसमे एक बढिया भजन था—"मोरा जिया हरि लीन्हों रे बँसुरिया बजाके।" ग्रामोफोन में कितने ही अच्छे अच्छे गीत भरे रहते हैं। सब तो वैसेही नहीं रहते।

"बेटी, ग्रामोफोन का नाम मत लो। उसका अच्छा गाना उसी में रहे। मैं अपने घर में तो उसे नहीं आने दूँगी। मैं अब बूढी हुई। जब काशी प्रयाग मे जाकर निवास करूँ तब तुम घर में ग्रामोफोन बजाना, ढोलक बजाना। जो जी में आवे बजाना।"

यह सुन कर सुधा की आँखे डबडबा आईं।—"अच्छा, नहीं दोगी तो मत दो"—कह कर वह उठ कर चली गई।

कमला ने कहा—देखा लडकी का रूठना। अब ब्याह होने में देर नहीं है। दो दिन बाद ससुराल जायगी। घर-बार सँभालने की उम्र हुई। पर अब भी ऐसी नादान है! इसे ज्ञान कब होगा। मोती बाबू! तुम बहुत दूर से आये हो, भूख-प्यास लगी होगी। जलपान का सामान तैयार है, बैठो। मैं इन्तजाम कर के तुम्हे बुला भेजूँगी।

नारायण—माँ, तुम यह समझ रही हो कि मैं घर पर बैठा हूँ इससे मुझे भूख नहीं लगी होगी। सो यह समझना तुम्हारी भूल है।

माँ ने हँस कर कहा—अच्छा किया जो भूल सुधार दी। नहीं तो अभी तुझे खाना नहीं मिलता।

ता रा
ने

सत्ताईसवाँ परिच्छेद।

जलपान के अनन्तर मोतीलाल को साथ ले नारायणप्रसाद कुछ देर तक बाग में घूमे फिरे। अँधेरा होने के पहले मोती ने कहा—अब घूमना छोड़ो, चलो सन्ध्या हुई।

दोनों लौट पड़े। रास्ते में मोती ने कहा—तुम सन्ध्या-समय पूजा नहीं करते?

नारायण ने हँस कर कहा—विवाह होने के बाद एक वर्ष तक की थी। बाल पकने और दाँत टूटने पर फिर करने लगूँगा।

"तुम्हारे बाबूजी कुछ नहीं कहते?"

"वे किसी के मतामत पर कुछ नहीं बोलते। कहते हैं, जब उसे भूख लगेगी तब वह आपही खायगा।"

"कैसी भूख? आध्यात्मिक?"

"बेशक।"

"तुम्हारे बाबूजी ऐसे धर्मनिष्ठ हैं, तुम ऐसे अजामिल क्यों हुए?"

"एकदम अजामिल नहीं हूँ। जब घर रहता हूँ तब, नित्य सन्ध्या-समय बाबूजी पूजा करके जिस समय श्रीराधारमणजी को भोग लगाते हैं उस समय मैं वहाँ हाजिर रहता हूँ और घर भर के सब लोग भी—माँजी से लेकर नौकर चाकर तक। भोग लगा कर बाबूजी राधारमणजी की स्तुति करते हैं, आरती करते

हैं । वह समय बड़ा ही सुहावना लगता है । मैं नास्तिक नहीं हूँ । आज आरती के समय बाबूजी तुम को भी अवश्य बुला भेजेंगे ।

मोती ने कहा—अच्छी बात है, किन्तु वहाँ तो स्त्रियाँ रहेंगी । मैं कैसे जाऊँगा ?

"मेरे बाबूजी पर्दे वर्दे की ऐसी परवा नहीं करते । हाँ, वे इतना जरूर पसन्द नहीं करते हैं कि स्त्रियाँ घोड़े पर चढ़ कर घूमा करें, मर्दों के बीच खड़ी होकर नाचा करें अथवा सभा-समाज में वक्तृताएँ दें । जिन लोगों के साथ बाबूजी की घनिष्ठता है वे जब कभी इनसे मिलने आते हैं तब ये उन्हें अन्दर भी ले जाते हैं । इसमें ये कोई दोष नहीं समझते ।"

मोती—बात तो ठीक है । किन्तु हम लोगों के चिर-कालिक अभ्यास और संस्कार के कारण सङ्कोच होता है, और इसीसे हम लोग स्त्रियों को पर्दे के भीतर रखना पसन्द करते हैं । और वे भी इसीसे अन्य पुरुषों के सामने आने में हिचकती हैं ।

इस तरह बातें करते करते ये लोग घर पहुँचे । सायकाल की पूजा करके मोतीलाल अपने कमरे में आ बैठा । नारायण फिर उसके साथ बात-चीत करने के लिए आ गया । आध घंटे के बाद बलदेव बाबू ने दोनों को बुला भेजा ।

मोती ने पूजा के कमरे में जाकर देखा, बलदेव बाबू रेशमी कपड़ा पहिने मूर्त्ति के सामने बैठे हैं । ठाकुरजी को भोग लग चुका है । उनकी बगल में दोनों ओर कम्बल बिछे हैं । एक पर

स्त्रियाँ बैठी हैं। दूसरा पुरुषों के लिए है। नारायण और मोती उस पर जा बैठे। द्वार के समीप दासियाँ और दास बैठे थे।

तब वलदेव बाबू ने हाथ जोड कर श्रीराधारमणजी का स्तोत्र-पाठ करना आरम्भ किया। वे गम्भीर स्वर से सुन्दर भावपूर्ण संस्कृत श्लोक भक्ति-गद्‌गद कण्ठ से, लय के साथ, पढने लगे। इस तरह कुछ देर तक स्तुति करके उन्होने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उनको प्रणाम करते देख, वहाँ जितने लोग थे सभी न धरती में सिर टेक कर श्रीराधारमणजी को प्रणाम किया। तब बलदेव बाबू दहने हाथ मे वलता हुआ पञ्चदीप और बाँयें हाथ में घटी लेकर आरती करने के लिए खडे हुए। वहाँ जो लोग बैठे थे वे सभी उठ खडे हुए। मन्त्र पढ पढ कर बलदेव बाबू आरती करने लगे। दो छोटे लडके घटा-घडियाल बजाने लगे। आरती कर चुकने पर बलदेव बाबू ने फिर प्रणाम किया। अन्य लोगों ने भी प्रणाम किया। फिर वे सबको आरती दिखा, चरणामृत दे, कुशाग्र से गङ्गाजल लेकर सब के माथे पर छिड़कते हुए कहने लगे—शान्ति शान्ति शान्ति ।

इसके बाद सब लोग उठकर अपना अपना काम करने गये। बलदेव बाबू मोतीलाल का हाथ पकड कर बाहर आये। मोतीलाल के कमरे में उसे पहुँचा कर कहा—बैठो बाबू, तुम यहाँ बैठो। मैं वस्त्र बदल कर आता हूँ। इस समय कुछ चाय पीना होगा।

फिर वे कपडे बदलने चले गये। अब मोतीलाल के पास

नारायण आगया। बोला—साँझ को बाबूजी बैठक में नहीं जाते। शुरू शुरू में जब बाबूजी पे आये थे तब सन्ध्या के उपरान्त बाहर के कमरे में किन्तु महल्ले के सब बूढे आदमी यहाँ आकर या शतरज खेलने का अनुरोध करने लगे। धीरे धीरे वहाँ खेल का एक अड्डा जम गया। इसीसे बाबूजी अब वहाँ नहीं जाते। इसी कमरे में बैठ कर चाय पीते हैं। हम लोग भी यहाँ आकर बैठते हैं। गप शप होती है और रामायण या महाभारत पढा जाता है। किसी दिन माँ पढती हैं, किसी दिन मेरी स्त्री और किसी दिन सुधा पढती है। खाने पीने के समय तक यही सब होता रहता है।

इसी समय एक नौकर घडा हुका भर कर टेबल के पास स्टूल के ऊपर रख गया। कुछ ही देर मे बलदेव बाबू भी आ पहुँचे।

कुरसी पर बैठ कर हाथ मे निगाली ले करके बलदेव बाबू बोले—मोती बाबू! तुमको किस समय चाय पीने का अभ्यास है? कोई कोई साँझ होने के पहलेही पीते हैं। हम लोग तो साँझ होने के बाद पीते हैं।

मोती—मैं चाय नहीं पीता।

वृद्ध—अयँ! क्या कहा—चाय नहीं पीते?

"जी नहीं।"

"क्या कभी नहीं पीते?"

"कभी कभी पीता हूँ। तबीअत सुस्त होने पर—सोभी

लिया है दिनों बाद। उम्र भर में दो तीन वार से अधिक चाय का सेवन न किया होगा।"

"वाह वाह! अच्छी बात है, तुम उसका अभ्यास नहीं रखते सो यह अच्छा ही है। हम लोगों को तो ऐसी लत पड़ गई है कि समय पर चाय नहीं मिले तो कुछ भी नहीं सुहाता। सिर दुखने लगता है। ऐसा एक मैं ही नहीं हूँ—नारायण की माँ और अन्यान्य स्त्रियों की यही हालत है। हमारे घर की छिपकिली तक चाय की भक्त है।"

इसी समय सुधा थाली में तीन प्याले चाय ले आई। बलदेव बाबू बोले—यह मेरी लड़की है, इस से तुम्हारा परिचय हुआ है या नहीं? इसका नाम कनकलता है, परन्तु सब इसको सुधा कहते हैं। यह बहुत बढ़िया चाय बनाना जानती है। मुझे दूसरे के हाथ की चाय पसन्द ही नहीं होती। कितने मिनटों तक चाय, को गर्म पानी में रहना चाहिए, कितनी चाय में कितना दूध, और कितनी चीनी मिलानी उचित है—यह जैसा समझती है वैसा दूसरा कोई नहीं समझता। बेटी सुधा, तीन प्याले चाय क्या लाई है? मोती बाबू तो चाय नहीं पीते।

सुधा मोती की ओर घूम कर बोली—"क्या आप चाय नहीं पीते?"—उसके कण्ठ-स्वर से ऐसा भाव प्रकाशित मानो कलियुग में जो मनुष्य चाय नहीं पीता वह जीव है।

मोती—नहीं, मैं चाय नहीं पीता।

वलदेव बाबू प्याले के भीतर चम्मच चलाते चलाते बोले—बेटी, चकित क्यों होरही ? वे कहते हैं कि उम्र भर में उन्होंने कुल दो तीन दफे चाय पी होगी। सोभी शरीर अस्वस्थ होने पर। और तुम सब माँ का दूध छोड़तेही चाय पीना सीख गई। जब हम तुम्हारी उम्र के थे तब चाय का दवा ही समझते थे। तुम सब को देखते हैं कि दाल-रोटी न मिले तो न सही पर चाय मिलनी ही चाहिए। यह कह कर प्याले को मुँह के सामने रख एक चम्मच मुँह में डाला। आँख मूँद कर कहा—वाह !

सुधा ने एक प्याला भाई के आगे रख दिया। तीसरे प्याले के सम्बन्ध में बोली—तो यह प्याला क्या होगा ?

वलदेव बाबू प्याले को लालच भरी दृष्टि से देख कर बोले—"वह नष्ट होगा, उससे तो यही अच्छा है कि मैंही उसे पीलूँ। अच्छा लाओ—रखदो।" तब सुधा मुस्करा कर टेबल पर प्याला रखके खाली थाली लेकर चली गई।

पहला प्याला खाली करके दूसरा प्याला लेकर वलदेव बाबू ने कहा—नशा। यह एक भारी नशा ही है। जितनी ही कम पी जावे उतना ही अच्छा है। कितने ही आदमियों को तो इतनी चाय पीते देखा गया है कि वे चार चार पाँच पाँच प्याले तक पी जाते हैं। मैं तो सबेरे एक प्याला और साँझ को एक प्याला पीता हूँ। कभी कभी एक प्याले की जगह दो हो जाते हैं। चाय के विषय में किसी ने एक दोहा क्या ही अच्छा कहा है—

इस असार ससार में, नहि चाहूँ धन-मान धिक चाय का
चाय एक प्याला मिले—जो मोहि साँझ विहा

धन-मान नहीं चाहिए, चाहिए सिर्फ एक प्याला च' नहीं रखते और शाम को। वाह ! बहुत ठीक कहा। इसी को कवि की अन्तर्दृष्टि कहनी चाहिए। एक अच्छा किस्सा याद आ गया है, कहता हूँ सुनो। यह कह कर बलदेव बाबू ने दूसरे प्याले को भी खाली करके रूमाल से मुँह पोंछ कर निगाली को हाथ में लिया।

इसी समय सुधा आकर बोली—माँ पूछती है, क्या एक प्याला चाय और पीजिएगा?

बूढे ने कहा—अब एक और प्याले की क्या जरूरत है? पूरे दो प्याले तो पी चुका हूँ। ज्यादा चाय पीना अच्छा नहीं। हाँ, क्या कह रहा था, वह किस्सा कहता हूँ सुनो।

किस्से का नाम सुनकर सुधा द्वार के समीप एक आराम कुर्सी पर बैठ गई।

दो एक बार धुआँ खींच कर बलदेव बाबू ने कहानी सुनाना आरम्भ किया—

"मैं उस समय मिर्जापुर ज़िले में डिपुटी कलेक्टर था। देहात में दौरे पर गया था। मौसम गरमी का था। कडी गरमी पड रही थी। दिन में लू चलती थी। दिन को कहीं जाना-आना असम्भव था। इसी से मैं रात को सफर करता था। एक रात को मैं गङ्गा की धार से जा रहा था। दो नावें थीं। एक

बलदेव घाट पर एक पर अर्दली का चपरासी और मुझे लेकर।
...टीं, चकित वहीं चाँदनी छिटकी हुई थी। मन मन्द हवा बह
रहा हो तो' आधी रात का समय था। किनारे के पास हो
पास होकर नावें जा रही थीं। एक जगह, किनारे के पास
ही बहुत बड़ा बड़ का पेड़ था। उसके नजदीक घास में
मनुष्य की कुछ गुनगुनाहट सुन पड़ी। नाव ठहरवा कर मैंने
पूछा—"कौन है?" पर कुछ उत्तर नहीं मिला। सिर्फ एक
अस्पष्ट शब्द सुन पड़ा—'या अल्ला'। जान पड़ा। कैसा, क्या
हुआ है? कोई इसे काट कूट कर यहाँ फेंक तो नहीं गया है?
या बीमार होकर मर तो नहीं रहा है? नाव को किनारे लगा-
कर हम लोग उतरे। उस आदमी के पास आकर देखा
तो एक बार वह उठ बैठता है और फिर लेट जाता है और
साथ ही कराहता भी है। कोई मुसलमान फकीर था। यहाँ
दूर तक मैदान था। कहीं कोई गाँव या घर नजर नहीं आता
था और न उसके पास ही कोई मनुष्य था। बड़ के ऊँचे
ऊँचे टीले नजर आते थे। खूब सन्नाटा छाया हुआ था। मैंने
पूछा—'तुम्हें क्या हुआ है? ऐसा क्यों कर रहे हो?' मेरे
अर्दली ने भी पूछा, पर कुछ उत्तर नहीं मिला। वह सिर्फ 'या
अल्ला—या अल्ला' कह कर कराह रहा था। [illegible]
होने का कोई लक्षण नहीं देखा। शरीर पर हाथ रखकर देखा
तो देह भी ठंडा थी। ज्वर नहीं था। मैंने अर्दली से कहा—
पाने को इसे थोड़ा सा पानी दो। [illegible]

हो। उसने पानी ला दिया किन्तु फ़क़ीर ने उसके हाथ से गिलास को हटा दिया। मेरे साथ में बूढ़ा पेशकार भगवत्सहाय था। वह अफ़ीम खाता था। उसने कहा—'हुज़ूर, यह अफ़ीमची मालूम होता है। अफ़ीम न मिलने से इसकी यह दुर्दशा हुई है।' यह कहकर उसने अपनी जेब से अफ़ीम की डिबिया निकाल करके उसके मुँह में थोड़ी सी अफ़ीम डाल दी। मुँह में अफ़ीम का स्वाद पाते ही उसने दोनों हाथों से पेशकार का हाथ खूब ज़ोर से पकड़ लिया। पेशकार की उँगली में कुछ अफ़ीम लगी रहने के भ्रम से वह उसे चाटने लगा। तब कहीं उसकी जान में जान आई। वह सँभल कर उठ बैठा। अब उस की छटपटाहट या कराहना कुछ नहीं रहा। बात की बात में सब बन्द हो गया। आख़िर उसने कहा—"बाबा जीते रहो। आज तुमने मुझे जो ख़ुशी बख्शी है दुनिया में उसकी बराबरी नहीं हो सकती। अगर अभी कोई मुझको दिल्ली का तख्ते-ताऊस देना चाहे तो मैं उसे नाचीज़ समझ कर लेने से इनकार कर दूँ।" हम लोग विस्मित हो रहे। इसके बाद उसने उठकर हम लोगों को सलाम किया। फिर वह उस विस्तृत मैदान में गायब हो गया। अमल ऐसी ही चीज़ है। धन-मान नहीं चाहता—वह फ़क़ीर दिल्ली का तख्त भी नहीं चाहता था।

किस्सा सुन कर मोती और नारायण दोनों हँसने लगे। अब वृद्ध कमरे के चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर बोले—सुधा, सुधा, कहाँ गई?

सुधा कहानी सुनने बैठी थी सही, किन्तु जब उसने देखा कि यह तो पुराना सुना हुआ किस्सा है तब वह उठ कर चली गई थी। पिता के पुकारने से वह फिर आकर बोली—क्या है बाबूजी ?

बलदेव—हाँ, तब तूने क्या पूछा था ?

"कब ?"

"यही कुछ देर पहले आकर क्या कहा था ? मैं और चाय पीऊँगा या नहीं, शायद यही पूछा था ? अगर हो तो ले आ। बहुत नहीं, सिर्फ एक प्याला। बहुत सख्त नहीं करना।"

सुधा हँस कर चली गई।

बलदेव बाबू ने मोती से कहा—मैंने जो कहा, "बहुत सख्त नहीं करना," उसका अर्थ तुम ने समझा ?

मोती—जी नहीं।

"पहले मेरा एक नौकर रोज चाय बनाता था। चाय तेज हो जाने पर कहता था, आज बड़ी सख्त हो गई। उसकी दिल्लगी के लिए हम लोगों ने भी सख्त कहना शुरू कर दिया था। अब अभ्यास के वश हो कर हम लोग भी यही बोलते हैं।"

सुधा एक प्याला चाय और ले आई। बलदेव ने कहा—बेटी, आज कुछ महाभारत पढ़कर सुनाओ।

सुधा महाभारत ला, पिता के पास बैठ कर पढ़ने लगी।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

उस रात को शयनगृह मे जाकर नारायण ने अपनी स्त्री से पूछा—तुम्हें मोतीलाल कैसा जान पडा ?

सुशीला ने धीरतापूर्वक कहा—जरा कड़ुवा।

नारायण एकाएक अपने मुँह पर भय का भाव प्रदर्शित कर हाथ से पत्नी का चिबुक धर कर उसके होंठ को बड़े ध्यान से देखने लगा।

सुशीला—क्या देख रहे हो ?

स्त्री का चिबुक छोड़ जरा पीछे हट कर नारायण उदासी के साथ सिर झुका कर बोला—छि छि', यह क्या किया ? उसे खा डाला ? इतनी मेवा-मिठाई, हलुवा-पूरी खाने से भी तुम्हें सन्तोष नहीं हुआ ! आखिर मेरे मित्र को खा ही डाला ? अब भी तेरी डाढों मे उसका लहू लगा है। हाय ! हाय !

यह सुन कर सुशीला हँसते हँसते लोट गई। चाबियों के गुच्छे सहित उसके आँचल का छोर कन्धे से खिसक कर कुरसी के नीचे गिर पडा। कपडे सँभाल कर वह कृत्रिम कोप-युक्त स्वर से बोली—खूब कहा, मैं राक्षसी हूँ ? मैं मनुष्य खाती हूँ ?

"खाया नहीं तो कड़ुवा मीठा क्योंकर मालूम हुआ ?"

"कड़ुवा कहने से क्या मिर्च का ही कड़ुवापन समझा जाता है ? इसी बुद्धि से आप डिपटीगिरी करेंगे ?"

नारायण मानों आश्वस्त होकर बोला—यैँ, तो मेरा मित्र जीता है । खुशी की बात है । अच्छा बताओ कहना क्या है ?

"आपके मित्र का हृदय बड़ा ही कठोर मालूम होता है, मानो सूखा काठ । अर्थात् वह रस ज्ञान से रहित है ।"

नारायण ने कुछ सोच कर कहा—उसका हृदय कठोर या नीरस है, ऐसी बात मैं नहीं कह सकता । बल्कि मैं यह कह सकता हूँ कि वह एक विलक्षण भाव से भरा हुआ है । किन्तु उसकी वह भाव-प्रबलता आध्यात्मिक विषय में—धर्म-सम्बन्ध में है । उसका हृदय कठोर तो नहीं पर बलवान् अवश्य है । सहसा उसे कोई डिगा नहीं सकता । वह जिसे कर्तव्य समझता है उससे वह किसी तरह विचलित नहीं हो सकता ।

सुशीला ने कहा—उनकी यही धारणा है न कि विवाह करके संसारी होना अन्याय है ?

"हाँ यही है ।"

"अगर वे किसी कुमारी का रूप-गुण देखकर मुग्ध हो जायँ तब—"

"पहले तो—उसकी जैसी प्रकृति है उससे यही असम्भव जान पड़ता है कि वह किसी कुमारी को देख कर उसे चाहेगा । दूसरे, यदि यह होगा भी तो वह मन के इस भाव को हृदय की एक दुर्बलता समझेगा और जैसे हो सकेगा वह उस भाव को मन से निकाल कर दूर कर देगा ।"

" जो उनसे यह न हो सके तो ?"

"यदि उससे यह न होगा तो वह आप ही वहाँ से हट जायगा।"

सुशीला ने जरा हँस कर कहा—स्थानत्यागेन दुर्जन ? अर्थात् वे स्थान त्याग कर भाग जायँगे।

"मेरा विश्वास है, वह यही करेगा।"

सुशीला आप ही आप हँसने लगी। फिर सिर हिला कर बोली—हूँ हूँ।

"वाह! एक 'हूँ' से ही मेरी इन बातों का प्रतिवाद किया? मैंने अपने मित्र के सम्बन्ध में जो राय जाहिर की है, क्या वह तुम्हें मंजूर नहीं?"

"हर्गिज नहीं। आप समझते हैं, आपके अनोखे मित्र मोती बाबू प्रेम नामक रोग से अपने को बचा कर चल सकते हैं। पर मेरा विश्वास है, नहीं चल सकते।"

"नहीं चल सकते?"

"नहीं, कभी नहीं। मान लो, हमारी यही सुधा देखने-सुनने में भी अच्छी है। स्वभाव भी इसका कोमल, क्या मोती बाबू इससे स्नेह किये बिना रह सकते हैं?"

नारायण ठहाका मार कर हँसने लगा और बोला: म्भव। तुम्हारी सुधा तुम लोगों को चाहे जितनी मीठी लगे, मोती के नजदीक यह सुधा निम्बरस के सिवा और कुछ नहीं।

"अच्छा, अगर मैं उन्हें मीठी लगा सकूँ तो?"

"पगली, तू कैसे मीठी लगावेगी?"

इतना अधिक डूबी थी कि उसने मेरे पैरों की आहट नहीं सुनी। कहीं उसके विचारों का ताँता टूट न जाय, इस भय से मैं पैरों की आहट बचा कर नीचे उतर आया।"

नारायण—इस बात को सत्य करने के लिए शायद तुम उससे इनाम-नोटिवाली बाघ-बगले की कहानी कविता में लिख डालने के लिए कहोगी।

"आपकी बुद्धि की बलिहारी है। बाघ और बगले की कविता तो मौजूद ही है। उसे मैं क्यों लिखाऊँगी? मैं कहूँगी—'अगर तिलोत्तमा कविता बनाना जानती तो उस रात में मन्दिर से लौट आने पर भीतर से किनाड़ बन्द कर अपने शयन-गृह में बिछौने पर बैठी बैठी क्या लिखती—यह लिखकर दिखाओ। सिर्फ मन का भाव लिखना, मनुष्य के या स्थान के नाम का अथवा घटना का उल्लेख करना आवश्यक नहीं। यदि इस विषय पर एक पेज की कविता लिख सको तो तुम को एक 'दुर्गेशनन्दिनी' इनाम में दूँगी।' इस तरह बङ्किम बाबू की सभी नायिकाओं पर सुधा से कुछ न कुछ लिखवाऊँगी और कभी कभी वह कविता पुस्तक भूल से मोतीलाल के हाथ में न जा पहुँचेगी—यह भी मैं नहीं कह सकती। किन्तु आप लाल कपड़े की जिल्दबँधी कापी और पेन्सिल से लिखी हुई कविता, ये दोनों बातें कहना न भूलिएगा। मेरे पास ऐसी एक सादी कापी है, वही उसको दूँगी। तब उसके पहचानने में मोती-बाबू को कदापि धोखा नहीं होगा।"

छूना छोड दे तो चाय वेचारी फिर कहाँ जाकर खडी होगी? जो हो, और क्या जाल रचा है?

"दो दिन के वाद कहिएगा, न मालूम सुधा को क्या हो गया है, रात-दिन हाथ पर गाल रक्खे बैठी रहती है। पूछने पर भी नहीं बोलती। न मालूम मन ही मन क्या सोचती रहती है।"

"यह भी तो झूठ बोलना ही होगा। सुधा को इतना शीघ्र काव्य-रचना-रोग पकडेगा, ऐसा कोई लक्षण तो दिखाई नहीं देता।"

"आप को यह भी झूठ कहना नहीं पडेगा। इसकी सत्यता का भी मैं उपाय कर दूँगी। मैं उससे एक कठिन पहेली पूछ कर कहूँगी, 'एक दिन के भीतर यदि इस प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर दोगी तो तुम एक सिलाई का वक्स इनाम पाओगी।' मैं आपकी कोई बात झूठ न होने दूँगी। इसके लिए आप चिन्ता न करें।"

नारायण ने हँस कर कहा—ओफ! स्त्रियों की चतुराई का क्या कहना है। यही या और भी कुछ करना होगा?

"अभी बहुत कुछ करना होगा। घबराइए नहीं। दूसरे दिन आप बडी ही सरलता से मोती बाबू के साथ बातें करते करते कहें, क्या कहूँ आज एकाएक छत के ऊपर जाकर देखा कि सुधा पैर फैलाये बैठी है, और गोद में एक लाल कपडे की जिल्द-बँधी कापी लिये पेन्सिल से कविता लिख रही है। भाव में

इतना अधिक डूबी थी कि उसने मेरे पैरों की आहट नहीं सुनी। कहीं उसके विचारों का ताँता टूट न जाय, इस भय से मैं पैरों की आहट बचा कर नीचे उतर आया।"

नारायण—इस बात को सत्य करने के लिए शायद तुम उससे इन्साप-नीतिवाली बाघ-बगले की कहानी कविता में लिख डालने के लिए कहोगी।

"आपकी बुद्धि की बलिहारी है। बाघ और बगले की कविता तो मौजूद ही है। उसे मैं क्यों लिखाऊँगी? मैं कहूँगी—'अगर तिलोत्तमा कविता बनाना जानती तो उस रात में मन्दिर से लौट आने पर भीतर से किवाड़ बन्द कर अपने शयन-गृह में बिछौने पर बैठी बैठी क्या लिखती—यह लिखकर दिखाओ। सिर्फ मन का भाव लिखना, मनुष्य के या स्थान के नाम का अथवा घटना का उल्लेख करना आवश्यक नहीं। यदि इस विषय पर एक पेज की कविता लिख सको तो तुम को एक 'दुर्गेशनन्दिनी' इनाम में दूँगी।' इस तरह बङ्किम बाबू की सभी नायिकाओं पर सुधा से कुछ न कुछ लिखवाऊँगी और कभी कभी वह कविता पुस्तक भूल से मोतीलाल के हाथ में न जा पहुँचेगी—यह भी मैं नहीं कह सकती। किन्तु आप लाल कपड़े की जिल्दबँधी कापी और पेन्सिल से लिखी हुई कविता, ये दोनों बातें कहना न भूलिएगा। मेरे पास ऐसी एक सादी कापी है, वही उसको दूँगी। तब इसके पहचानने में मोती-बाबू को कदापि धोखा नहीं होगा।"

नारायण कुछ देर तक चुप रह कर सोचने लगा, फिर बोला—बस, यही या और भी कुछ कौशल की बात सोची है ?

नारायणप्रसाद के कण्ठ-स्वर से सुशीला के उत्साह से बाधा पहुँची। तथापि उसने कहा—समयानुसार और भी कुछ अवश्य करना होगा। एक कौशल करने की बात और भी सोच रक्खी है। करूँगी या नहीं, अब भी उसका निश्चय नहीं कर सकी। वह यही कि कविता आदि मोती बाबू के दृष्टिगत हो जाने पर सुधा के कान में कहूँगी कि मोती बाबू के साथ तुम्हारे ब्याह की बातचीत हो रही है। इसका फल यह होगा कि मोती बाबू को देखते ही सुधा की आँख नीची हो जायगी, लाज से दोनों गाल लाल हो जायँगे। इससे मोती को दृढ विश्वास हो जायगा कि सुधा मन ही मन मुझे चाहती है। कहिए, आप इस युक्ति को पसन्द करते हैं ?

नारायणप्रसाद ने दृढ स्वर से कहा—नहीं, छि !

"पहले मैंने जिन युक्तियों की बातें कही हैं, क्या आप उन्हीं को यथेष्ट समझते हैं ?"

नारायण ने पूर्ववत् कहा—नहीं।

"तब ?"

नारायण कुछ न बोला। सुशीला समझ गई कि उसके ये सब कौशल स्वामी को पसन्द नहीं आये। तो भी वह हँस कर बोली—आप गूँगे की तरह चुप क्यों हो रहे ?

नारायणप्रसाद के मुँह पर से चिन्ता का बादल धीरे धीरे

हट गया। वह बड़े प्यार से पत्नी के दोनों हाथ पकड़ कर बोला—छि, यह सब छल-छन्द करना छोड़ दो।

सुशीला अपनी उदासीनता-भरी आँखें नीची कर चुप हो रही।

नारायण ने कहा—नहीं, यह सब करना ठीक नहीं है। मेरी बहन क्या बाढ़ के पानी में बह कर आई है जो उसके ब्याह के लिए ऐसा जाल बिछाया जाय? हम लोग कपट कौशल का आश्रय क्यों लें?

सुशीला ने कहा—सुधा का किसी तरह ब्याह हो जाय, इस मतलब से मैंने यह कौशल करना नहीं सोचा था बल्कि खेल के मतलब से ही मैं ऐसा करना चाहती थी। किन्तु अब आपके कहने से मैं भी चाहती हूँ—इस तरह का खेल अच्छा नहीं।

नारायणप्रसाद ने स्त्री के कन्धे पर अपने दोनों हाथ रख कर कहा—मैं अब समझ गया। तुमने शेक्सपियर की कहानी पढ़ कर व्यवहारतः उसकी परीक्षा करने ही के लिए यह खेल खेलना चाहा था।

"हाँ, यह भी अधिकांश में सत्य है।"

"ओफ! स्त्रीशिक्षा का क्या भयङ्कर परिणाम है!" यह कह कर नारायण हँसने लगा।

सुशीला ने उस हँसी में योग देकर कहा—चलो जाओ। स्त्रीशिक्षा की निन्दा करते हो! सोचे हुए ऐसे अच्छे खेल को आपने मिट्टी में मिला दिया। मैंने अपने जीवन में एक सखी

औपन्यासिक लीला देखने की लालसा की थी—लेकिन आप के अनुत्साह से वह पूरी नहीं होने पाई। ऐसे निरुत्साही ठढे दिमागवाले स्वामी के साथ गृहस्थी चलाना एक कठिन समस्या है। यह कह कर सुशीला ने हँसते हँसते स्वामी की छाती में अपना मुँह छिपा लिया।

नारायण ने कहा—देखो, यदि ईश्वर ने कृपा की तो कपट का सहारा न लेने पर भी तुम सच्चे उपन्यास की लीला देख सकोगी। यद्यपि अभी इसकी आशा बहुत कम है। यदि थोड़ी सुधा को देखकर मोती का मन आकृष्ट हो तो शायद वह ब्याह करने को राजी भी होजाय। किन्तु एक भय है—यह पहले ही कह चुका हूँ। अगर वह अपने मन में किसी तरह की चञ्चलता का अनुभव करेगा तो कदाचित् भाग जायगा।

सुशीला ने कहा—भाग कर जायँगे कहाँ? इस फन्दे में अगर कोई एक बार फँस जाता है तो भागने से क्या छुट्टी मिलती है? फिर आपही आकर फन्दे में फँसता है। मैं श्रीमती सुशीला रानी आशीर्वाद देती हूँ, ईश्वर करे जिसमें उन्हें भागने की नौबत आवे।

उनतीसवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन सवेरे मोतीलाल ने सुना कि [illegible]
का जन्मदिन है। इसके उपलक्ष्य में कुछ [illegible]
जना हो रही है। गाँव से दो कोस [illegible]
बहुत साफ़ सुथरा जंगल है। सब लोग [illegible]
करेंगे। साथ चलने के लिए बलदेव बाबू ने [illegible]
किया। मोतीलाल राजी तो हुआ परन्तु [illegible]
से अच्छा नहीं लगा। वह [illegible]
सभी बातें अँगरेजी तरीके की दिखाई [illegible]

आठ बजे के भीतर ही दो [illegible]
कनात, शामियाना और टेबल-कुर्सी आदि [illegible]
नौकर लोग आज ही वहाँ जाकर [illegible]
करेंगे। खेमे को सजाने के लिए [illegible]
ध्वजा-पताकाएँ और डोरी आदि [illegible]
अशोक और देवदारु के पत्ते वहीं [illegible]
पहर के बाद नारायणप्रसाद साथ [illegible]

नारायणप्रसाद जब मोती बाबू के [illegible]
कहा—तुम लोगों की सभी बातें [illegible] है।

नारायण—अँगरेजों का अनुकरण [illegible]

वीरेन्द्र ने लौट कर खबर दी कि मोती बाबू पुस्तकालय के पीछे के बरामदे में बैठे संस्कृत की पोथी पढ़ रहे हैं।

सुशीला ने पूछा—वहाँ और कौन है?

"कोई भी नहीं।"

तब वीरेन्द्र को साथ लेकर सुधा अज्ञात भाव से कलिकाल के महादेव का ध्यान भङ्ग करने के लिए चली।

मोती जिस बरामदे मे बैठ कर ग्रन्थ पढ रहा था उसके नीचे कुछ दूर पर कल कल शब्द करती हुई नदी बह रही थी। पानी के ऊपर सारस पक्षियों का झुण्ड इधर उधर घूम रहा था। इस सुनसान जगह में बैठ कर मोतीलाल बम्बई का छपा हुआ कठोपनिषद् पढ़ रहा था।

सुधा और वीरेन्द्र जब बरामदे मे जा खड़े हुए तब मोती पढने मे ऐसा दत्तचित्त था कि उन दोनो के आने की आहट उसे नहीं सुन पडी। मोती बाबू की चश्मा-चढी आँखें और निश्चलभाव देख कर सुधा के मन में कुछ कुछ भय होने लगा। उसने देखा कि भाई नारायणप्रसाद के साथ इस मनुष्य का स्वभाव नहीं मिलता। भाई का मिजाज जैसे हँसी-खुशी से भरा रहता है वैसे इस मनुष्य का नहीं। मेरा प्रस्ताव सुनकर ये अवश्य ही उसे बच्चे का खेल समझेंगे और अपमान के साथ लौटा देंगे। क्या करूँ? जब आ गई हूँ तब योंही लौट जाने से भाभी बहुत हँसेगी। कहेगी—मैंने तो पहले ही कह दिया था। मैं सचमुच ही भीरु कहलाने लगूँगी। भीरुता का अपवाद, मेरे



मोतीलाल बम्बई का छपा हुआ कठोपनिषद् पढ़ रहा था ।—पृ० ३०६

मढ़ा जायगा। इसलिए साहस करके उसने काँपते हुए, से कहा—मोती बाबू!

बालिका के कण्ठ स्वर से चौंक कर मोती ने सिर उठाकर ा।

सुधा ने चकित हरिणी के सदृश दोनों नेत्र मोती के प्रति पित करके कहा—मोती बाबू, आज भैया घर में नहीं हैं। लिए आपको कुछ कष्ट देने आई हूँ।

मोती ने पुस्तक बन्द करके पूछा—क्या?

सुधा ने काँपते हुए हाथ से तूल का टुकड़ा दिखा कर ा—यह कपड़ा लाई हूँ—इस पर Many Happy Re rns of the Day लिख दीजिए।

दिहात में रहनेवाली लड़की के मुँह से अँगरेजी भाषा का रा शुद्ध उच्चारण मोती ने आज पहलेही पहल सुना। सुन र उसके हृदय में एक अपूर्व आनन्द का भाव झलक उठा। न्तु उसे क्या करना होगा, यह अच्छी तरह नहीं समझा। तलिए उसने कहा—कष्ट कुछ नहीं। बतलाओ मुझे क्या रना होगा।

सुधा के मन का सन्देह यह जान कर दूर हो गया कि ाती का स्वर हेडमास्टर साहब की तरह कठोर नहीं है। वह सके भाई के कण्ठस्वर की ही भांति कोमल और स्निग्ध है। य न रहने से उसे साहस हो गया। उसने कहा—कल ाबूजी का जन्मदिन है। कल हम सब उनके साथ नाव की

सवारी से वन-भोजन करने जायँगी। वहाँ खेमा खड़ा किया गया है। इस कपड़े पर बेले की कलियाँ जमा कर लिखूँगी—Many Happy Returns of the Day। फिर इसे खेमे के दरवाज़े पर टँकवा दूँगी। पेन्सिल से अक्षर अङ्कित कर लेने पर फूल जमाने में बड़ी सुविधा होगी। लिखने के लिए भाभी से कहा तो उसने कहा, लकीर सीधी न होगी, अक्षर बिगड़ जायँगे। इसी से आप के पास आई हूँ।

मोती ने बालिका के हाथ से कपड़ा ले उसे देख भाल कर कहा—अच्छा, मैं अभी लिखे देता हूँ। किन्तु एक रूल चाहिए।

"अच्छा" कह कर सुधा बड़ी उमङ्ग से रूल लाने गई।

रूल और पेन्सिल लाकर सुधा ने मोती के हाथ में दे दिया। तब तीनों लाइब्रेरी के भीतर गये। मोती ने कपड़े को टेबल के ऊपर बिछा कर कहा—आलपीन है? कपड़े को टेबल के ऊपर तान कर आलपीन के द्वारा अटका रखने से अच्छा होता।

"आलपीन देती हूँ" कह कर सुधा ने पिता की दराज खोल कर आलपीन की डिब्बी निकाल दी।

टेबल पर कपड़े को आलपीन से कसते कसते मोती बोला—देखो, मेरे मन में एक बात आती है—अगर अँगरेज़ी में न लिखो तो क्या नहीं चलेगा?

"तो देवनागरी में लिखें?"

"हाँ, यही अच्छा होगा। अपनी मातृभाषा छोड़ कर हम लोग विदेशी भाषा में माँ-बाप की कुशल क्यों मनावें?"

"यही ठीक है। उस वाक्य को हिन्दी में क्या कहेंगे ? 'इस दिन का विशेष निशेष प्रत्यागमन'—नहीं-नहीं—यह ठीक नहीं हुआ, सुनने में अच्छा नहीं लगता।"

मोतीलाल ने सोच कर कहा—प्रत्येक शब्द का अनुवाद करें तब तो ऐसा होगा ही। सिर्फ भाव लेना होगा। अच्छा—'ईश्वर करे—' ईश्वर का नाम न लेकर कार्य आरम्भ करना ठीक नहीं। कहो, तुम क्या कहती हो ?

सुधा उत्साहित होकर बोली—हाँ, ठीक नहीं। ईश्वर करे कि यह शुभ दिन—इसके आगे कौन सा शब्द जोड़ कर वाक्य पूरा किया जाय ?

मोती—गद्य की अपेक्षा सुनने में पद्य ही अच्छा मालूम होगा। मान लो यदि लिखा जाय—'ईश्वर करे कि यह शुभ वार'। इसके आगे एक पद और होना चाहिए।

सुधा आनन्द से उच्छ्वसित होकर बोली—ठीक हो गया—ठीक हो गया। सुनिए, कहती हूँ—आवे लौट लौट बहु वार। सुनने में भी अच्छा लगेगा—

ईश्वर करे कि यह शुभ वार।
आवे, लौट लौट बहु वार॥

हाँ मोती बाबू, क्या आप कवि हैं ?

मोती ने हँस कर कहा—कवि मैं हूँ या तुम ! मैं तो पद ही न जोड़ सका और तुमने तुरन्त जोड़ दिया। कविता बनाने का यश तुम्हीं पाओगी।

सुधा हँसते हँसते बोली—नहीं, यह कैसे होगा। पहला चरण तो आपका ही है। अतः दूसरे पद पर भी आपका ही अधिकार रहा।

मोतीलाल रूल और पेन्सिल की सहायता से कपड़े पर अक्षर लिखने लगा। सुधा ने कहा—तब तक आप लिखिए, मैं फुलवाड़ी से बेले की कलियाँ तोड़वा मँगाती हूँ। यह कह कर वह चली गई। कुछ क्षण के बाद ही लौट कर कहा—मोती बाबू, अगर एकाएक भैया आ जायँ तो कृपा करके इसे छिपा लीजिएगा।

"क्यों ?"

"भैया को मैं कल चकित किया चाहती हूँ। भैया खेमा सजाने गये हैं न। वे हमारे इन कामों को नहीं जानते। भाभी को भी मना कर दूँगी कि उनसे कुछ न कहे। कल वहाँ नाव से उतर मैं झट आगे जाकर तम्बू के द्वार पर इसे लटका दूँगी। भैया पहुँच कर देखेंगे तो एकदम अवाक् हो जायँगे। सोचेंगे, कल साँझ को तो तम्बू सजा कर गया हूँ, यह कहाँ से आगया? तब आप उनसे कहिएगा—मालूम होता है, रात को वनदेवी आकर लटका गई है।" यह कह कर मन्द मन्द मुसकुराती हुई सुधा फिर चली गई।

   

दूसरे दिन बड़े तड़के ही घर के सब लोग जाग उठे। कुछ ...ही बलदेव बाबू ने गरम पानी से स्नान कर डाला।

नहा कर रेशमी धोती पहनी। फिर वे राधारमणजी की पूजा करने बैठे। अपने जन्म-दिन को पहले भगवान् से आशीर्वाद लिये बिना वे आज अपने बन्धुवर्ग का अभिनन्दन ग्रहण नहीं करेंगे।

बलदेव बाबू बड़ी भक्ति से पूजा और स्तोत्र पाठ करने लगे। उनके बेटे-बेटी आदि आत्मीयगण बाहर उनकी प्रतीक्षा में बैठे थे। इसी समय नारायणप्रसाद मोती को बुला लाया। मोती मन ही मन कुछ कुढता हुआ आया। वह यह सोच रहा था कि अँगरेजी कायदे के अनुसार मुझे Many Happy Returns of the Day कह कर बलदेव बाबू से हाथ मिलाना पड़ेगा। और मेरे लिए यह बड़ा ही अप्रीतिकर होगा। क्योंकि मैं इनके यहाँ मेहमान हूँ, जो ऐसा नहीं करता तो असभ्यता होती है।—वह बड़े ही सङ्कट में पड़ कर किं-कर्त्तव्य-विमूढ हो रहा था।

किन्तु थोड़ी ही देर के बाद मोती ने जो देखा उससे उसके मन की सारी शङ्कायें मिट गईं और हृदय आनन्द से पुलकित हो उठा।

पूजा समाप्त होने पर बलदेव बाबू ने सबको भीतर बुलाया। उनकी आज्ञा के अनुसार सभी ने पूजा-गृह में प्रवेश किया। बलदेव बाबू ने कहा—"तुम लोग पहले भगवान् को प्रणाम करो और मन्त्र पढो।" अब वे धीरे धीरे सबसे कहलाने लगे—

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गो-ब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः ॥

तीसवाँ परिच्छेद

गोपीकान्त बाबू के देवी-मन्दिर में जब शंख, घड़ी-घण्टे आदि विविध वाद्यों के साथ भगवती की आरती हो रही थी तब एक बार उन्होंने मन में सोचा कि जाता तो हूँ, जाऊँ भगवती को प्रणाम कर आऊँ। किन्तु बहुत आदमियों के सामने निकलने में उन्हें कुछ सकोच होने लगा। "जाता हूँ, अब जाता हूँ," कर के ही रह गये, जा न सके। वे सूनी कोठरी में बैठ कर आकाश-पाताल की बातें सोचने लगे।

आरती हो जाने पर गोपीकान्त ने दीवान को बुला भेजा। उनके आने पर कहा—दीवानजी, एक विशेष कार्य-वश मुझे आज ही रात को काशी जाना होगा।

दीवानजी विस्मित होकर बोले—आजही रात को?

"हाँ, आज ही जाना होगा। घण्टे दो घण्टे के भीतर ही रवाना हो जाऊँगा। गाड़ी तैयार करने के लिए कह दीजिए।"

दीवान बूढ़े थे। अमावास्या की रात को बाबू घर से बिदा होंगे, यह सुन कर वे चकित हो रहे। बड़ी देर तक चुप रह कर बोले—आप आज के दिन ठहर कर कल जायँ तो नहीं हो सकता!—आज अमावास्या तिथि—

बाबू ने कहा—अमावास्या होने से क्या होता है? आज यात्रा का दिन अच्छा है। भगवती की पूजा का दिन

है। डायरी देखली है। आज रात को नव बजे बाद यात्रा शुभ है। "पश्चिमे नास्ति।" काशी तो यहाँ से पश्चिम नहीं है। बहुत जरूरी काम है, इसी से जा रहा हूँ। काशी के गर्भीचर्में एक मित्र का वाटिका-भवन है। उसकी क़ीमत कम से कम दस हजार रुपया है। वह बड़े सस्ते दाम में बिक रहा है। पानी के भाव मकान बिकता है। दो हजार में ही मित्र मचाया है। काशी जाने-आने का ताँता तो प्रायः लगाही रहता है। वहाँ जाने पर दूसरे के मकान में ठहरना पड़ता है या भाड़े पर मकान लेकर रहना पड़ता है। इसी से बहुत दिनों से चाहता हूँ कि वहाँ ठहरने के लिए अपना एक खास मकान हो जाय। यह अच्छा सुयोग हाथ आया है। खज़ाने में से दो हजार रुपया मुझे दीजिए। दस दस रुपये वाले नोट हों तो और अच्छा।

दीवानजी—जो हुक्म, नोट ही लाय देता हूँ। तो क्या वहाँ बहुत दिन रहना होगा?

"नहीं, बहुत दिन तो नहीं रहूँगा।"

"क्या लाला के बाग में ही जाकर ठहरियेगा?"

"अभी यह ठीक नहीं कह सकता। आप रुपया मौजूद रखियेगा। मैं भोजन करके नव बजे के बाद ही यात्रा करूँगा। मैं जाता ही हूँ, मोती भी घर नहीं है। कल आप का मा कालिका के विसर्जन के सम्बन्ध में जो कुछ करना उचित हो, सो आप करें। सभी भार आपके ऊपर है।"

"जो आज्ञा" कह कर दीवानजी चले गये।

तब रात के आठ बज गये थे। गोपीकान्त बाबू भोजन करने अन्दर नहीं गये। वहाँ मनोरमा (पत्नी) की जिरह—कहाँ जा रहे हैं, क्यो जा रहे हैं इत्यादि—सह्य नहीं होगी। भूख भी न थी। भोजन तो नाममात्र को करना था। इसलिए उन्हों ने नौकर को बाहर के कमरे में ही भोजन लाने का हुक्म दिया।

भोजन कर चुकने पर वे जाने के लिए तैयार होने लगे। हर बार काशी जाते समय जिस नौकर को साथ ले जाते थे वह भी जाने की तैयारी करने लगा। किन्तु बाबू ने उससे कहा—"इस बार तेरे चलने की जरूरत नहीं।" यह सुन कर वह उदास हो रहा।

कमलपुर से रेलवे-स्टेशन छ कोस पर है। तेज घोडे उस गहरे अन्धकार के भीतर से गाडी सरपट खींच कर ले चले। गाडी पर बैठे हुए दो मशालची अँधेरे को चीरते जाते थे। रास्ते में दो जगह घोडे बदले गये। दो ढाई घण्टे के भीतर भीतर ही स्टेशन के दर्शन हो गये।

गाडी खडी होने पर भी प्राय. पॉच मिनट तक गोपीकान्त नीचे नहीं उतरे। वे सोचने लगे—ऐसा होना भी सम्भव है। शाम होने के बाद पुलिस मुझ को पकडने के लिए कमलपुर में आई हो और वहाँ उसने सुना हो कि मैं स्टेशन जा रहा हूँ। डेवढ़ी पर मुझे नौकर-चाकर आदि अनेक लोगों से सुरक्षित देख यहाँ अकेला जान कर गिरफ़ार करने आई हो। इस प्रकार की चिन्ता से उनका कलेजा धडकने लगा।

आखिर उन्होंने डरते डरते गाड़ी से उतर कर देखा तो रात के बारह बज चुके थे। अब एक घण्टे के भीतर ही गाड़ी आवेगी, यह जान कर उन्हें कुछ धैर्य्य हुआ। उनके साथ सिर्फ एक चमड़े का बैग था। एक नौकर उसे हाथ में लेकर स्टेशन के भीतर रख आया। गोपीकान्त उस अन्धकार-मय प्लैटफार्म पर जा कर एक बेञ्च पर चुपचाप बैठ रहे।

किन्तु डर ने साथ न छोड़ा। वे सोचने लगे, अगर पुलिस पकड़ने ही आवेगी तो साथ में रुपया है। रुपया देकर छुटकारा पाने का यत्न करूँगा। रौनकलाल ने कहा है, संसार रुपये के वश है, पुलिस की तो कोई बात ही नहीं। अँधेरे में जूते की मच-मचाहट सुनते ही आप चौंक उठते थे। आखिर मन को दूसरी ओर फेरने के लिए बैग से चुरुट निकाल कर धूम्रपान करने लगे।

क्रमशः टिकट बँटने की घण्टी बजी। तब गोपीकान्त बाबू उठकर टिकट लेने चले। सोचा, टिकट-बाबू जान-पहचान का आदमी न हो तो कुशल है। बुकिंग-आफिस के भीतर जा कर देखा, टिकट-बाबू कोई पचीस वर्ष का युवा पुरुष है। सर्ज का काला कोट पहने टिकट बेच रहा है। चेहरे से परिचित सा मालूम नहीं हुआ। पास जाकर कहा--मुझे काशी का सेकेन्डक्लास का एक टिकट दीजिए।

युवक गोपी बाबू की ओर मुँह करके दन्तावली विकसित कर बोला--"कौन, बड़े बाबू साहब! अच्छे तो हैं?" उसने दोनों हाथ जोड़ सिर नवा कर उन्हें प्रणाम किया।

तब रात के आठ बज गये थे। गोपीकान्त बाबू भोजन करने अन्दर नहीं गये। वहाँ मनोरमा (पत्नी) की जिरह—कहाँ जा रहे हैं, क्यो जा रहे हैं इत्यादि—सह्य नहीं होगी। भूख भी न थी। भोजन तो नाममात्र का करना था। इसलिए उन्हो ने नौकर को बाहर के कमरे में ही भोजन लाने का हुक्म दिया।

भोजन कर चुकने पर वे जाने के लिए तैयार होने लगे। हर बार काशी जाते समय जिस नौकर को साथ ले जाते थे वह भी जाने की तैयारी करने लगा। किन्तु बाबू ने उससे कहा—"इस बार तेरे चलने की जरूरत नहीं।" यह सुन कर वह उदास हो रहा।

कमलपुर से रेलवे-स्टेशन छ कोस पर है। तेज घोडे उस गहरे अन्धकार के भीतर से गाडी सरपट खींच कर ले चले। गाडी पर बैठे हुए दो मशालची अँधेरे को चीरते जाते थे। रास्ते में दो जगह घोडे बदले गये। दो ढाई घण्टे के भीतर भीतर ही स्टेशन के दर्शन हो गये।

गाडी खडी होने पर भी प्राय पाँच मिनट तक गोपीकान्त नीचे नहीं उतरे। वे सोचने लगे—ऐसा होना भी सम्भव है। शाम होने के बाद पुलिस मुझ को पकडने के लिए कमलपुर में आई हो और वहाँ उसने सुना हो कि मैं स्टेशन जा रहा हूँ। डेवढी पर मुझे नौकर-चाकर आदि अनेक लोगों से सुरक्षित देख यहाँ अकेला जान कर गिरफ्तार करने आई हो। इस प्रकार की चिन्ता से उनका कलेजा धडकने लगा।

आखिर उन्होंने डरते डरते गाड़ी से उतर कर देखा तो रात के बारह बज चुके थे। अब एक घण्टे के भीतर ही गाड़ी आवेगी, यह जान कर उन्हें कुछ धैर्य्य हुआ। उनके साथ सिर्फ एक चमड़े का बैग था। एक नौकर उसे हाथ में लेकर स्टेशन के भीतर रख आया। गोपीकान्त उस अन्धकार-मय प्लैटफार्म पर जा कर एक बेञ्च पर चुपचाप बैठ रहे।

किन्तु डर ने साथ न छोड़ा। वे सोचने लगे, अगर पुलिस पकड़ने ही आवेगी तो साथ में रुपया है। रुपया देकर छुटकारा पाने का यत्न करूँगा। रैनकलाल ने कहा है, संसार रुपये के वश है, पुलिस की तो कोई बात ही नहीं। अँधेरे में जूते की मच-मचाहट सुनते ही आप चौंक उठते थे। आखिर मन को दूसरी ओर फेरने के लिए बैग से चुरुट निकाल कर धूमपान करने लगे।

क्रमशः टिकट बँटने की घण्टी बजी। तब गोपीकान्त बाबू उठकर टिकट लेने चले। सोचा, टिकट-बाबू जान-पहचान का आदमी न हो तो कुशल है। बुकिंग-ऑफिस के भीतर जा कर देखा, टिकट-बाबू कोई पचीस वर्ष का युवा पुरुष है। सर्ज का काला कोट पहने टिकट बेच रहा है। चेहरे से परिचित सा मालूम नहीं हुआ। पास आकर कहा—मुझे काशी का सेकेन्डक्लास का एक टिकट दीजिए।

युवक गोपी बाबू की ओर मुँह करके दन्तावली विकसित कर बोला—"कौन, बड़े बाबू साहब! अच्छे तो हैं?" उसने दोनों हाथ जोड़ सिर नवा कर उन्हें प्रणाम किया।

यह देख कर गोपीकान्त का सर्वाङ्ग जल उठा। मन की उदासीनता को मन ही मे दबा कर बोले—जी हाँ, अच्छा हूँ। आप अपना कुशल कहिए।

"जी, आपके आशीर्वाद से सब आनन्द है। मुझे 'आप' कहते हैं। क्या मुझ को नहीं पहचाना ?"

"नहीं।"

"मेरा नाम चन्दू—चन्द्रभूषण गुप्त है। लडकपन से ही आपके छोटे भाई मोती बाबू के साथ स्कूल में पढता था। मोतीलाल के साथ आप के मकान पर कितनी ही दफ़े गया हूँ। कितने ही दिन रह कर वहाँ खाया-पिया और कितने ही नये नये खेल खेले हैं।" हँ हे कर के उसने फिर दाँत दिखा दिये।

गोपी ने कहा—हाँ, यह होगा। बहुत दिन की बात हुई, इसी से भूलता हूँ।

"मेरा घर भ्रमरपुर में है। वह गाँव दिलदारगज के बाबू की जमींदारी में है। आप के कमलपुर से बहुत दूर नहीं, समीप ही है। बडे भाग्य से आज आपके दर्शन हुए हैं। उसी बाल्यकाल में आप को देखा था—वह क्या आज की बात है। मैं हाल ही में यहाँ बदल कर आया हूँ। आप से क्या अर्ज करूँ—रेल की नौकरी में आराम नहीं है। भूत की तरह काम करना पडता है। उस पर भी एक पाँव रेल में तो एक पाँव जेल में। कभी जरा सी गफलत हुई कि बड़े घर में

निवास हुआ । अगर महीना ज्यादा मिलता वो भी एक बात थी । दुधार गाय की लात भी सही जाती है । पाँच वर्ष से नौकरी करता हूँ—पचीस रुपया महीना पाता हूँ । अब बहुत कहने पर भी साहब मासिक बढाना नहीं चाहता । रात भर जागते जागते परेशान हो गया हूँ । मेरा जो नया बड़ा साहब आया है उसकी —"

इतनी देर तक मुसाफिर मुट्ठी में रुपया-पैसा लिये बड़ी धीरता के साथ टिकट बँटने की खिड़की के पास खड़े थे । अब वे लोग हल्ला मचाने लगे । "बाबू टिकट दीजिए—हम कितनी देर से खड़े हैं । बाबू, गाड़ी आ रही है । बाबू, मुझे गाड़ी न मिलेगी तो बड़ा नुकसान होगा ।"—यह कह कर सब मिल करके चिल्लाने लगे ।

ओफ्, कितना चिल्लाते हो ? देता हूँ, सब्र करो । जरा ठहरो । चिल्ला कर सिर मत फोड़ो—कह कर युवक ने फिर गोपीकान्त बाबू की ओर देखकर कहा—क्या कह रहा था । हाँ, उसकी बात मत पूछिए । वह ऐसा पाजी है, ऐसा बदमाश है कि जरा जरा सी बात पर जुर्माना कर बैठता है । गत मास में मेरी तीन दिन की तलब काट ही ली । मामला सुन लीजिए ।

यात्री फिर अधीर होकर पुकारने लगे । इधर बाहर भी टन् टन् कर फिर घंटी बज उठी । सिगनल-मैन दरवाजे के पास खड़ा होकर बोला—बाबू, गाड़ी डाउन माँगता है ।

"ओह, मालूम होता है ट्रेन आगई । (उच्च स्वर से)

डाउन दो। आपको काशी का सेकेन्ड क्लास का टिकट चाहिए? सिङ्गल या रिटर्न ?"

"सिङ्गल ।"

"अच्छा" कहकर टिकट-बाबू. गोपी बाबू को टिकट देकर, अन्यान्य यात्रियों की ओर मुखातिब हुआ। कितनेही यात्रियों को टिकट मिलाही न था कि स्टेशन पर गाडी आ पहुँची। तब बाबू अनेक लोगों की दुहाई की आवाज सुनते हुए भी बडे जोर से खिडकी बन्द करके सिर पर टोपी दे और हाथ में लालटेन ले लम्बे डग से बाहर हो पडे।

गाडी पर चढ कर गोपी बाबू ने देखा, उसमें कोई नहीं है। यह देख कर वे बहुत खुश हुए। उन्होंने अब अपने को पुलिस के हाथ से निरापद समझ स्थिरता प्राप्त की।

बाहर अमावस का घोर अन्धकार छाया था। आकाश में तारे चमचमा रहे थे। खुली खिडकी की राह से ठंढी हवा आने लगी। गोपी बाबू बेञ्च पर दोनो पैर पसार, छाती को दोनो भुजाओं से आवेष्टित करके, बाहर की ओर देखने लगे। क्रम क्रम से उनके हृदय की धुकधुकी दूर हुई, माथे का पसीना सूखा। तब उन्होंने स्थिर भाव से विचार करने का अवसर पाया।

गोपी बाबू सोचने लगे—"आज वहाँ से कोई थाने मे नहीं गया है। शायद आज का दिन सोच विचार में ही गया है। सम्भव है कल सवेरे थाने मे जायँ। कल मेरा रौनक लाल

भी थाने में जा पहुँचेगा। रुपये के बल से रौनक अवश्य ही कोई सुव्यवस्था कर सकेगा। वह बड़ाही होशियार है। मामले मुकद्दमे की बातें भी खूब समझता है किन्तु दारोगा अगर उसकी बात न सुने, अगर रुपया लेने से इनकार करे तो? कोई कोई दारोगा रिशवत नहीं लेते। तब क्या होगा? तब तो अवश्य ही इजहार लिख कर तहकीकात शुरू कर देगा। कमलपुर में आकर सुनेगा, मैं काशी गया हूँ। किन्तु काशी का पता उसे मालूम ही नहीं होगा। मेरे कर्म्मचारी लोग दारोगा को यह कभी नहीं बतावेंगे कि मैं काशी में कहाँ ठहरता हूँ। हाँ, एक बात है। यदि मोती मेरा पता बता दे तो। यदि क्या, वह अवश्य ही लाला के बाग का पता बता देगा। तो कहीं कल साँझ की गाड़ी से दारोगा मुझे पकड़ने के लिए काशी को रवाना होगा। वह जब काशी पहुँचेगा तब मैं कहीं से कहीं चला जाऊँगा। दारोगा जी अपना सा मुँह लेकर अपने थाने को लौट जायँगे।

इस प्रकार सोचते सोचते गाड़ी के मन्द मन्द डोलने से और शीतल पवन के प्रभाव से गोपी बाबू ऊँघने लगे। तब वे बैग का सिर के नीचे रख कर सो रहे।

इकतीसवाँ परिच्छेद

नींद आने पर गोपीकान्त ने सपना देखा, मानों वे कलकत्ते की चौरङ्गी की सड़क पर टहल रहे हैं। अँगरेजी दूकानों मे भाँति भाँति की विकाऊ चीजें सजी हुई हैं। यह देख कर कुछ खरीदने की वासना प्रबल हो उठी। एक सोने-चाँदी की दूकान मे बाहर से काँच के किवाड लगे हैं। भीतर भाँति भाँति की सुन्दर घडी, चेन, अँगूठी, ब्रोच, नेकलेस आदि तरतीब से रक्खे हुए हैं। बीच बीच मे बिजली की रोशनी जल रही है। चीजों की चमचमाहट और पालिश देख कर आँखों मे चकाचौंध लग जाती है। गोपी बाबू वहाँ खडे होकर लालच भरी दृष्टि से उन चीजों को देखने लगे। इसी समय मालूम हुआ मानों जेब में किसी ने हाथ डाला हो। देखा तो एक गिरहकट उनका मनीबेग हाथ मे लिये भागा जा रहा है। वे 'चोर' 'चोर' कह करके उसके पीछे दौडने लगे। पर उनके पैर जल्द जल्द नहीं उठते थे। चौरङ्गी के फुट-पाथ पर मानों किसी ने खूब बालू फैला दी हो। दौडने में बाबू के पैर धँस जाते हैं। एकाएक देखा तो दो ओर से दो पुलिस-इन्सपेक्टरों ने आकर उन्हे पकड लिया। वे भयभीत होकर बोले—महाशय! मुझे क्यों पकडते हो? यह जो चोर भागा जा रहा है, इसे पकड़िये।

इन्सपेक्टर ने उन्हे एक घूसा जमा कर कहा—कौन चोर है और कौन साह, यह पीछे देखा जायगा। अभी थाने में चलो। यह कह कर और उनके हाथों में हथकडी पहिना कर खींचते खींचते थाने में ले गये और पुलिस-कमिश्नर के समीप हाजिर किया।

साहब बहादुर सो रहे थे। एकाएक जाग पडे। उन्होंने आँख मूँद कर जम्हाई ली, फिर तीन बार अँगडाई लेकर कहा—जब तक यह अपना अपराध स्वीकार न करे तब तक इसे हिंडोले पर झुलाओ।

पुलिस आफिस के आँगन में एक बहुत बडा हिंडोला झूल रहा था। उस पर कितने ही साहब और हिन्दुस्तानी स्त्री-पुरुष चढे हुए झूल रहे थे। जिनको कुछ जगह मिल गई वे लेट कर नींद ले रहे हैं और जिनको जगह नहीं मिली वे बैठे बैठे झूल रहे हैं। गोपीकान्त जिस तख्ते पर चढे थे उस पर गद्दी मढी हुई यथेष्ट जगह रहने के कारण वे पैर फैला कर सो गये। निद्रा के आरम्भ में ही हिंडोला एकाएक स्थिर हो गया। इधर रेलगाडी के एकाएक ठहरने से कुछ धक्का लगा। उससे गोपीकान्त की नींद टूट गई। तब उन्होंने सचमुच ही जाग कर सुना, बाहर स्टेशन के कुली लोग "शिवपुर, शिवपुर" पुकार रहे हैं।

गोपीकान्त झट उठ बैठे। आँखें पोंछ कर खिड़की से प्लेटफार्म की ओर देख कर सपने की बात सोचने लगे। पहले

समझा—यह दुःस्वप्न भयहेतुक है। पुलिस की बात सोचते सोचते सो गये थे, इसी से नींद में पुलिस से पकड़े जाने का स्वप्न देखा है। फिर 'स्वप्न-विचार' पुस्तक का मन्तव्य याद आया। स्वप्न एक मिथ्या कल्पना मात्र है, हम लोग जागृत अवस्था में जो कुछ सोचते हैं, वही रात में स्वप्न देखते हैं। गाढी नींद न आने के ही कारण लोग सपना देखते हैं। बैग खोल एक चुरुट निकाल कर गोपीकान्त धुवाँ खींचने लगे। कुछ देर में गाडी चल पडी। फिर वे सोचने लगे, क्या 'स्वप्न-विचार' की बात सचमुच ठीक है? कभी कभी देवता भी तो हम लोगो को स्वप्न में कुछ कह कर सावधान कर देते हैं—यह भी हो सकता है। हो सकता है, वहाँ की पुलिस ने मुझ को गिरफ्तार करने के लिए काशी के पुलिस-कप्तान को तार दिया हो। काशी पहुँचते ही मेरे हाथो में हथकडी पडेगी। बनारस स्टेशन पर यदि वे मेरे इन्तजार में खडे हो तो क्या आश्चर्य है। अगर उन्होंने मुझको वहाँ पकड लिया तो भारी अनर्थ हुआ। मैं शिवपुर में ही क्यो नहीं उतर पडा? अब तो कोई उपाय नहीं है। गाडी कुछ ही मिनटो में बनारस पहुँच जायगी। कदाचित् वहाँ प्लैटफार्म पर साक्षात् यम की मूर्ति धारण किये पुलिस सर्जेन्ट कान्सटेब्लों के साथ खडा होगा। मेरा यह टिकट देखते ही समझ जायगा, मैं ही वहाँ से आ रहा हूँ। विशेष परिचय की आवश्यकता न होगी। क्या करूँ? लो टिकट फेंके देता हूँ। कहूँगा, फैजाबाद से आ रहा हूँ या

किसी दूसरे ही स्टेशन का नाम वतला दूँगा। लखनऊ से डबल भाडा लेगा तो लेलेगा।—यह सोच कर गोपीकान्त ने पाकेट से टिकट निकाल खिडकी के बाहर हाथ करके छोड दिया। किन्तु उस समय हवा के एक झोंके ने टिकट को भीतर की ओर उडाकर गोपी बाबू के पैरो पर रख दिया।

यह देख कर वे बहुत प्रसन्न हुए। सोचा, पुलिस अभी तक स्टेशन पर नही, आई है। बल्कि खोये हुए टिकट का दुगुना महसूल देने के झमेले मे जो विलम्ब होता उसी समय पुलिस आ पहुँचती और मुझे पकड लेती। ईश्वर ने अच्छा किया। मैं स्टेशन पर उतर कर झटपट टिकट के मुसाफिरखाने मे जा बैठूँगा। जब उत्तर की गाडी खुलेगी तब टिकट ले कर चल दूँगा। फिर तो पुलिस का मेरा पता लगना कठिन है। मैं किसी तीर्थ मे जाकर विश्राम करूँगा।

इतने मे गाडी बनारस स्टेशन पर आ खडी हुई। गोपी-बाबू ने सभय दृष्टि से प्लेटफार्म की ओर देखा। वहाँ वे अपनी गिरफ़ारी का कोई लक्षण न देख गाडी से उतर स्टेशन के बाहर आ खडे हुए। एक गाडीवान ने कहा—बाबू आप कहाँ जायँगे?

"धर्मशाला म।"

फिर कुछ सोच कर बोले—हम राजघाट जायँग।

गाडीवान—चलिये बाबू, मैं ले चलता हूँ।

"क्या लोग?"

"बाबू आप जो खुशी से देंगे, लेलूँगा।" कह कर उसने बाबू के हाथ से बैग लेकर गाडी के भीतर रक्खा। इतने में दो तीन गाडीवानों ने—"कहाँ जायँगे बाबू साहब, मेरी गाडी पर आइए" कह कर उन्हें घेर लिया। परन्तु फल कुछ नहीं हुआ। प्रथम गाडीवान ने ललकार कर कहा,—"बाबू गाडी-भाडा कर चुके। मेरी गाडी सेकेण्डक्लास की है।" गोपी बाबू उसकी गाडी में जा बैठे।

गाडीवान ने घोडे की बाग ढीली की। उस समय भी भोर नहीं हुआ था। आकाश मेघाच्छन्न था। बूँदा-बाँदी होने लगी। कुछ देर में गाडी राजघाट पर आ खडी हुई। बाबू गाडी से उतर पडे। गाडीवान के हाथ में डेढ रुपया देकर बाबू घाट पर आये और गाडीवान सलाम करके अपनी गाडी पर आ बैठा।

राजघाट पर एक दफ्तर था। इसमें जाकर गोपी बाबू ने पता लगाया कि मोटर-बोट कब रवाना होगी। उसके चलने में अभी एक घंटे की देर थी। इन्होंने किराया देकर 'पास' लिया और किश्ती में जा बैठे। इस बोट का नाम राजहंसी था।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

गोपीकान्त ने कैबिन में जाकर देखा तो वहाँ बड़ी गरमी थी। इसलिए बैग को वहाँ रख कर वे खुली जगह में आ खड़े हुए। वहाँ चार-पाँच कुर्सियाँ रक्खी थीं। वही इन्टरमिडियेट क्लास था। तीसरे दर्जे के मुसाफिर कोई शतरंजी, कोई कम्बल बिछा कर और कोई खाली काठ के तख्ते ही पर बैठे हैं। कोई गप शप कर रहा है, कोई तम्बाकू पी रहा है, कोई चुपचाप मनही मन कुछ सोच रहा है, और कोई स्थिर भाव से किनारे की ओर देख रहा है। मध्यम श्रेणी की बेन्चों पर सात आठ भले आदमी बैठे हैं।

गोपीकान्त किश्ती की रेलिंग पकड़ कर किनारे की ओर देखने लगे। आधे घंटे में किश्ती काशी से निकल कर नीचे के घाट में आ लगी। वहाँ कुछ देर तक यात्रियों की अपेक्षा करके गंगापुर, गंगापुर से रामघाट पर नव बजते बजते आ पहुँची। गोपीकान्त इतनी देर तक कभी खुले मैदान में टहलते और कभी कैबिन में जाकर बैठते थे। अब उनके मन से पुलिस का डर बहुत कुछ जाता रहा। अब मिर्जापुर जाकर रेलगाड़ी पर चढ़ने से वे एकदम निश्चिन्त हो जायँगे। इस दरमियान में यदि काशी के पुलिस-कप्तान के नाम से उनकी गिरफ्तारी का तार आवेगा तो अब वह इनका पता नहीं पा सकेगा।

जब रामघाट मे नौका आ लगी तब गापी बाबू रेलिंग पकड कर यात्रियो का चढना-उतरना देखने लगे। देखा कि अन्यान्य यात्रियो के साथ एक साधु नौका पर चढ रहा है। उसके माथे पर खुब लम्बी लम्बी जटाएँ हैं जो वेणी के आकार में गुँथी हुई हैं। मूँछ-दाढी के बाल भी लम्बे और घने हैं। मुख का जो अश बालो से बचा था वह भस्म से लिपा पुता था। छाती, पीठ और दोनों बाहें भी भस्म-लेपन से खाली न थीं। बाये कन्धे मे एक झोली लटक रही थी। बाँयें हाथ मे चिमटा, मृगछाला और दहने हाथ मे ताँबे का कमण्डल लिये बैरागी बाबा ने नौका पर आकर यात्रियों को दर्शन दिया।

बैरागी ने आतेही चारो ओर दृष्टि दौडा कर यात्रियों का सक्षिप्त नेत्र-परिचय कर लिया। फिर पूरब मुँह खडे होकर उसने कडी आवाज में "शकर हर, शकर हर" पुकारा। उसका स्वर क्रोध से भरा हुआ मालूम हुआ। सुनने से एकाएक यही समझ पडा जैसे भगवान् महादेवजी इस बैरागी के निकट किसी गुरुतर अपराध के दोषी हो—उसके लिए सहज ही उद्धार नहीं पावेंगे।

नौका के सभी लोग बैरागी की भाव-भङ्गी देखकर हतबुद्धि हो उस की ओर देखने लगे। केवल मध्यम श्रेणी की बेञ्च पर बैठे हुए दो तीन नवयुवक व्यङ्ग की हँसी हँस रहे थे। बैरागी भी तिरछी चितवन से उनकी ओर देख कर उनके समीप ही मृगछाला बिछा कर जा बैठा। कितने ही यात्री उसके पास

आकर कहने लगे—बाबाजी, प्रणाम। "जीते रहो" कह कर वह उन लोगों को आशीर्वाद देने लगा। किन्तु उसका कण्ठस्वर बड़ा ही कठोर था और लाल लाल नेत्र मानो क्रोध से भरे हुए मनही मन कह रहे थे कि 'भस्म हो जाओ।'

कुछ देर इधर उधर देख कर बैरागी बाबा ने झोली से कुछ गाँजा और एक छोटी सी चिलम निकाली। बाँई हथेली पर गाँजा रख, वह दहने हाथ के अँगूठे से उसे खूब जोर से मलने लगा। सभी लोग टकटकी बाँध कर उसकी ओर देखने लगे। इसी समय दो नवयुवक धीरे से खिसक कर बैरागी के आसन के पास आ बैठे। एक ने पूछा—बाबाजी! आप गाँजा क्यों पीते हैं?

पहले तो यह जान पड़ा, मानो बाबाजी के कान में यह बात गई ही नहीं। क्योंकि उसने युवक की ओर भौंह तक नहीं उठाई। खूब मन लगाय गाँजा बना रहा था। और और लोगों ने युवक की ओर भर्त्सना-पूर्ण दृष्टि से देखा। प्राय दो मिनट के बाद प्रश्नकर्ता युवक के प्रति अपने लाल नेत्रों को स्थापित करके बाबा ने गम्भीर स्वर से पूछा—क्या कहा?

बाबाजी का विचित्र भाव देख कर युवक के मन में कुछ भय हुआ। वह विनीत भाव से बोला—पूछा था, गाँजा क्यों पिया जाता है—क्या उसमें कोई विशेष गुण है?

युवक के नम्रता भरे स्वर से बैरागी का क्रोध मानों बहुत कुछ शान्त हुआ। बाबा ने पूर्ववत् गम्भीरता-पूर्वक कहा—

"मन स्थिर होता है।" फिर उसने गाँजे को चिलम पर चढा कर उस पर आग जमाई। कई बार थोडो थोडो दम लगा कर एक बार खूब जोर से दम लगाई। मुखरूपी बिल से काले नागरूपी धुएँ को बारबार निकाल कर चिलम को नीचे रख करके बोला-कोई प्रसाद पावेगा ?

गोपीकान्त को इसका अभ्यास था, किन्तु वे यह काम बहुत ही छिप कर करते थे। उनके मन में प्रसाद पाने की इच्छा प्रबल हो उठी। फिर सोचा ऐसी खुली जगह में, इतने लोगों के सामने, गाँजा कैसे पीऊँगा ? इसके बाद उन्होंने मन में कहा—मैं भी तो इन्हीं लोगों में से एक हूँ। मुझे यहाँ कौन पहचानता है ? मैं एक नामी रईस हूँ—जमींदार हूँ, यहाँ मुझे पहचानताही कौन है ? यह सोच कर उन्होंने मस्तक झुका बैरागी के आसन के पास बैठ कर गाँजे की चिलम हाथ में लेली। गोपी बाबू प्रसाद पाने लगे और बाबाजी उनकी ओर स्थिर दृष्टि से देखने लगा। गोपी बाबू दम लगा कर जब बैरागी के हाथ मे चिलम देने लगे तब उसने कहा—तुम्हारे माथे में राज-दण्ड देखता हूँ।

यह सुन कर गोपीकान्त काँप उठे। पूछा—इसका क्या अर्थ ?

बैरागी ने कहा—जिस व्यक्ति के माथे में राजदण्ड का चिह्न रहता है वह या तो जेल जाता है अथवा राज्य का सुख भोगता है। तुम्हारा हाथ देखूँ ?

गोपीकान्त ने भयभीत होकर हाथ बढाया। बैरागी ने

बड़ी देर तक ध्यानस्थ होकर उनका हाथ देखा, फिर कहा—तुम्हारे मन में कोई भारी तकलीफ हो रही है।

गोपी—"जी हाँ।" वे सोचने लगे, इतने लोगों के सामने बैरागी बाबा कोई और गुप्त बात न कह बैठे। प्रकाश्य में कहा—बाबा, आपने जो जो फरमाया है, वह सब सही है। यह कह कर उन्होंने अपना हाथ खींच लिया और दूसरी बात उठाई।—बाबा, अभी आप कहाँ से आ रहे हैं?

"बैजनाथजी से—बाबा बैजनाथ का दर्शन करने गया था।"

"कहाँ जाइएगा?"

"मिर्जापुर। वहा मेरा एक शिष्य है। उसे एक बार दर्शन देकर तीर्थ घूमने जाऊँगा।"

"कहाँ कहाँ जाइएगा?"

"प्रयाग, हरद्वार, ऋषिकेश, लछमन-झूला। उससे और भी आगे जाऊँगा। तुम कहाँ जा रहे हो?"

"जी, मैं भी तो तीर्थ-यात्रा करने ही के लिए घर से निकला हूँ।"

"और भी कभी उत्तराखण्ड गये हो?"

"जी नहीं।"

बैरागी ने झोली से थोड़ा सा गाँजा निकाल गोपीकान्त के हाथ में देकर कहा—लो, बनाओ तो।

गोपीकान्त के मन में बैरागी के प्रति भक्ति उथल पड़ी थी। इस आदेश से अपने को कृतार्थ मान कर वे हाथ में गाँजा

लेकर मलने लग । वैरागी ने कहा—कभी उत्तर नहीं गये हो ?

" जी नहीं ।"

"तो मेरे साथ क्यों नहीं चलते ?"

"बाबाजी की यदि यह कृपा है तो मेरा यह सौभाग्य है ।"

" क्या तुम भी मिर्जापुर होकर जाओगे ?"

" जी हाँ । आजही साँझ की गाडी से रवाना हूँगा ।"

वैरागी हाथ मे गाँजे की चिलम लेकर बोला—आज ही ?

"जी हाँ,—आज न जाऊँ तो ठीक न होगा ।"

वैरागी ने चिलम पर आग चढाई । दो चार दम लगा कर कहा—भगतजी, ऐसा लक्षण तो नहीं दीखता कि मैं आज मिर्जापुर से रवाना होसकूँ । नहीं जानता, मेरा वह शिष्य घर पर है या नहीं । खाली हाथ तीर्थ जाना भी ठीक नहीं ।

"यदि इतनी ही बाधा हो तो बाबा को विलम्ब करने की जरूरत नहीं"—यह कह कर गोपी बाबू ने जेब से एक मुट्ठी रुपया निकाल, वैरागी के पैर के पास रख कर प्रणाम किया ।

बाबा ने रुपया उठा कर झोली मे रखलिये और अस्पष्ट स्वर मे गोपीकान्त को आशीर्वाद दिया । चिलम की आग बुझ गई थी । उसे फिर प्रज्वलित करके दो चार दम लगा कर उसने गोपी बाबू को प्रसाद दिया ।

तब नाव के अन्यान्य यात्रियों ने अपना अपना हाथ दिखाने के लिए बाबा को चारो ओर से घेर लिया ।

तेंतीसवाँ परिच्छेद

रैनकलाल नोटों को कपड़े में बाँध झट घोड़े पर सवार हो देवीपुर गया। साँझ होने के पहले ही दफ्तर में पहुँच कर उसने धनीराम को बुला भेजा।

धनीराम जब आया तब रैनकलाल दफ्तर के बरामदे में कुशासन पर बैठ, आँखें मूँद कर, हाथ में माला ले हरिनाम जपने लगा। एक बार आँखें खोलकर सिर्फ धनीराम को बैठने का इशारा करके फिर आँखें मूँद कर माला फेरने लगा। करीब आधे घंटे तक कपट-पूजा करके माला-सहित दोनों हाथ जोड़ कर दो मिनट तक प्रणाम किया। इसके बाद कहने लगा—जयराम, श्रीराम, सीताराम। हरिराम सत्य, सब मिथ्या—सब मिथ्या—हाँ कहो तुम किधर आये ?

धनीराम—हजूर ने बुला भेजा था, इसी से आया हूँ।

"जयराम, सीताराम, श्रीराम। हाँ इसीसे। तुमको ठीक बुलाया था, किन्तु भूल गया था। सब मिथ्या, सब मिथ्या। हरिनाम सत्य। तुम्हारे घर के नजदीक थोड़ी सी जमीन पड़ी है।"

"जी हाँ, उस जमीन में पहले शिवसेवक ग्वाला रहता था। वह फरार हो गया है। दो तीन साल से वह जमीन पड़ी है।"

"यह मालूम है। वह शिवसेवक कैसा आदमी था? असल बात तुमसे खोलकर कहता हूँ। मेरी इच्छा यहाँ एक फुलवाड़ी लगाने की है। भगवान् को फूल चढाना मैं बहुत पसन्द करता हूँ। फूल से पूजा करने पर मन को जितनी तृप्ति होती है उतनी कोरी माला सटकाने से नहीं होती। इसीसे तुम से पूछा है। शिवसेवक कैसा आदमी था। पापी मनुष्य की धरती पर फूलों के पेड़ लगा करके उनके फूलों से ठाकुरजी की पूजा करने में मेरा मन न लगेगा। वे फूल मुझे अपवित्र जान पड़ेंगे। और यदि सुनूँगा कि वह धार्मिक था देवता-ब्राह्मण में भक्ति रखता था, तो मेरे मन में कुछ भी अश्रद्धा नहीं होगी। इसीलिए तुमको बुलाया है। वह तुम्हारा पड़ोसी था, तुम उसका भला-बुरा सब जानते होगे। कहो वह कैसा आदमी था?"

बनीराम ने कुछ सोचकर कहा—जी, वह आदमी तो अच्छा ही था। मैं जहाँ तक जानता हूँ, वह पापी या दुष्ट न था। कभी किसी का कुछ नहीं बिगाड़ता था। हाँ, एक दफे मेरे गाय-बैल उसके खेत में घुस गये थे। उन्हें पकड़ कर वह काँजी-हाउस में बन्द कर आया था। छ गण्डा पैसा देकर मैं गोरू छुड़ा लाया था।

"गाँव छोड़ कर वह क्यों भाग गया? उसके नाम कोई वारट तो नहीं जारी हुआ था?"

"जी नहीं, उसका ससुर मातबर आदमी था। उसका कोई और वारिस न था। ससुर के मर जाने पर उसकी सब

जमीन इसी को मिली। इसी से वह यहाँ से चला गया। यहाँ उसके पास जो कुछ जगह-जमीन और गाय-बैल थे वे सब बेच-बाच कर ससुर के घर चला गया। वारंट वगैरह कुछ जारी नहीं हुआ था।"

रैनक ने सिर हिलाकर कहा—तब तो मालूम होता है, आदमी अच्छा था। यहाँ के थाने का दारोगा कौन है?

"हजूर, थाना यहाँ से चार पाँच कोस दूर है—उधर आना जाना नहीं होता। दारोगा का नाम नहीं जानता। सुना है, आज कल कोई मुसलमान है।"

"ओफ! मुसलमान? दारोगा से भेंट करने के लिए एक दिन थाने को जाना होगा। जमींदारी रखने पर दारोगा से मेल मुआफकत रखना जरूरी है। कौन जाने कब क्या हो। न हो तो कल ही चले चलें। दिन भी अच्छा है। दारोगा को क्या नजराना दिया जाय? मुर्गी के अंडे वगैरह तो मुझ से दिये न जायँगे। एक हाँडी में पाँच छ सेर उमदा घी लिये चलूँगा। तुम तो ग्वाले के लड़के हो, अच्छा घी पहचानते होगे। कल सवेरे पाँच छ सेर घी खोज कर ला दो। पर हो खूब बढ़िया। जो उचित मूल्य हो मुझसे अभी ले लो। जमींदार का जिलेदार होने के कारण मैं जोर-जुल्म करके आधे दाम पर न लूँगा—मैं इस किस्म का आदमी नहीं हूँ। यह काम मुझसे नहीं होगा। गरीबों को सताने के बराबर दूसरा पाप नहीं है। कहो, तुम पाँच सेर घी खरीद लाओगे?"

"जी हाँ । यह कौन बडी बात है ? कब चाहिए ?"

"कल सवेरे खा-पीकर चलेंगे । उसके भीतर ही घी आना चाहिए ।"

"बहुत अच्छा, ला दूँगा ।"

"अच्छा, रुपया अभी लोगे ?"

"कल ले लूँगा । देखें, क्या भाव मिलता है ?"

"अच्छा तो कल ही ले लेना । एक काम और करो न ?"

"आज्ञा कीजिए ।"

"तुम भी मेरे साथ चलो । मैं गाडी में जाऊँगा । तुम घोडे पर चलना ।"

धनीराम ने कुछ टालमटोल करके कहा—अच्छा, आपकी जैसी आज्ञा हो ।

रौनक कुछ देर तक चुप रहकर बोला—अगर तुमको अपने किसी काम में बाधा न हो— खुशी से मेरे साथ चल सको तो मेरे साथ चलना । नहीं तो यह समझ कर मत चलना कि मैं जमीदार का नौकर हूँ, और तुम गरीब रियाया हो इसलिए मैं तुम पर हुकूमत चला रहा हूँ । मैं उस स्वभाव का मनुष्य नहीं हूँ । सीताराम, सीताराम । तुमको साथ ले जाने का और कोई कारण नहीं -केवल यही कि मैं नया आदमी हूँ । कभी उधर गया नहीं और किसी को जानता-पहचानता नहीं । दो आदमी साथ रहने से मजेमें बातचीत करत करते चले जायँगे । इसीलिए तुमसे मेरा यह अनुरोध है ।

धनीराम—नहीं नहीं, मैं अपनी खुशी से ही चलूँगा। आपके ऐसे मालिक के साथ न जाऊँगा तो किसके साथ जाऊँगा?

रौनक—सीताराम, सीताराम—मैं मालिक कैसा? मैं तो नौकर हूँ। हाँ, तो बात यह है कि मैं तुम्हारी विनय देखकर खुश हुआ। तुम बड़े सज्जन हो, इसमें सन्देह नहीं। तुम कै भाई हो?

"हम दो भाई थे। मेरा छोटा भाई मनीराम अब नहीं है। वह दुनिया से विदा हो गया।"

"अरे! वह मर गया? क्या किया जाय संसार की गति ही ऐसी है। वह कुछ बाल-बच्चा छोड़ गया है।"

"कुछ नहीं। केवल उसकी स्त्री है।"

"तो तुमने अपने भाई की बहू को नैहर भेज दिया या घर में ही रक्खे हुए हो?"

धनीराम ने कुछ ठिठक कर कहा—कई महीने से वह अपने बाप के ही घर में है।

यह सुनकर रौनक विस्मित हुआ। वह मन में सोचने लगा, तो क्या वह औरत घर लौटकर नहीं आई। कहाँ गई? क्या हुई? कहीं सङ्कोच से डूब तो नहीं मरी या अकेली ही थाने में चली गई! किन्तु बाहर इस चिन्ता का कुछ भी भाव प्रकाश न कर के बोला—उसके बाप का घर कहाँ है?

"वह यहाँ से दो दिन का रास्ता है।"

"गाँव का नाम क्या है?"

बड़ी अनिच्छा के साथ थूक घोंट कर धनीराम ने कहा—रजौली ।

"अच्छा तो कल दस बजे खा-पीकर घी लिये आना।"–कह कर रौनकलाल ने धनीराम को रुख़सत करके अपने सोने की कोठरी में प्रवेश किया। कमलपुर से लाये हुए बैग से शराब की बोतल निकाल कर उसने कुछ मद्यपान किया। इस के बाद तख़्त पर बैठकर हाथ में हुक्का ले भाँति भाँति की चिन्ता करने लगा।

वह सोचने लगा—लीलावती कहाँ गई ? कामेश्वरनाथ के मन्दिर के पास जहाँ उसे छोड़ दिया था वहाँ से यह गाँव बहुत से बहुत डेढ़ कोस होगा। रास्ता सीधा है—रास्ता भूलकर कहीं चली गई हो, यह भी सभव नहीं। उसको जैसा भय दिखा दिया है, (कि अगर किसी से यह बात कहेगी तो तेरी जान न बचेगी) इससे वह थाने में जाकर नालिश करेगी यह भी मन नहीं मानता। जो हो, कल थाने में जाने से मालूम हो जायगा कि नालिश दायर की है या नहीं। सोचा था, यह हजार रुपया साफ़ बच जायगा–देखें क्या होता है। यह भी हो सकता है कि धनीराम ने लीलावती को अपने घर में ही छिपा रक्खा हो। लीलावती बड़े तड़के यहाँ आ पहुँची होगी। यद्यपि उसके घरवालों ने लोक-लज्जा के भय से गाँव में कह दिया होगा कि वह अपने बाप के घर गई है, तो भी उसके आने पर उन्होंने अवश्यही पूछा होगा, कि तू इतने दिन कहाँ

क्या करती थी। और लीलावती ने किसी का नाम धाम कुछ नहीं बताया होगा, इससे उनका सन्देह और भी बढ गया होगा। इस विषय की कोई निश्चित व्यवस्था होने तक शायद उसे बन्द कर रक्खा हो। तब तो इस बात का पता लगाना जरूरी है। अच्छा एक काम करता हूँ। दो घडी रात और बीते तो घी का रुपया देने के बहाने एकाएक उसके घर के भीतर चला जाऊँ। जो लीलावती होगी तो उसके रहने की कुछ न कुछ आहट अवश्य ही मालूम होगी।

यह निश्चय करके रौनकलाल एक घण्टे के बाद पाँच छ रुपया लेकर अँधेरे में धनीराम के घर की ओर चल पडा। उसने हाथ में बाँस की छडी लेली। कन्धे पर अँगोछा रख लिया। वह सूने रास्ते से तारों की धुँधली रोशनी में चुपचाप निकल पडा। धनीराम के घर के दर्वाजे के पास पहुँच कर चुपचाप खडा हो कान देकर सुनने लगा कि भीतर कोई बातचीत होती है या नहीं। दो तीन मनुष्यों के कण्ठ स्वर सुन पडे। किन्तु साफ साफ बातें नहीं सुन पडीं। ऐसा मालूम हुआ जैसे वे आपस में लडते-झगडते हों। तब रौनक ने धीरे धीरे किवाड़ को ढकेला—किवाड खुल गया। आँगन में खूब अँधेरा था। वह उस आँगन में जा खडा हुआ। देखा कि ऊँचे उसारे में बैठे तीन आदमी परस्पर बातें कर रहे हैं। घर के भीतर चिराग जल रहा था। उसकी मामूली रोशनी उसारे में आ रही थी। उस में कोई पहचाना नहीं गया। रौनक ने सुना, एक पुरुष कह

रहा है—"सचमुच ही अगर तुम्हारा कोई दोष नहीं है तो स्पष्ट क्यो नहीं कहती कि तुम को किसने पकड रक्खा था ?" रौनक ने पहचाना, यह धनीराम की आवाज है ।

लीलावती ने कहा—मैं यह नहीं कह सकती ।

एक स्त्री ने कहा—"अभागिनी तू क्यो नहीं कह सकती ! तेरा हृदय पवित्र होता तो तू सच कह सुनाती । नहीं कहती है, इससे जान पडता है कि तेरे मन मे पाप जरूर है ।—इसकी बात का विश्वास मत करो । यह बिलकुल झूठ बोलती है ।—सच सच बोल, क्या बात है । नहीं तो सिर मुडा गधे पर चढा गॉव से निकाल दूँगी ।" रौनक ने अनुमान किया, यह धनी-राम की स्त्री की बोली है ।

लीलावती रोते रोते बोली—मुझे कहने मे क्या था ? किन्तु काली माई ने मना कर दिया है, इसी से नहीं कहती ।

धनीराम—हूँ, तू बडी धर्मात्मा है इसी से तुझ को काली माई ने दर्शन दिया है । असल बात नहीं कहोगी तो अभी झाड़ मार कर घर से निकाल दूँगा ।

लीलावती कुछ रिसाकर बोली—तुम घर से निकालने वाले कौन ? क्या यह घर मेरा नहीं है, अकेले तुम्हारा ही है ?

धनीराम की स्त्री बोली—तू मरती भी नहीं, अपने जेठ के साथ जवाब-सवाल करते तुझे लाज नहीं लगती ।

धनीराम ने क्रुद्ध होकर कहा—इसकी बात तो सुनो। मेरे घर पर अपना दावा दिखाती है। यह इसके बाप का घर है। इसी घडी मेरे घर से निकल जा। इज्जत का खयाल है तो अभी मेरे घर से चली जा—नहीं तो ऐसी मार मारूँगा कि जिसका नाम और चोटी पकड घसीट कर घर से निकाल दूँगा।

लीलावती—खबरदार, मेरी देह छूएगा तो अच्छा न होगा। मैं अभी जाकर जिलेदार साहब के यहाँ नालिश करूँगी।

धनीराम उसे चिढा कर बोला—जिलेदार साहब के यहाँ जाकर नालिश करेगी? जिलेदार मुझे फाँसी पर लटका देंगे? वह जजमजिस्टर हैं न! जा अपने बाप जिलेदार के पास।

इसी समय रौनकलाल खाँसकर बोला—धनीराम।

धनीराम चकित दृष्टि से आँगन की ओर देखकर बोला—कौन है?

रौनक ने क्रोध करके कहा—धनीराम, मैं समझता था कि तू भला आदमी है। पर तू तो बदमाशों का सरदार है।

धनीराम कण्ठस्वर से ही पहचान गया कि जिलेदार हैं। तथापि सन्देह दूर करने के लिए वह झट चिराग ला आँगन में जा रौनकलाल को खडा देख काँपते काँपते बोला—यह तो जिलेदार साहब हैं। राम राम सरकार।

रौनकलाल ने कम्पित स्वर में कहा—दगाबाज, जालिया, चोर! अभी तो तू मुझसे कह आया है कि भाई की बहू अपने बाप के घर है।

रहा है—"सचमुच ही अगर तुम्हारा कोई दोष नहीं है तो स्पष्ट क्यो नहीं कहती कि तुम को किसने पकड रक्खा था ?" रौनक ने पहचाना, यह धनीराम की आवाज है।

लीलावती ने कहा—मैं यह नहीं कह सकती।

एक स्त्री ने कहा—"अभागिनी तू क्यो नहीं कह सकती ! तेरा हृदय पवित्र होता तो तू सब कह सुनाती। नहीं कहती है, इससे जान पडता है कि तेरे मन मे पाप जरूर है।—इसकी बात का विश्वास मत करो। यह बिलकुल झूठ बोलती है।—सच सच बोल, क्या बात है। नहीं तो सिर मुडा गधे पर चढा गाँव से निकाल दूँगी।" रौनक ने अनुमान किया, यह धनीराम की स्त्री की बोली है।

लीलावती रोते रोते बोली—मुझे कहने में क्या था ? किन्तु काली माई ने मना कर दिया है, इसी से नहीं कहती।

धनीराम—हाँ, तू बडी धर्मात्मा है इसी से तुझ को काली माई ने दर्शन दिया है। असल बात नहीं कहोगी तो अभी झाड़ू मार कर घर से निकाल दूँगा।

लीलावती कुछ रिसाकर बोली—तुम घर से निकालने वाले कौन ? क्या यह घर मेरा नहीं है, अकेले तुम्हारा ही है ?

धनीराम की स्त्री बोली—तू मरती भी नहीं, अपने जेठ के साथ जवाब-सवाल करते तुझे लाज नहीं लगती।

धनीराम ने क्रुद्ध होकर कहा—इसकी बात तो सुनो। मेरे घर पर अपना दावा दिखाती है। यह इसके बाप का घर है। इसी घड़ी मेरे घर से निकल जा। इज्जत का खयाल है तो अभी मेरे घर से चली जा—नहीं तो ऐसी मार मारूँगा कि जिसका नाम और चोटी पकड़ घसीट कर घर से निकाल दूँगा।

लीलावती—खबरदार, मेरी देह छूएगा तो अच्छा न होगा। मैं अभी जाकर जिलेदार साहब के यहाँ नालिश करूँगी।

धनीराम उसे चिढ़ा कर बोला—जिलेदार साहब के यहाँ जाकर नालिश करेगी? जिलेदार मुझे फाँसी पर लटका देंगे? वह जजमजिस्टर हैं न! जा अपने बाप जिलेदार के पास।

इसी समय रौनकलाल खाँसकर बोला—धनीराम।

धनीराम चकित दृष्टि से आँगन की ओर देखकर बोला—कौन है?

रौनक ने क्रोध करके कहा—धनीराम, मैं समझता था कि तू भला आदमी है। पर तू तो बदमाशों का सरदार है।

धनीराम कण्ठस्वर से ही पहचान गया कि जिलेदार है। तथापि सन्देह दूर करने के लिए वह झट चिराग ला आँगन में जा रौनकलाल को खड़ा देख काँपते काँपते बोला—यह तो जिलेदार साहब हैं। राम राम सरकार।

रौनकलाल ने कम्पित स्वर में कहा—दगाबाज, जालिया, चोर! अभी तो तू मुझसे कह आया है कि भाई की बहू अपने बाप के घर है।

धनीराम—जी हाँ, वाप के ही घर में थी। आज ही आई है।

"तो उसे इस तरह क्यों धमका रहा है.?"

धनीराम—जी-जी, कुछ तो नहीं कहा है । वहाँ से अकेली आई है। भले घर की औरत को क्या इस तरह आना मुनासिब था ?

"कुछ नहीं कहा है हरामजादे ! कहाँ गई वह ? भले घर की वेटी, तनिक इधर आ तो।"

"लीलावती लज्जा से सिकुड कर आँगन में आ खडी हुई।"

रैनक ने कहा—कहो मनीराम की दुलहिन, क्या हुआ है?

लीलावती लजाती हुई बोली—जब से वे मरे हैं तब से मेरे जेठ-जिठानी दोनों मुझे बहुत दुख देते हैं। मारते-पीटते हैं, गाली देते हैं, खाने को नहीं देते। अभी कहा है, घर से निकाल देंगे। कहिए सरकार, मुझे ये घर से कैसे निकाल देंगे ? घर क्या इन्हीं का है, मैं इस घर की कोई भी नहीं ? दुहाई जिलेदार साहब की । आप इसका इन्साफ कीजिए ।

रैनक—मैं वेशक जज-मजिस्टर नहीं हूँ, किन्तु जमींदार का नायब तो हूँ । मैं इसका विचार अवश्य करूँगा । मैं नहीं करूँगा तो कौन करेगा ? मैं इसका पक्का विचार किये देता हूँ। क्यों रे धनीराम, तुम दो भाई थे न ?

"जी हाँ।"

"तो देखो, तुम्हारा घर-बार जमीन जो कुछ है उसका

आधा तुम्हारी इस बहू का है। यह कानून की बात है। अलीगढ के कानूनसार में भी यही लिखा है।"

धनीराम—और जमींदार की मालगुजारी मैं जो अकेला देता हूँ।

"इससे क्या हुआ! मालगुजारी क्या तू अपने बाप के घर से देता है? जमीन की उपज से ही तो देता है।"

"अच्छा, मैं जो इतनी मिहनत करता हूँ! सिर का पसीना पैर से बहा कर जमीन जोतता हूँ, फसल उपजाता हूँ सो।"

रौनक ने दाँत पीस कर कहा—जमीन तू नहीं जोते-बोवेगा तो तेरे घर की बहू-बेटी जोते-बोयेगी? मूर्ख! तू तो विकट कानूनी मालूम होता है। जो कहता हूँ सो सुन—तेरी बहू जब तक जीती है तब तक जमीन की आधी पैदावार उसकी है। यह जान कर अपनी बहू को आदर भाव से यत्न-पूर्वक घर में रखना चाहते हो तो रक्खो, नहीं तो कहो, मैं कलही जमीन और लगान बाँट कर आठ आना हिस्सा तुम्हारी बहू के नाम से लिख पढकर दाखिल-खारिज कराये देता हूँ। वह अपने बाप के घर चली जाय। मैं उसके हिस्से की ज़मीन का बन्दोबस्त कर दूँगा। वह बाप के घर में पाँव पर पाँव रक्खे, बैठी बैठी सुख से जमीन की उपज खाय। कहो, क्या कहते हो?

यह सुन कर धनीराम कुछ देर तक चुप हो रहा, फिर बोला—मैं तो उसे किसी तरह का दुःख नहीं देता हूँ। कहे न, मैंने उसे क्या दुःख दिया है?

लीलावती बोली—मुझको भर पेट भोजन नहीं देते। बिनाही अपराध के बात बात में गाली देते हैं। मुझे मारते तक हैं।

रौनक हाथ की छड़ी आँगन में फेंक कर बोला—क्यों रे महापापी, स्त्री के ऊपर तू हाथ उठाता है? मूर्ख! स्त्री भगवती का स्वरूप है, यह नहीं जानता? तुझे नरक में भी जगह नहीं मिलेगी।

धनीराम—यह झूठ बोलती है। मैंने इसे कब मारा है? इसकी बात पर विश्वास न कीजिए।

"विश्वास क्यों न करूँगा? अभी तो मैंने अपने कान से सुना है—तू कह रहा था, निकल मेरे घर से, नहीं तो वह मार मारूँगा कि जिसका नाम, चोटी पकड़ घसीट कर घर से बाहर कर दूँगा।—अरे तू तो गङ्गाजी में पैठ कर भी झूठ बोल सकता है। मैंने इस आँगन मे खड़े होकर आदि से अन्त तक सब बातें सुनी हैं। तू समझता है, जिलेदार साहब बड़े सीधे सादे आदमी हैं, दिन भर पूजा पाठ में बिताते हैं, किसी को भला-बुरा नहीं कहते। डाँट-डपट दिखाना नहीं जानते। पर ऐसा मत समझ। जिलेदार साहब भले के लिए भले हैं। किन्तु बदमाशों और अधर्मियो के लिए राक्षस से भी बढ कर निर्दय हैं। मेरी असली सूरत तुम लोगो ने अभी तक नहीं देखी है। तुझको मैंने भला आदमी समझा था, इसीलिए तेरे घर पर इस तरह आगया, नहीं तो मैं कहीं जाता भी हूँ। एकाएक मुझे

इस बात का स्मरण हो आया कि धनीराम थी का रुपया कुछ लेही नहीं गया, चलो खुद ही जाकर दे आऊँ। इसीसे पाँच रुपया तुझको देने आया था। यह देख"—कह कर रौनक ने रुपये निकाल कर दिखला दिये।

धनीराम सिर नीचा करके खड़ा हो रहा।

रौनक ने कहा—क्या कहता है ? तू हिस्सा बाँट देगा या इसे यत्न-पूर्वक घर में रक्खेगा ? कभी किसी तरह का दुःख तो नहीं देगा ?

"यत्न से क्यो नहीं रक्खूँगा ? आदर क्यो न करूँगा ? क्या वह मेरी अपनी नहीं है ? वह क्या पराये घर की है ? मेरा जो वह सगा भाई था उसीकी यह स्त्री है। क्या मैं इसे कभी दुःख दे सकता हूँ या इसका अनादर कर सकता हूँ ? अगर आज मेरा भाई जीता रहता।"—कहते कहते धनीराम ने रोने का उपक्रम किया। दोनो हाथो से मुँह ढक कर रोते रोते बोला—अरे मेरा भैया मनीराम—तू कहाँ गया रे—अरे तू कहाँ चला गया रे—मुझे भी अपने साथ क्यो नहीं लेता गया।

रौनक ने कहा—ठहरो, ठहरो, यह सब झूठ मूठ का रोना छोड़दो। बहुत माया मत फैलाओ। जो मैंने कहा है, वह करोगे तभी कुशल है। अगर बहू को किसी तरह का कष्ट देने की बात सुनूँगा तो तुम्हारी सारी सम्पत्ति का आधा हिस्सा जप्त करके इस बेवा औरत को दे दूँगा। खबरदार ! रात हुई, अब मैं जाता हूँ। ये पाँच रुपये अपने पास रख लो। इन रुपयो

का घी खरीद कर कल दस बजे के भीतर दफ़्तर में दाखिल करना। घी खूब बढ़िया हो। अय भले घर की बेटी! तू इसके घर में खूब जमकर बैठी रह। अगर तुमको यह तकलीफ दे तो मुझसे आकर कहना। मैं जमींदार का नायब हूँ—प्रजा का माँ-बाप हूँ। मैं अपने इलाके में किसी तरह का अत्याचार—अधर्म नहीं होने दूँगा। सीताराम सीताराम श्रीराम।

धनीराम ने हाथ जोड़ कर कहा—जिलेदार साहब, गरीब के घर में चरण लाये तो एक चिलम तम्बाकू भर लाने की आज्ञा देकर दास को कृतार्थ कीजिए।

"नहीं, अब नहीं ठहरूँगा। रात बहुत गई। अब भी मुझे एक सहस्र तारक-मन्त्र का जप करना है। एक सहस्र नाम लेकर तब कुछ खाकर सोऊँगा।" यह कह कर रैनक चला गया।

भोजनादि के अनन्तर शयन-गृह में जा भीतर से किवाड़ बन्द करके रैनक ने गोपीकान्त के दिये हुए नोट निकाले। फिर चश्मा लगा कर वह उन्हें बड़ी उमङ्ग के साथ गिनने लगा। बैग से बोतल निकाल कर बची हुई शराब पेट में रख ली। कुछ नशा आने पर नोटों को सामने बिछा कर गद्गद कण्ठ से कहने लगा—यह हजार रुपया मेरा हुआ। पुलिस को नहीं दूँगा—किसी को नहीं दूँगा। यह कुल रुपया मेरा—मेरा, मेरा। जिसकी बुद्धि उसका रुपया। बुद्धि है तो सब कुछ है।

चौंतीसवाँ परिच्छेद

रौनकलाल आज झटपट स्नान-भोजन करके गाडी पर सवार हो कर दारोगा से भेट करने चला। धनीराम भी एक टट्टू पर चढ कर उसके साथ गया। एक नौकर घी लेकर पहलेही रवाना हो चुका था।

देवीपुर से थाना तीन कोस था। दोपहर के समय रौनक वहाँ जा पहुँचा। थाने का मकान एक तालाब के घाट पर था। सामने बड के दो बडे पेड थे। एक पड के नीचे रौनकलाल की गाडी ठहराई गई। गाडी से उतर कर रौनक ने देखा, खडाऊँ पहिने एक शख्स थाने के बरामदे में टहल रहा है। रौनक ने बरामदे में जा अपना परिचय देकर उससे जान-पहचान की।

वह थाने का हेड कान्सटेब्ल था। हेड कान्सटेब्ल को लोग जमादार कहते हैं, किन्तु रौनकलाल ने कहा—"अच्छा, आप इस थाने के हेड कान्सटेब्ल—छोटे दारोगा हैं। अच्छा, अच्छा। आज आपकी भेट से मुझे बडा हर्ष हुआ। बडे दारोगा साहब का नाम क्या है ?

"शेख शहादत हुसेन।"

"कहाँ के रहनेवाले हैं ?"

"मिर्जापुर जिला।"

"दारोगा साहब कहाँ हैं ?"

"सोरहे हैं।"

"कब उठेंगे ?"

"अब ज्यादा देर नहीं है। क्यों! कहीं दगा-फसाद या खून-खराबी तो नहीं हुई है।"

रौनक—नहीं, नहीं। यह कुछ नहीं हुआ है। मैं देवीपुर सर्कल का जिलेदार होकर आया हूँ। मन में आया कि एक बार आप लोगों से भेट मुलाकात कर आऊँ। इसी से आया हूँ।

धनीराम के हाथ की हाँडी को जमादार सतृष्ण दृष्टि से देखने लगा। फिर पूछा—इसमे क्या है ?

मानों रौनक ने समझा ही नहीं इस भाव से बोला—क्या ?

जमादार ने उँगली से दिखा कर कहा—इस बर्तन में क्या है ?

"बर्तन मे! इसमें दारोगाजी के लिए थोडा सा घी लाया हूँ। अपनी जमीदारी का खालिस घी है, ताजा भी है।"

जमादार ने कहा—खालिस घी ? वाह! खालिस घी तो हम लोगो को ऑख से देखना दुर्लभ होगया है। क्षुद्र बनिये अक्सर घी में चर्बी मिला दिया करते हैं। मेरी फूफी ने जब से यह सुना है तब से उन्होंने घी खाना बिलकुल छोड दिया है। वे कहती हैं, मै विधवा हूँ, अन्त में यह चर्बी मिला घी खाकर क्या अपना परलोक बिगाडूँगी! रात को कुछ पूरियाँ खालेती थीं, सो वह भी गई। अब सिर्फ दूध मात्र आहार है। कुछ फल मिल गये तो खा लेती हैं। हिन्दुओं का धर्म बचना बडा कठिन

है। दारोगाजी तो मुसलमान हैं। चर्बी मिला घी खाने पर भी उनकी जात नहीं जायगी।

जमादार के मन का भाव रौनक़ समझ गया। कहीं इशारा छोड़ कर खुलासा तौर से ही वह घी न माँग बैठे, इस आशङ्का से रौनक़ ने कहा—मैं नहीं जानता था कि आप यहाँ हैं। जो जानता तो आपके लिए भी एक हाँडी घी लिये आता। राम राम! घी के बिना आपकी फ़ूफी को बहुत तकलीफ हो रही है!

"तकलीफ तो होही रही है। क्या करूँ! आपसे होसके तो एक हाँडी घी भेज दीजिएगा। जब आप जाने लगेंगे तब चौकीदार को साथ कर दूँगा। पाँच छ सेर मिलने ही से अभी काम चल जायगा। और ज्यादह की जरूरत नहीं। दरकार होगी तब आपको फिर खबर दूँगा। आपके पहले जो मथुरा बाबू थे, उनके साथ मेरी बडी दोस्ती थी। उस तरफ जब कभी जाने का मौक़ा मिलता था तब देवीपुर का दफ़्तर ही मेरे रहने का अड्डा होता था। मथुराप्रसाद बाबू तुरन्त तालाब से बडी बडी मछली पकडवा मँगाते थे, बकरा कटवाते थे— खूब कलिया पुलाव खिलाते थे।

रौनक़—यह तो होनाही चाहिए। आप लोगों की खातिर न की जायगी तो किसकी की जायगी! मैं भी आप से अभी से कह रखता हूँ—जब कभी उधर से निकले तो इस गरीब को दर्शन देना न भूलिएगा।

जमादार—जरूर जरूर । आप भी तो बडे सज्जन जँचते हैं ।

इसके बाद और तरह की गपशप होने लगी । कुछ देर म दारोगा साहव वाहर आये । दिन में सोने के कारण उनकी आँखें लाल थीं। उनके पीछे पीछे एक नौकर आ रहा था । उस के हाथ मे एक बनसी थी । रोज दोपहर के बाद दारोगा साहव तालाव मे वनसी खेलते हैं और मछली पकडते हैं।

उनको देखते ही जमादार ने कहा—ये आपसे मिलने को आये हैं ।

दारोगा ने कफ-लिप्त घरघराते हुए कण्ठ से कहा—ये कौन हैं ?

"ये देवीपुर के जिलेदार होकर आये हैं । पहले जो मथुरा-बाबू थे उन्हीं की जगह पर काम कर रहे हैं ।"

"गोपीकान्त बाबू के जिलेदार हैं ?"

रौनक ने कहा—जी हाँ ।

"आपका घर कहाँ है ?"

"गाजीपुर के इलाके में ।"

"यहाँ से आपका घर दूर है ।"

रौनक ने बाँये हाथ से पेट ठोंक कर कहा—इसी के लिए यहाँ आना पडा ।

दारोगा ने हँस कर कहा—ठीक है । हम लोग भी इसी के लिए अपना अपना मुल्क छोड कर इस देश में आये हैं। यहाँ किस काम से आना हुआ है ?

कोई विशेष कार्य नहीं। अभी नया आया हूँ, इसी से सोचा, आप लोगों से एक बार मिल आऊँ। मेरे मालिक का भी हुक्म है—'दारोगा, मुफस्सिल के हाकिम होते हैं। उन लोगों के साथ सदा मिले-जुले रहो जिसमें उन लोगों के मन में किसी तरह की नाराजगी न होने पावे। क्योंकि दिहात की रक्षा का कुल भार उन्हीं लोगों के ऊपर रहता है। थोड़ा सा खालिस घी नजराना लाकर हुजूर के पास हाजिर हुआ हूँ।'

अब क्या था, दारोगाजी का चेहरा खिल उठा। बोले—अच्छा, आपके मालिक गोपीकान्त बाबू बड़े ही खुशमिजाज आदमी हैं। उनकी खातिरदारी से मैं निहायत खुश हुआ। उनको मेरा बहुत बहुत सलाम कहिएगा। अरे कोई है—जा, यह घी की हाँडी भीतर दे आ। जिलेदार साहब, आपको मछली पकड़ने का शौक़ है?

रौनक़—शौक़ तो खूब ही था। पर वह जमाना गया। अब अनेक प्रकार के कामों के मारे मछली पकड़ने को समय ही नहीं मिलता। अब वह उम्र भी नहीं रही। जब आप की उम्र का था, तब खूब शौक था। दिन-रात मछली पकड़ने ही की धुन में लगा रहता था।

दारोगा साहब रौनक से उम्र में कम से कम चार पाँच वर्ष बड़े थे। वे मुस्कुराकर मन में कहने लगे—यह मुझे अभी जवान ही समझ रहा है। मैंने जो खिजाब लगा कर दाढ़ी-मूँछ के सफेद बालों को काला कर लिया है, यह जवानी की

नजर में आया ही नहीं ।—प्रकाश्य में कहा—आप की ही ऐसी कौन बहुत उम्र है । हम और आप एक ही उम्र के होंगे । चलिए, मैं मछली पकडूँगा, आप बैठे बैठे तमाशा देखिएगा । वहाँ गपशप भी होगी ।

तालाब के पश्चिम घाट पर, पेड की छाँह में, कुछ जगह बैठने के लायक बनाली गई थी । वहाँ कम्बल बिछाया गया । उसपर दारोगा साहब बनसी खेलने बैठे । नौकर लग्गी और चारा रख गया, फिर तम्बाकू भर कर ले आया । दारोगा साहब पानी में बनसी डाल फ़र्शी हुक्का पीने लगे ।

गोपीकान्त बाबू की जमींदारी के सम्बन्ध में बातचीत होने लगी । दारोगा ने रौनक से कहा—आप अपने मालिक से कहिएगा, अगर किसी बदमाश रियाया को दबाने की या और किसी तरह की जरूरत हो तो मुझे खबर दे ।

रौनक—खबर तो दूँगा ही । हम लोग तो आप ही का पूरा भरोसा रखते हैं । आप लोगों की सहायता के बिना क्या हमें एक पग चलने का सुभीता है ? एक किसान का दिमाग आसमान पर चढा हुआ है उसे ठीक करना बहुत जरूरी है । जब हुजूर ने अपने मुँह से जिक्र किया है तब अर्ज करने में क्या हर्ज है ? मेरे इलाके में शकरपुर एक गाँव है। उस गाँव में हरिदास ग्वाला रहता है । वह बडा ही शेखीबाज है । हलकी जाति का लडका दो अक्षर लिखा-पढा है । वह अपने सामने किसी को

८ समझता ही नहीं ।

इसी समय बनसी की पैरकुआ हिलने लगी। रौनक़ क-हाथ से चुप रहने का इशारा कर के दारोगा ने खूब जोर से लग्गी पकड़ी। पैरकुआ डूबते ही लग्गी को ऊपर उठाया। खाली बनसी निकल आई। "ओह भाग गई" कह कर दारोगा ने फिर बनसी में चारा लगाया और डोरे को पानी में फेंक कर रौनक से पूछा—क्या नाम बताया?

"हरिदास। शकरपुर का हरिदास।"

"क्या बड़ा पाजी है?"

"बड़ा ही पाजी है, शैतान है। किसी औरत के मामले में बाबू उस पर बहुत नाराज हैं। मुझसे कहा है—अगर उस पाजी को किसी तरह एक बार बड़ा घर दिखादो तो मेरे मन का क्रोध मिटे। मैंने कहा—हुजूर, यह कौन बड़ी बात है। कुछ रुपये खर्च करने ही से यह हो सकता है। कहिए तो थाने में जाकर दारोगा साहब से मुलाकात करके इन्तजाम कर आऊँ। बाबू ने कहा—अच्छा तो जाओ। दारोगाजी से मेरा सलाम कहना। अगर वे मेरा काम कर देंगे तो उनको पान खाने के लिए दो सौ रुपया दूँगा। बल्कि सौ रुपये अभी पेशगी लेते जाओ।

दारोगा साहब की बनसी की पैरकुआ फिर हिलने लगी। किन्तु उस ओर न देख करके वे बोले—तो आप रुपया लाये हैं?

"जी नहीं, साथ तो नहीं लाया। दफ़र में रक्खा है। हुजूर

- मुलाकात तो कभी थी नहीं। सोचा, यह कहने से कदाचित् मैं ही विपद में फँस जाऊँ। हाकिम का मन पाये विना क्या ये बातें कही जाती हैं। ऐसे भी कितने ही अकाल-कोहडे दारोगा हैं जो इन बातों में नहीं रहते—अपने को धर्मपुत्र युधिष्ठिर बतलाते फिरते हैं। अब हुजूर से बात चीत हो गई। जी में साहस हुआ। हुक्म हो तो रुपया कलही लाकर हाजिर कर दूँ।"

"हाँ, कल लेते आइएगा। किन्तु अपने मालिक से कहिएगा कि यह काम इतनी आसानी से नहीं हो सकता। किसी आदमी को जाल में फँसाना बड़े दुःसाहस का काम है। सब गवाह दुरुस्त रहने चाहिएँ—मैजिस्ट्रेट से सजा मिली भी तो उसके ऊपर जज है—और उसके भी ऊपर हाई कोर्ट है। क्या जाने कब किस ओर से क्या आफत आपडे। पुलिस की नौकरी बड़े जोखो की है। दो सौ रुपये के लिए इतनी बड़ी आफत का बोझ मैं सिर पर नहीं ले सकूँगा। बाबू से समझा कर कहिएगा। अगर पाँच सौ रुपया खर्च कर सके तो मैं कोशिश करूँगा।

रौनक—हुजूर ने जो कुछ कहा है वह जरा भी झूठ नहीं। दो सौ रुपया सचमुच बहुत कम है। यह मैंने बाबू से कहा भी था। उन्होंने कहा—अगर दो सौ रुपये में दारोगाजी राजी न हों तो और भी कुछ दिया जायगा। मैं जाकर बाबू से आज ही कहूँगा। जहाँ तक होगा, बढाने का यत्न करूँगा। आप की फीस जितनी बढ़ेगी उतना ही मेरा लाभ है। आप के इस तरफ कैसा

रिवाज है, नहीं कह सकता—हम लोगों के तरफ जमीदार-गुमाश्ते को सैकडे पचीस कमीशन पाते हैं।

दारोगा ने हँस कर कहा—अगर मुझे पाँच सौ दिलाइएगा तो एक सौ आप का होगा। इस से कम होने पर दस रुपये सैकडा कमीशन पाइएगा। इस तरफ कमीशन का यही रेट है।

रौनक—मेरे यत्न में त्रुटि न होगी। अब बताइए, किस उपाय से वह साला फँसाया जाय।

दारोगा—उपाय बहुत हैं। आप ने उसका घर देखा है ?

"जी नहीं।"

"उसका घर देखना बहुत जरूरी है। सुभीता पाकर कोई चीज उसके घर में रखवा कर फिर खाना-तलाशी करके चीज बरामद करनी पडेगी। चोरी का माल हो, बन्दूक हो—या शराब बनाने का कोई औजार हो, अथवा सिक्का ढालने का ठप्पा आदि सामान हो—या किसी के घर में आग लगा देने की तुहमत लगा कर उस पर मुकद्दमा चलाया जा सकता है। मगर इस के लिए जिस का घर होगा उसे अपने हाथ में करना होगा। उस गाँव मे उसका दुश्मन कौन है—इसका पता लगा कर उसे हाथ में करना बहुत जरूरी है। मेरी राय लीजिए तो उसके घर में कोई चीज चुपचाप रखवा कर खानातलाशी कराना ही सबसे अच्छा जरिया है।

रौनक—आप जो सलाह दीजिएगा, मैं उसी के बमूजिब काम करने को तैयार हूँ।

दारोगा—अच्छा, तो कल सौ रुपया लेते आइएगा। फिर एकान्त में बैठ कर सब बातों का इन्तजाम कर लिया जायगा।

"बहुत अच्छा। कल इसी समय आऊँ तो भेट होगी?"

"यह हम कैसे कहें—दारोगा ही ठहरे—कब कहाँ खून हो—डकैती हो—कहाँ क्या हो जाय—इसका कुछ निश्चय तो रहता ही नहीं। खबर पाते ही जाना पड़ेगा। हम लोगों के लिए घोड़े की पीठ पर जीन कसा तैयार रहता है। अभी तो जहाँ तक देखने में आता है—कल इस वक्त थाने ही में रहूँगा।"

रौनक आदाब करके विदा हुआ।



पैंतीसवाँ परिच्छेद

आज ठीक समय पर रौनकलाल ने थाने में जाकर दारोगा को सौ रुपये गिन दिये। दोनों आदमियों ने अलग एकान्त में बैठ कर बड़ी देर तक सलाह मशविरा किया। आखिर हरिदास को फँसाने का एक पक्का उपाय सोचा गया। दारोगा ने कहा—इधर तो सब ठीक हुआ ही समझिए। लेकिन बाकी रुपया?

रौनक्—मेरे बाबू साहब अभी घर पर नहीं हैं। काशी गये हैं। उनके आने पर सब ठीक हो जायगा। पाँच सौ नहीं तो चार सौ जरूर मैं दिला सकूँगा—इसका पूरा भरोसा है।

"कोशिश कीजिएगा, हो सके तो कुछ और बढ़ाइएगा।"

"जी। हँ हँ, यह कहना न होगा। कोशिश में कसर न रहेगी। देखें, कहाँ तक क्या होता है।"

"अच्छा तो आज शाम को ही जाकर उस बात को ठीक कीजिए। वह राजी हो जायगा न?"

"राजी क्यों नहीं होगा? उसका बाप राजी होगा, उसके चौदह पुरखा राजी होंगे। इसके लिए आप निश्चिन्त रहें।" कह कर रौनक् टट्टू पर चढ़ कर देवीपुर की ओर रवाना हुआ।

सन्ध्या होने के अनन्तर दफ्तर में पहुँच हाथ-पैर धोकर रौनक भगवान् का नाम लेने बैठा। झोली के भीतर उँगली

हिलती है, माला खड़खडाती है। मुँह से भी मन्दस्वर मे 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' सुना जा रहा है किन्तु उसके मन मे चिन्ता की तरङ्ग यो लहरा रही थी—

"सोचा था, बाबू साहब का दिया हजार रुपया मेरा ही हुआ किन्तु देखता हूँ, उसमे से चार सौ रुपया शायद निकालना पडेगा। सौ तो आज देही आया हूँ। तीन सौ वह और लेगा—बिना लिये नहीं छोडेगा। चालीस रुपया उसमें से कमीशन मिलेगा। बाकी तीन सौ साठ हाथ से निकल गया। किन्तु क्या किया जाय? रुपयो का मोह करने से शत्रु दबाया नहीं जा सकता। शत्रु को दबाने के लिए रुपया चाहिए। वह रुपया फिर किसी युक्ति से बाबू साहब से वसूल कर लिया जायगा। वे कहाँ हैं, यह अब तक मालूम नहीं हुआ। कहीं भी हो, वे चिट्ठी जरूरही लिखेंगे। यहाँ का हाल जानने के लिए जनाब का जी छटपटाता होगा। उनकी चिट्ठी पाते ही यह रुपया वसूल कर लेने की युक्ति निकालूँगा। हरिदास! ओ हरिदास! जिस दिन धर्मपाल बाबू कहेंगे उसी दिन तू मुझ पर जाल करने की नालिश करेगा? ले अब नालिश का मजा चखाता हूँ—तू अच्छी तरह मजा चक्खेगा। मैं जेल जाता हूँ या तू! कौन किसको जेल भेजता है, यही देखना है। अब धनीराम को मुद्दई होने के लिए राजी कर लेने ही से काम सिद्ध हो जायगा। बुला भेजा है, अभी तक नहीं आया। आने पर धमका कर काम निकालना पडेगा।"

ने उसे अपने पास बिठा कर कहा—आज तीन बजे सोकर जब उठा तब मैं तम्बाकू पी रहा था। इसी समय थाने से एक आदमी ने आकर कहा 'आपको दारोगा साहब बुलाते हैं।' मैंने सोचा, कल मैं मुलाकात करही आया हूँ, फिर आज उन्होंने एकाएक क्यो बुला भेजा है! सात पाँच सोचते सोचते घोडे पर चढ कर थाने गया। जाकर देखा तो दारोगा साहब लाल पीली आँखे किये बैठे हैं। एक छोटी चौकी पर भूरे रङ्ग की बिल्ली मरी पडी थी। मुझको देखते ही कान्सटेब्ल को हुक्म दिया, 'बाँधो साले को।' हुक्म पाते ही दो सिपाहियो ने झट रस्सी से कस कर मेरे दोनों हाथ बाँध दिये। तब दारोगा मुझे बेतरह गालियाँ देने लगे। मैं तो एकदम गूँगा हो गया। क्या बात है, कुछ भी समझ में नहीं आई। आखिर दारोगा ने कहा—तुम तो एक तरह से हम लोगों की जान ले ही चुके थे—मगर खुदा ने खैर की।

मैंने कहा—हुजूर यह कैसी बात कह रहे हैं?

दारोगा ने कहा—"तुम कल जो घी दे गये थे उसमें विष था—काले साँप का जहर! मेरे बावर्ची ने उसी घी का आज हलुवा बनाया था। हलुवा नीचे उतार कर वह किसी काम से कही गया। इसी समय एक बिल्ली आकर हलुवा खाने लगी। इतने में बावर्ची आगया। बिल्ली को डरा कर उसने भगाना चाहा, पर वह भाग न सकी। म्यो म्यो करके घूमने लगी। कुछ देर चक्कर खाकर लोट गई। इसके बाद शक होने पर हमने वह

हलुवा खाने के लिए कौवे के आगे डाला तो कौवा मर गया। कुत्ते को खिलाया तो कुत्ता भी मर गया। मुर्गी को खिलाया तो वह भी मर गई। हम लोगो को मार डालने ही के लिए तुम यह घी दे गये थे—दफा ३०७ के अनुसार तुम्हे दस वर्ष के लिए जेल जाना होगा।" यह सुन कर मैं चिल्ला चिल्ला कर रोने लगा। कहने लगा—दुहाई खुदानन्द की। मेरा कोई कसूर नहीं। मैंने रुपया देकर घी मँगाया था। मैं कैसे जानता कि इस घी में विष मिला है! दारोगा ने पूछा—घी कौन लाया था? तब मैंने तुम्हारा नाम बतला दिया।

धनीराम थर थर काँपने लगा, किसी तरह हिम्मत करके बोला—मेरा नाम बतला दिया!

"क्या करें, जब जान पर आ पड़ी तब कहना ही पड़ा। कहावत है 'जान तब जहान।' मैंने कुछ झूठ भी तो नहीं कहा। तब दारोगा ने कहा—तुम और धनीराम दोनों मुजरिम हुए। दोनों का चालान कर दूँगा। मैंने उनके हाथ पैर पकड़ कर बहुत तरह से प्रार्थना की। अन्त में जब पाँच सौ रुपया देना कबूल किया तब दारोगा ने कहा—अच्छा, तुमको तो छोड़ दिया लेकिन धनीराम को नहीं छोड़ूँगा। मैंने फिर हाथ जोड़ कर कहा—सरकार! वह गरीब निर्दोषी है—पाँच सात जगह से खोज कर घी लाया था। कहाँ, किस ग्वाले के घी में साँप ने मुँह डाला था, यह उस अभागे को क्या मालूम था। उसे भी छोड़ देने की आज्ञा दीजिए। दारोगा काहे को मेरी बात सुनने

लगा। बहुत आरजू-मिन्नत करने पर कहा, अगर धनीराम मेरा एक काम कर सके ते मैं उसे माफ कर सकता हूँ। मैंने कहा—हुजूर जो हुक्म देंगे धनीराम वही करेगा—उसका बाप करेगा—उसके चौदह पुरुषा करेंगे। तब दारोगा ने कहा—एक गाँव में मेरा दुश्मन है। उस पर चोरी का माल रखने का झूठा मुक़दमा चलाना है। अगर धनीराम मुद्दई होना कबूल करे ते उसे छोड़ दूँगा नहीं ते चालान कर दूँगा। मैंने कहा, वह जरूर मुद्दई होना कबूल करेगा। आप जो कहिएगा वही करेगा। दारोगा ने कहा—अच्छा, मैं जिस दिन कहूँगा उस दिन, रात के वक्त वह कुछ काँसे-पीतल के बर्तन चुपचाप लाकर मुझे दे जाय—और घर जाकर अपने सोने के घर की दीवार में बाहर से एक सेंध दे रक्खे और दूसरे दिन सबेरे यहाँ आकर चोरी होने की रिपोर्ट लिखा जाय। वे वर्तन उस दुश्मन के घर में रखवा कर, चोरी का माल रखने के अपराध मे, मैं उसका चालान कर दूँगा। मैंने कहा—वह अवश्य ही करेगा। यह कौन बड़ी बात है। हुजूर हाकिम हैं, जिससे ऐसा काम करने को कहेंगे वही हुजूर के डर से कर देगा। तब दारोगाजी ने मेरा बन्धन खोलवा दिया और कहा—जाओ, उससे पूछो, अगर वह राजी हो ते अच्छा है। जो राजी न हो तो तुम दोनों का चालान कर दूँगा। अगर वह वैसा करने को तैयार हो और तुम पाँच सौ रुपया दो ते दोनों को माफ कर दूँगा। बस, यही हाल है। कहो तुम क्या कहते हो?"

धनीराम बहुत कुछ धैर्य धारण कर बोला—हुजूर जो कहेंगे उसे क्या मैं कभी अस्वीकार कर सकता हूँ!

"तो यह बात मैं कल दारोगा से जाकर कहदूँ ?"

"जी हाँ।"

"हाँ, दारोगा जी ने एक बात और कही है। तुम्हारे घर में काँसे-पीतल के कुछ टूटे फूटे बर्तन हैं ?"

"होंगे। एक बटलोही है उसका किनारा टूटा हुआ है और एक पीतल का कलसा है, उसकी पेंदी में छेद है।"

"अच्छा, उस बटलोही और कलसे को—कलही कसेरे के घर जाकर,—राँगे से मरम्मत करा ले आओ। कलही—समझ गये न ? देरी न होने पावे।"

"क्यों जिलेदार साहब ?"

"अरे यह तुम नहीं समझ सके ? रपट लिखते समय दारोगा तुम से पूछेगा—तुम्हारे बर्तनों में पहचान का कोई निशान है ? तुम लिखा दोगे, है—बटलोही का किनारा और पीतल के कलसे की पेंदी अमुक कसेरे के यहाँ से राँगे से मरम्मत करा कर लाया था। इसके बाद जब उस आदमी के घर से ये चीजें बरामद होंगी तब तुम ये चिह्न देखकर शिनाख्त करोगे। अदालत में यह चिह्न दिखलाना पड़ेगा। कसेरा जाकर गवाही देगा—'हाँ, बटलोही और कलसे की मरम्मत मैंने ही की है। यही चिह्न है।' दो एक बर्तनों में इस

तरह का चिह्न न होगा तो शिनाख्त कैसे होगी? इस तरह की बटलोही और कलसे सैकडो होंगे । अब समझा ?"

"जी हाँ। तो मैं कलही कसेरे के घर जाकर उन दोनों बर्तनों को मरम्मत करा लाता हूँ। आप दारोगा से जाकर कह दें । वे जो कहेंगे, यह गुलाम करने को राजी है।" यह कह कर धनीराम ने अपना सिर रौनकलाल के पैरों पर रखकर प्रणाम किया ।

छत्तीसवाँ परिच्छेद

नौका जब मिर्जापुर में पहुँची तब ग्यारह बज गये थे। गोपीकान्त और वैरागी दोनों घाट पर उतरे।

गोपीकान्त—बाबाजी, तो अब आप अपने चेले के यहाँ जाइएगा? अगर आप उधर न जाते, सीधे स्टेशन पर ही चलते, तो अभी एक पैसिञ्जर गाड़ी मिल जाती।

वैरागी ने कहा—शङ्कर महादेव, शङ्कर महादेव। एक पैसिञ्जर! पैसिञ्जर से कैसे जा सकता हूँ? अभी तो ठाकुरजी की सेवा नहीं हुई। प्रसाद बनाना है। उसके उपयुक्त जगह भी यहाँ नहीं देख पड़ती।

गोपीकान्त—तो आप चेले के यहाँ जाइए। वहाँ सब इन्तज़ाम ठीक होगा। ठाकुरजी की सेवा-पूजा करके भोग लगा कर चले आइए। न होगा तो शाम की गाड़ी से चले चलेंगे।

"और तुम?"

"मैं यहाँ स्नान करके हलवाई की दूकान में कुछ जलपान करूँगा। आप पिछले पहर स्टेशन में आइगा, वहीं भेंट होगी।"

वैरागी बाबा दुविधा में पड़ गये। इस अवस्था में अलग होना ठीक नहीं—विशेष कर जब कि धनवान् भक्त मिल गया है। उसका स्थानीय शिष्य भी अमीर है, किन्तु है भारी कृपण। वहाँ रुपये दो रुपये के लोभ से जाकर क्या ऐसे शिकार को

हाथ से खो देना चाहिए ? इसी से वैरागी ने कहा—नहीं नहीं, यह कैसे हो सकता है ? तुम भी मेरे साथ चलो। मेरा चेला बड़ा सज्जन है। मेरे साथ चलने से वह तुम्हारा भी आदर करेगा।

गोपीकान्त नहीं चाहता था कि किसी रईस के यहाँ जाकर ठहरे। शायद वहाँ किसी परिचित आदमी से भेंट हो जाय, कोई पहचान ले। वह कोई दूसरा बहाना न पाकर बोला—मुझे यह आज्ञा न दीजिए। मैं दूसरे का अन्न नहीं खाता।

"इसमें दोष क्या है ? शास्त्र में लिखा है, 'प्रवासे नियम नास्ति'।"

"जी नहीं, यहीं स्नान करके पूरी तरकारी खालूँगा।"

वैरागी ने कहा—बासी पूरी-तरकारी खाकर क्यों कष्ट सहोगे। आज कल का मौसम भी अच्छा नहीं है। "बासी पूरी च मिष्टान्न अम्लोद्गार च कारयेत्।"

गोपीकान्त तब भी राजी नहीं हुआ। वैरागी ने कहा—तो फिर मैं भी नहीं जाऊँगा। यहीं कहीं रसोई बनाने का बन्दोबस्त कर लूँगा। अपने लिए तो कोई परवा नहीं। इस पहर कुछ न खाता तो क्या होता, किन्तु साथ में ठाकुरजी हैं। उन्हें तो भूखा नहीं रख सकता। क्या यहाँ थोड़ी सी जगह कहीं न मिलेगी ?—कहकर वैरागी इधर उधर ताकने लगा।

एक वृद्ध गङ्गास्नान करके भीगे कपड़े पहने वहाँ खड़े खड़े इन दोनों की बातें सुन रहे थे। वे आगे बढ़ कर बोले—बाबाजी

सीताराम। यदि कृपा हो तो इस ग़रीब के यहाँ चलिए। मैं आप लोगों के रहने के लिए और रसोई बनाने के लि अच्छी जगह दे सकता हूँ।

वैरागी ने प्रसन्न दृष्टि से देख कर कहा—आपका नाम?

"मेरा नाम माधवप्रसादसिंह।"

"आप कहाँ रहते हैं?"

"बहुत ही समीप। यहाँ से मेरा घर देख पडता है।"

"आप यहाँ क्या करते हैं?"

"मेरा बडा लडका यहाँ वकालत करता है।"

"अच्छा, आपके पुत्र वकील हैं? क्या कहते हो बाबू?" कह कर वैरागी गोपी बाबू के मुँह की ओर देखने लगा।

गोपी ने कहा—जब ये जगह देना चाहते हैं तब चलने में हर्ज ही क्या है।

वृद्ध ने पूछा—बाबू साहब का नाम?

गोपीकान्त—मेरा नाम गोपीलाल है।

वृद्ध—आप लोग भगत हैं—भगवान् के प्यारे हैं। आज मेरा बडा भाग्य है। तो अब पधारिये।

गोपीकान्त ने कहा—हम लोग यहाँ स्नान कर ले तो चले। आप भीगे कपडे पहने कब तक खडे रहिएगा? आप आगे चलिए। मकान तो यहाँ से दिखलाई दे रहा है। स्नान कर के हम भी आते हैं।

"बहुत अच्छा। तब तक मैं वहाँ सब इन्तजाम कर रक्खूँगा।" कह कर वृद्ध ने हाथ जोड कर कहा—अवश्य आइएगा, आशा देकर निराश न कीजिएगा।

वैरागी—हम स्नान करके तुरन्त आते हैं।

वृद्ध फुर्ती से घर की ओर चले गये।

गोपीकान्त ने कहा—बाबाजी, पहले आप स्नान कर लीजिए। मैं सामान के पास बैठा हूँ।

"अच्छा" कह कर स्नान करने के लिए बाबाजी पानी में पैठे।

इधर गोपीकान्त ने गङ्गा की ओर पीठ करके चमडे का बैग खोला और रूमाल में बँधा हुआ नोटों का बण्डल निकाल लिया। उसे अपनी धोती के खूँट मे बाँध, चपकन की जेब से खुर्दा-रुपया-पैसा निकाल कर बैग में डाल दिया और पहनने के लिए एक धोती निकाल ली। वैरागी बाबा नहाते जाते थे और गोपीकान्त के इस काम पर खूब ध्यान दे रहे थे।

वैरागी बाबा के स्नान कर लेने पर गोपीकान्त स्नान करने गया। झटपट स्नान कर, पानी से निकल, उसने धोती बदली और फिर भीगे कपडे से नोट का बडल खोल कर हिकमत से बैग में रख दिया। पर यह भी वैरागी की दृष्टि से बचा नहीं रहा।

अब दोनों यात्री माधवप्रसाद के घर की ओर रवाना हुए। माधव बाबू कमरे के बरामदे मे ही खडे थे। बरामदे में एक ओर दो छोटी चौकियाँ रक्खी थीं। उन्हीं पर उन्होंने उन

भ्यागतों को बड़े आदर से बिठाया। बैरागी के चरण उन्होंने
य धोये और एक नौकर ने गोपीकान्त के पैर धो दिये।

कमरे के पीछे के बरामदे में एक कम्बल बिछा था। एक
ोने में नई ईंटों का चूल्हा बनवा दिया गया था। ईंधन,
ँडी, रसोई के और बर्तन, एक पीतल के घड़े में गङ्गाजल
ादि सभी सामान रक्खा हुआ था। हवेली के रसोइया
ाह्मण ने दो थालियों में चावल, दाल, घी आदि सब वस्तु ला
र रख दी।

गोपीकान्त ने कहा—यह सब किस लिए? बाजार तो
जदीक है ही। मैं सब चीजें मोल लिये आता हूँ।

माधव बाबू ने कहा—यह कभी हो सकता है? जब आप
कृपा करके इस अधम के घर आतिथ्य स्वीकार किया है तब
पना खर्च कर के कैसे खाइएगा। यह नहीं हो सकता।

"आप ने हम लोगों को स्थान देकर ही यथेष्ट उपकार
िया है। अब आप को विशेष कष्ट देना ठीक नहीं। साथ में
पया-पैसा है—बाजार से आवश्यक वस्तुएँ लिये आता हूँ।"
ह कर गोपीकान्त हाथ में बैग ले उठ खड़ा हुआ।

"नहीं, नहीं, आप ऐसा न करें। इसे आप अपना ही घर
समझें। मेरे बहुत पुण्य थे, इसी से बाबा के सदृश साधु
ुरुष और आप के ऐसे सज्जन पुरुष के चरणों की रज मेरे घर
में पड़ी है। यदि इस गरीब की सेवा ग्रहण न कीजिएगा तो मन
ें बड़ा ही दुःख होगा।" कह कर वृद्ध ने दोनों हाथ जोड़े।

वैरागी ने कहा—गोपीरमण, अब रहने दो। शास्त्र का वचन है—"मनोदुःखं न दातव्यो अतिथीनां सेवकेषु च।" भक्तों और सेवकों के मन में दुःख नहीं पहुँचाना चाहिए। और ये तो हम लोगों को कुछ देते भी नहीं हैं, देते हैं हमारे इष्टदेव को। उनको भोग लगेगा—इसके बाद हम लोग प्रसाद पावेंगे।

गोपीकान्त चुप हो रहा। वैरागी ने अपने हाथ से रसोई बनाई। ठाकुरजी को भोग लग चुकने पर दोनों ने प्रसाद पाया। तब माधव बाबू ने दोनों के लिए कमरे में तख्त के ऊपर बिछौना बिछवा दिया। फिर इनकी आज्ञा लेकर वे भोजन और विश्राम करने के लिए भीतर गये।

बिछौने पर बैठ कर वैरागी बोला—शङ्कर की क्या ही दया है। जहाँ जाता हूँ, कोई कष्ट नहीं होता। सोच रहा था कि रास्ते में आज कुछ खाने को मिलेगा या नहीं। किन्तु विश्वनाथ ने सब चीजें जुटा दी। एक चिलम तो भरो।

गोपीकान्त ने चिलम भर कर वैरागी के हाथ में दी। फिर आप भी दम लगा कर लेट गया। वह मार्ग की थकावट और मन की चिन्ता से अत्यन्त कातर था। आँख मूँदते ही नींद आ गई।

वैरागी बोल उठा—शङ्कर महादेव, शङ्कर महादेव। आज उन्म पैसिञ्जर में जाने से बड़ा कष्ट होता। प्रयाग बड़ा ही रमणीय स्थान है। पवित्र स्थान है। देवताओं का घर है। तीर्थों

का राजा है। श्रीमाधवजी के मन्दिर मे प्रवेश करने पर फिर बाहर निकलने को जी नहीं चाहता। शङ्कर हर, शङ्कर हर— अच्छा गोपीलाल, साँझ की गाडी से चलें तो हम लोग वहाँ किस समय पहुँचेंगे?

कोई उत्तर नहीं।

"गोपीलाल—श्रो गोपीलाल !"

गोपीलाल ने तब खुर्राटा लेना आरम्भ कर दिया था।

बैरागी बाबा ने कुछ देर और अपेक्षा की, कहीं कोई न था। नौकर चाकर भी सो गये थे। घडी में टन् टन् कर दो बज गये।

बैरागी ने झट अपनी झोली के भीतर से तेज छुरी निकाल कर गोपीलाल के चमडे के बैग को नाव की बाव में इस पार से उस पार तक फाड डाला। गीले रूमाल में बँधा हुआ नोटों का बण्डल और जो कुछ फुटकल रुपया पैसा था वह सब/निकाल कर अपनी झोली में रख लिया। बैग के फटे हिस्से को दीवार की ओर छिपा कर अपनी झोली ले बैरागी बाबा, पैरों की आहट बचा कर, कमरे से निकले और रफू-चक्कर हुए।

सैंतीसवाँ परिच्छेद

चार बजे के बाद वकील साहब ने कचहरी से लौट कर देखा कि उनकी बैठक में एक अपरिचित भला आदमी सो रहा है। वकील साहब के पिता भी उसी समय भीतर से कमरे में आ पहुँचे। वकील साहब का नाम देवेन्द्रप्रसाद है। उन्होंने पिता से पूछा—ये कौन हैं?

"एक अतिथि हैं।"

"कहाँ से आये हैं?"

"घर इनका बनारस की तरफ़ है। ये और एक वैरागी साधु दोनो नाव से उतरे थे। वैरागी बाबा कहाँ गये? वे तो यहाँ दिखाई नहीं देते।"

इनकी बातचीत का शब्द सुन कर गोपीकान्त की नींद टूट गई। वह आँख खोल कर वकील साहब की ओर देखने लगा।

"कहिए, गोपीलाल बाबूजी, कैसी नींद आई?" कह कर वृद्ध मुस्कुराने लगे।

"बहुत अच्छी" कह कर गोपीकान्त उठ बैठा। देवेन्द्र बाबू ने हाथ जोड़ कर अभिवादन करके कहा—बाबाजी कहाँ हैं?

गोपीकान्त ने इधर उधर देख कर कहा—अयँ! बाबा कहाँ गये? यहीं तो सोये थे।

वृद्धने कहा—यहीं तो आराम करते थे। गये कहाँ? मालूम होता है, कहीं बाहर गये हैं।

हम लोगों को साँझ की गाड़ी से जाना होगा। कै बजे हैं?—कह कर घड़ी देखने के लिए गोपीकान्त ने बैग को अपनी ओर खींच लिया।

बैग को कटा देख गोपीकान्त ने चौक कर के कहा—यह क्या! मेरे बैग को किसने फाड़ डाला?

वृद्ध और उनके पुत्र झुक कर बैग को देखने लगे। वे भी बोल उठे—अरे!—यह क्या हुआ?

गोपी बाबू ने तुरन्त बैग से सब चीज़ों को खींच खींच कर बाहर निकाल डाला। धोती, चपकन, गजी, तौलिया सब को दोनों हाथों से पागल की भाँति झाड़ कर कहा—हाय! सर्वनाश हो गया।

"क्या गया है?"

"जो कुछ था सब चला गया।"

वकील ने पूछा—क्या था?

"नोट थे और कुछ रेजगारी भी थी।"

वृद्ध ने कहा—कितने रुपये के नोट थे?

"थे कुछ रुपये के। तीर्थ-यात्रा करने को चला था। ख़ूब तीर्थ-यात्रा हुई! एक पैसा भी पास नहीं रहा जो पोस्ट-कार्ड ख़रीद कर घर पर चिट्ठी लिखूँ और रुपया मँगाऊँ।"

कुछ देर तक सभी चुप बैठे रहे। फिर घर के मालिक ने कहा—वह बैरागी कौन था?

"यह तो नहीं जानता। नौका में ही उससे भेंट हुई थी। उसने कहा—'मैं भी तीर्थ-भ्रमण करूँगा।' सोचा, मैं नया आदमी हूँ, कभी घर से नहीं निकला। वह साधु था, इसी से उसको साथ में ले लिया था। अन्त में उसने मुझे इस विपद में डाल दिया।"

वकील ने कहा—यह बिलकुल उसी का काम है।

वृद्ध को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। बोले—"नहीं, उन्होंने कभी नहीं लिया है। शायद वे पास ही कहीं घूमने-फिरने गये हैं। अभी आते होंगे। खुला घर देख कर किसी चोर ने यह काम किया है।" यह कह कर वे बैरागी की खोज में बाहर गये।

वकील ने कहा—"बाबूजी आप चाहे जो कहें परन्तु है यह उसी बैरागी का काम।" बाबूजी जैसे सरलस्वभाव के हैं उसी के अनुसार उन्होंने माथे पर जटा और सारे बदन में भस्म लगी देख कर ही उसे एक सिद्ध पुरुष समझ लिया होगा। बैरागी की कोई भी चीज तो यहाँ नहीं दीखती।

"उसके साथ एक झोली, मृगछाला, चिमटा और कमण्डल भी था। अगर वह पासही कहीं घूमने जाता तो उन चीजों को क्यों ले जाता?"—कह कर गोपीकान्त माथे पर हाथ रख कर चुप हो रहा।

उसकी दशा देख कर वकील ने कहा—आप इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं? घर पर चिट्ठी लिख कर रुपया मँगवा लीजिए। जब तक रुपया न आवे तब तक आप आराम से यहाँ रहिये। मैं आप को चिट्ठी का कागज और लिफाफा आदि देता हूँ।

इस पर गोपीकान्त कुछ न बोला। वकील ने कहा—पुलिस में इसकी खबर दे देना उचित है। क्या नम्बरी नोट थे?

"जी नहीं, सिर्फ दस दस रुपये के नोट थे। जो होनी थी सो हुई। अब थाने में इसकी खबर देने से मैं और भी आफत में फँसूँगा।"

इतने में बूढे भी लौट आये और बोले—ओह—वैरागी बाबा तो कहीं नहीं मिले।

बेटे ने कहा—क्या अब वे यहाँ हैं? वे तो बहुत दूर खसक गये।

वृद्ध—नहीं, वे यहीं किसी चेले के पास गये होंगे, या किसी मन्दिर में भगवान् का दर्शन करने गये होंगे। शाम तक फिर यहाँ आ जायँगे।

"नहीं बाबूजी, दर्शन करने नहीं गये हैं। दर्शन करने जाते तो झोली, मृगछाला और चिमटा क्या ले जाते।"

तब वृद्ध इसका कोई प्रतिवाद नहीं कर सके।

उस रात को गोपीकान्त वहीं रह गया। दूसरे दिन उसने वकील साहब से कहा—मेरी इस घड़ी का दाम ५०) रु० है, इसे बन्धक रख कर मुझे दस रुपया उधार दीजिए। आपने मुझ

पर बड़ी दया की है । मेरे घर से न मालूम कब रुपया आवेगा- तब तक यहाँ रह कर रोज रोज आप को दु ख देना उचित नहीं।

वकील और उनके पिता ने इस प्रस्ताव पर ध्यान नहीं दिया। बोले—अगर मैं एक विपद्-ग्रस्त सज्जन को खाने के लिए मुट्ठी भर अनाज नहीं दे सकूँ तो मुझे घर बनाने का फल क्या हुआ? जो मैं आपकी सेवा न करूँगा तो मेरा धर्म डिग जायगा। घड़ी बन्धक रखने की क्या जरूरत है। आप के मामूली खर्च के लिए जो दरकार होगा, मैं दूँगा। आप यहीं रहिए। रुपया आने पर आप मुझे दे दीजिएगा।

इन लोगों का विशेष आग्रह देख कर गोपीकान्त को सहमत होना पड़ा। उसी दिन उन्होंने रौनकलाल को पत्र लिखा—

श्री

परमकल्याणपात्र मुशी रौनकलाल को राम राम। मैं अनेक तीर्थों का दर्शन करके आज कल यहाँ ठहरा हुआ हूँ। मेरे बेग से रुपया-पैसा चोरी हो गया जिससे मैं बड़े कष्ट में हूँ। खजाने से बहुत शीघ्र १००) एक सौ रुपया मनीआर्डर कर के नीचे के पते से भेज दो। वहाँ का सब समाचार जानने के लिए भी चित्त व्याकुल हो रहा है। इस लिए वापसी डाक से जवाब देना न भूलना। इति २० कार्तिक।

शुभचिन्तक
श्री गोपीलाल

श्री देवेन्द्र बाबू वकील के मकान पर
मिर्जापुर।

पाँचवें दिन चिट्ठी का जवाब आया। रौनक ने चिट्ठी के

साथ सिर्फ दस दस रुपये के दो नोट भेजे हैं। लिखा है—आप के कमलपुर छोड़ने के बाद मैं दूसरे दिन तड़के उठ कर थाने में गया। जाकर देखा, तो हरिदास उस स्त्री को साथ ले रपट लिखाने के लिए बड़ के पेड़ के नीचे खड़ा है। तब मैंने झटपट दारोगा से भेंट करके ५००) उनको, १००) हेड कान्स्टेब्ल को, ५०) मुन्शी को और अन्यान्य सिपाहियों को ५०), इस तरह ७००) रु० देकर ठीक ठाक कर लिया। दारोगा ने रपट न लिख कर उन्हें झूठा मुकदमा दायर करने के अपराध में धमकी देकर थाने से निकाल दिया था। किन्तु आज मुझे फिर खबर मिली है कि हरिदास उस स्त्री को लेकर सदर में मैजिस्ट्रेट साहब के यहाँ नालिश करने गया है। इसलिए उस मामले का बन्दोबस्त करने मुझे आजमगढ़ जाना होगा।—गाड़ी तैयार है। हुजूर के दिये हुए एक हजार रुपये में अब तीन सौ बचा है। खजाने से और दो सौ लिया है, कुल ५००) रुपया लेकर मैं आजमगढ़ जा रहा हूँ। यहाँ और रुपया न रहने के कारण मैंने इस पत्र के साथ सिर्फ २०) रु० भेजे हैं। आजमगढ़ में जो हाल होगा, वह वहीं से लिखूँगा। हुजूर को अभी घर आने की जरूरत नहीं। क्योंकि आजमगढ़ से आप के नाम वारंट जारी हो तो आश्चर्य नहीं।

पत्र पढ़ कर गोपी बाबू का मुँह सूख गया।

माधव बाबू ने आकर पूछा—घर का समाचार तो अच्छा है?

टूटे हुए स्वर में गोपीकान्त ने कहा—समाचार तो अच्छा है, किन्तु लड़का लिखता है—रुपया-पैसा अभी कुछ हाथ में नहीं है । जहाँ तक हो सकेगा, शीघ्रही बन्दोबस्त करके भेज देगा ।

वृद्ध—तो हर्ज क्या है, अभी कुछ दिन यहीं ठहर जाइए न । रुपया आने पर घर चले जाइएगा ।

गोपीकान्त—सो तो अब हुआ ही । किन्तु आप लोगों को ज्यादा तकलीफ देने का साहस नहीं होता ।

वृद्ध—गोपीलाल बाबू, आप यह बात न कहें । आप हमारे अतिथि हैं, उस पर भी ऐसे सज्जन । कुछ दिन आपकी सेवा कर सकूँ तो यह मेरा परम सौभाग्य है । आप भगवान् से प्रार्थना कीजिए जिससे देवता और ब्राह्मणों में मेरी भक्ति बनी रहे, जिनकी कृपा से मुट्ठी भर अन्न मेरे घर में मौजूद रहे जिसे बाल-बच्चे मिल कर खायँ ।

अब रौनकलाल की दूसरी चिट्ठी की प्रत्याशा में गोपीकान्त दिन बिताने लगा ।

अड़तीसवाँ परिच्छेद

एक दिन हुआ—दो दिन हुए—तीन दिन हुए—तो भी आजमगढ से कोई अभिलषित पत्र नहीं आया। गापीकान्त सोच रहा था—क्या हुआ, रौनक ने क्या किया? क्या वारट जारी हो ही गया? इन वातो की चिन्ता च्चण भर भी उसके मन से न हटती थी। सवेरे और शाम का डाक-प्यून के आने के समय वह सडक पर जा खडा होता था। जहाँ तक उसकी नजर जाती थी, चाह भरी दृष्टि से देखता था।

पास मे जितना रुपया है वह इतना थोडा है कि इसे लेकर अन्यत्र जाने का साहस नही होता। वह भी रोज रोज घटता ही जाता था। एक अपरिचित सम्बन्ध-रहित विनयी व्यक्ति के घर दोनों वक्त भोजन करन में उसे बडी लज्जा मालूम होने लगी। इसीसे वह रुपया आने पर, दूसर दिन, सवेरे सडक पर टहलने का बहाना करके, वाजार गया। वहाँ से देवेन्द्र वाबू के लडको के लिए कुछ मेवे और मिठाई खरीद लाया।

यह देख कर वृद्ध बहुत असन्तुष्ट हुए। उन्होंने कहा—अगर आप चीजें लाये हैं तो आप को इनका दाम लेना होगा।

गापीकान्त—यह क्यों? यदि मैं अपने पास से लडका क लिए कुछ खाने की चीजें लाया तो मैंने क्या अनुचित किया?

वृद्ध—आप मेरे अतिथि हैं, अभ्यागत हैं। आप अपना पैसा खर्च करके कोई चीज़ क्यो लाये ?

गोपीकान्त दाम लेंगे नहीं और वृद्ध दिये बिना छोडेंगे नहीं। बडी देर तक दोनो में यही लेन-देन का झमेला होता रहा। आखिर वृद्ध क्रोध से मुँह लाल कर चुप हो बैठ रहे।

तब गोपीकान्त ने हँस कर कहा—कहिए बडे बाबू, आप का भेदज्ञान तो अब तक नहीं गया है ? ये चीजें अगर आपके पुत्र देवेन्द्र बाबू लाते तो आप कितने खुश होते। मैं खरीद लाया हूँ, इसलिए क्यो नाराज हो रहे हैं ?

यह सुन कर वृद्ध हँसने लगे, बोले—आपने अन्याय अवश्य किया है, किन्तु इसकी सजा आपको अभी देता हूँ। इनमे से थोडी थोडी सब चीजें पहले आपको खानी पडेंगी।

गोपीकान्त बोला—यह कौन बडी बात है। जो आपकी आज्ञा होगी उसका पालन मैं अवश्य करूँगा।

दूसरे दिन गोपीकान्त फिर बाजार गया और टोकरी भर ताजा साग भाजी ले आया। उसके दूसरे दिन देवेन्द्र बाबू के लडके को टहलाने के लिए लेगया। लौटते समय लडका एक बाजा लिये घर आया। वह बाजा बजाकर घर के लोगों के कान फोडने लगा। छठे दिन तीसरे पहर गोपीकान्त कमरे में बैठ कर हुक्का पी रहे थे। इसी समय डाक-प्यून ने आकर एक रजिस्टरी चिट्ठी उनके हाथ मे दी। तब चार बज गया था।—वकील साहब तब भी कचहरी से नहीं लौटे थे। कमरे मे और

कोई नहीं था। धड़कते हुए हृदय से गोपीकान्त बाबू ने पत्र खोला। उसमें से सौ रुपये का नोट निकला। रौनक ने एक बड़ी लम्बी चिट्ठी लिखी है। उसकी नकल यह है —

श्री

स्वस्ति श्रीमहामहिम श्रीयुक्त बाबू गोपीलाल जी महोदयेषु—दास का अनेकानेक प्रणाम। श्रीमान् की सेवा में पहली चिट्ठी भेजने के अनन्तर मैं आजमगढ़ गया। वहाँ जाकर एक मुख्तार के मुहर्रिर से सुना—उसी दिन हरिदास लीलावती को लेकर नालिश करने के लिए कचहरी में आया और लाला कुलदीप लाल को उसने मुख्तार नियुक्त किया। लाइब्रेरी के बरामदे में बैठ कर मुख्तार नालिश का मजमून लिख रहा था। किन्तु नालिश दायर हुई या नहीं और होने पर उसका क्या फल हुआ, यह मुंशी कुछ भी नहीं बता सका। यह सुन कर मैं आधी रात को उक्त मुख्तार के घर गया। तब तक मुख्तार सो गये थे। उन्हें जगा कर मैंने अपना परिचय दिया और सब हाल कह कर रुपये का लोभ दिया। कुलदीपलाल ने ऊँघते हुए कहा—"आप मुझसे क्या करने के लिए कहते हैं?" मैंने कहा—"और कुछ नहीं, आपको ऐसा उपाय करना होगा जिसमें मुकद्दमा खारिज हो जाय।" उसने कहा—"बात बड़ी भयानक है—पीछे से कहीं मुझी को न फँस जाना पड़े।" वह बड़ी देर तर्क वितर्क करके बोला—"अगर मुझको हजार रुपया मिले तो मैं मुकद्दमा डिसमिस करा दूँगा।"

कराना होगा। किन्तु मैं ऐसे भाव से पूछूँगा, जिसमें असल बात कुछ भी जाहिर न होगी। और मुकद्दमा तुरन्त खारिज हो जायगा।

मैं दूसरे दिन भेष बदल कर अदालत मे हाजिर हुआ। दरख़ास्त पेश होने पर लीलावती जब कटहरे में खड़ी की गई तब मुख़तार उससे इस तरह पूछने लगा—

सवाल—किस पर नालिश की है?

जवाब—गोपी बाबू पर।

स०—कौन गोपी बाबू? वे कहाँ रहते हैं?

ज०—कमलपुर के जमींदार गोपीकान्त श्रीवास्तव।

स०—उनके यहाँ कितने दिन रही?

ज०—तीन चार महीने।

स०—तुम्हारे साथ बाबू कैसा व्यवहार करते थ?

ज०—खराब।

स०—उनसे रुपया मिला?

ज०—नहीं।

स०—उस मकान से कब चली आई?

ज०—दीवाली की रात को।

स०—किस के साथ आई?

ज०—हरिदास के साथ।

स०—रिश्ते में वह तुम्हारा कौन है?

ज०—दूर के नाते से वह मेरा देवर है।

स०—थाने में गई थी ?

ज०—हाँ ।

स०—दारोग़ा ने क्या कहा ?

ज०—कहा, तू झूठ नालिश करने आई है, तेरा ही चालान किया जायगा ।

स०—तो नालिश सच है या झूठ ?

ज०—सच है ।

स०—यह दरख़ास्त देखो । इस पर अँगूठे की छाप तुम्हारी ही है ?

ज०—जी हाँ ।

यह इजहार हो जाने पर हाकिम ने दरख़ास्त पढ़कर मुक़द्दमा डिसमिस कर दिया । कहा, यह मुक़द्दमा फौजदारी में चलने लायक नहीं है—चाहो तो दीवानी में जाओ ।

मैंने मन में कहा, चलो आफ़त टल गई । किन्तु हरिदास बाहर आकर मुख़्तार के साथ झगड़ने लगा । बोला—काम की बात आपने एक भी नहीं पूछी । मुख़्तार ने कहा—'काम की कुल बातें दरख़ास्त में लिखी थीं।' उसकी बातचीत से हरिदास ने सन्देह में आकर दूसरा मुख़्तार करके अर्जी की नक़ल ली । हरिदास नक़ल पढ़कर मुख़्तार की सब चालाकी समझ गया । दूसरे दिन उस मुख़्तार के खिलाफ़ ऐफिडेविट करके नया मुक़द्दमा दायर करने के लिए सब मुख़्तारों के पास गया था,

किन्तु सभी ने कहा—जानते नहीं हो, कौवे का मास कौवा नहीं खाता । हम लोग किसी मुख्तार के खिलाफ दरखास्त नहीं दे सकेंगे । तब वह छोटे बड़े कितने ही वकीलों के पास गया किन्तु प्रत्येक वकील ने कहा—देखो लाला, मुख्तार के विरुद्ध दरखास्त देने से सब मुख्तार हम से बिगड बैठेंगे, इससे हमार व्यवसाय में बड़ा धक्का लगेगा । आखिर एक वकील ने इस शर्त पर वकालतनामा लिया है कि दरखास्त में सिर्फ यही लिखा जायगा कि पहले दिन भूल से वैसी दरखास्त दी गई थी—सच्ची बात यह है । मुख्तार के विरुद्ध कोई बात कही या लिखी नहीं जायगी । दूसरे दिन यह दरखास्त देने से हाकिम ने सबूत माँगा है । गवाहों का इजहार होने पर अगर हाकिम की नजर में मुक़द्दमा सच जँचेगा तो मुद्दाअलेह के नाम सम्मन जारी होगा नहीं तो डिसमिस हो जायगा । अगहन बदी १३ मुकद्दमे की तारीख मुकर्रर हुई है । अब भी दस दिन बाकी हैं । मैंने सोच विचार कर स्थिर किया है कि इस विपत्ति से उद्धार पाने पर पहले हरिदास को अपने इलाके से भगाना बहुत जरूरी है । एक मात्र वही इस मुकद्दमे का पैरोकार है । उसके न रहने-से मुक़द्दमा चलाने वाला ही कोई न रहेगा । मालूम नहीं होता कि आपके भाई मोतीलाल बाबू मुकद्दमे में किसी तरह की सहायता देंगे । जो उनका यह अभिप्राय होता तो वे स्वय गवाही देते । हरिदास को भगाने का अब सहज उपाय यही है कि उसे किसी मुकद्दमे में फँसा कर जेरबार कर दिया जाय ।

दारोगा को रुपये देकर मैं सब प्रबन्ध कर सकता हूँ। इसके सिवा उस औरत को भी किसी तरह भगाना होगा। हुजूर ने मुझको एक हजार रुपये दिये थे जिनमें सात सौ पुलिस को देने पर तीन सौ रुपये बचे थे। तीन सौ वे और सरकारी खजाने की जमा दो सौ, कुल पाँच सौ ले कर मैं आजमगढ़ आया था। उसमें से ढाई सौ रुपये मुख्तार को दिये हैं। सौ का नोट इस चिट्ठी के साथ हुजूर के पास भेजता हूँ। मेरे राह-खर्च और मकान किराया तथा डाक महसूल आदि में दस रुपये साढ़े नौ आने खर्च हुआ है। मैं आज देवीपुर जा रहा हूँ। वहाँ जाकर दारोगा को कुछ पेशगी देकर हरिदास को फँसाने का प्रबन्ध करूँगा। परन्तु दारोगा जैसा लोभी है और हुजूर के खिलाफ मुकद्दमा जैसा संगीन है, इससे तो यही जान पड़ता है कि वह पाँच सौ से कम पर हर्गिज राजी नहीं होगा। लीलावती को भगाने के लिए भी खर्च करना पड़ेगा। पेशी के दिन लीलावती या हरिदास अदालत में हाजिर न हों तो मुकद्दमा तुरन्त खारिज हो जायगा। फिर किसी बात की आशङ्का नहीं रहेगी। हुजूर भी बेखटके घर लौट आवेंगे। इस-लिए श्रीचरणों में निवेदन है कि मुझे आठ सौ रुपया देने के लिए सदर दफ्तर के खजाञ्ची के नाम एक हुक्मनामा भेज दिया जाय। मैं एक एक पैसे का हिसाब लिखता जाता हूँ। हुजूर जब कुशल-पूर्वक घर लौट आवेंगे तब मैं जमा-खर्च का हिसाब पेश करूँगा। यथासाध्य थोड़े खर्च में सब काम करने

की चेष्टा कर रहा हूँ । श्रीमान् अपना कुशल समाचार लिखकर दास को अनुगृहीत करेंगे । इति" ३ अगहन ।

आजमगढ } आज्ञाकारी
रौनकलाल

पत्र पढ़कर गोपीकान्त की चिन्ता बहुत कुछ घट गई। यद्यपि मुकद्दमा अभी चल रहा है तथापि कुलदीपलाल मुख्तार मेरे पक्ष का एक प्रधान गवाह हैं । पहले उस खो ने मुख्तार के पास बिलकुल और ही तरह का बयान किया था । बड़े यत्न से चिट्ठी को नये खरीदे हुए टीन के बक्स में रख दिया ।

विश्वस्त नौकर की सूक्ष्म बुद्धि और कार्यदक्षता की मन में बहुत प्रशंसा करके गोपीकान्त ने उसे चिट्ठी का जवाब दिया। लिखा—"सदर खजाची के नाम से हुक्मनामा भेज दिया है। वह तुमको हजार रुपया देगा । मुकद्दमे की पैरवी के लिए तुम अपने पास आठ सौ रखकर बाकी दो सौ रुपये रजिस्टरी चिट्ठी द्वारा मुझे भेज दो । कल मैं प्रयागराज जाऊँगा । वहाँ पहुँचकर तुम्हें अपना पता लिखूँगा । तुम रजिस्टरी कराकर उस पते पर दो सौ रुपये के नोट भेज देना और सब समाचार लिखना ।" —पत्र के नीचे अपने नये नाम का दस्तखत कर दिया ।

उनतालीसवाँ परिच्छेद

पाँच बजे देवेन्द्र बाबू कचहरी से लौटे। देखा तो बाहर के बरामदे में एक जमींदार का नौकर बैठा है। उसने खड़े होकर देवेन्द्र बाबू को प्रणाम किया। देवेन्द्र बाबू ने पूछा—कहाँ से आये हो ?

"वीरपुर से।"

"वीरपुर से! अच्छा, अच्छा। कब आये ?"

"अभी आया हूँ।"

"घर पर कुशल है ? बाबू अच्छे हैं ?"

"जी हाँ। सब लोग अच्छे हैं। केवल बिटिया बीमार है। इसलिए आब-हवा बदलाने को उन्हें कहीं ले जाना चाहते हैं। आज रात में वे यहाँ पहुँचेंगे। आप लोग जहाँ ले जाने की राय देंगे वहाँ ले जायँगे। कहते थे, आप लोगों से मिल कर वे कल की गाड़ी से रवाना हो जायँगे।"

"लड़की बीमार है ? उसे क्या होता है ?"

"ज्वर आता है, दस्त लगते हैं। बदन सूख कर आधा हो गया है।"

"अच्छा, बाबू यहाँ किस समय पहुँचेंगे ?"

परसों सात बजे तड़के वहाँ से चलने की बात थी। आज रात को नव दस बजे तक यहाँ आ जायँगे।

"साथ में कौन कौन आता है?"

"बाबू साहब, बहूजी, बिटिया और छोटा बच्चा। नौकरनी, कहार और एक रसोइया भी आवेगा।"

"यह सवाद भीतर कहला भेजा है?"

"जी नहीं।"

"अच्छा बैठो" कहकर देवेन्द्र बाबू अन्दर गये। कुछ देर में उनके पिता बाहर आये। उन्होंने भी सिपाही से अनेक प्रश्न करके पूछा—यहाँ से कहाँ जायँगे?

सिपाही ने हाथ जोड कर कहा—यह नहीं कह सकता। सुना था, कलकत्ते जाने की राय न होगी तो प्रयाग लेजायँगे।

माधव बाबू ने कमरे के भीतर जा गोपीकान्त को देखकर कहा—आज मेरा भानजा आ रहा है।

"कहाँ से आरहे हैं?"

"वीरपुर से। वह वहाँ का जमींदार है। उसकी लडकी बीमार है, इसी से उसको जल-वायु बदलाने के लिए कहीं ले जायगा। हम लोगों से भेंट करके कल खा-पीकर दो बजे की गाडी से उसके रवाना होने की खबर है। परन्तु मैं उसे इतना जल्द नहीं जाने दूँगा।"

गोपीकान्त—कल में भी जाऊँगा। आज घर से रुपया आ गया।

"घर पर सब लोग अच्छे हैं?"

"जी हाँ, सब लोग अच्छे हैं।"

"कल हम लोगों को छोड़ कर आप चल देना चाहते हैं। दो दिन यहाँ और रहना होगा। जरा बाजार हो आऊँ। वहाँ से लड़के बच्चे आते हैं, उन्हें अच्छी तरह खिलाना पिलाना होगा"—कह कर वे एक नौकर को साथ ले बाजार गये। बाजार से कितने ही फल, तरकारी और मिठाइयाँ मोल ले आये। सन्ध्या के अनन्तर देवेन्द्र बाबू कमरे में आ बैठे। गोपीकान्त ने उनसे पूछा—जो आ रहे हैं वे शायद आपके फुफेरे भाई हैं?

"जी हाँ, मेरे फुफेरे भाई हैं। वीरपुर के जमींदार हैं।"

"नाम क्या है?"

"धर्मपालसिंह। जमींदार का लड़का होने पर भी पढ़ा-लिखा खूब है। बी० ए० पास है। वह सुयोग्य लेखक भी है। मासिक पत्रों में अच्छे अच्छे प्रबन्ध लिखता है। उस दिन 'सरस्वती' में उसका एक लेख देखा था—'प्राचीन भारत में बन्दूक थी या नहीं?' रामायण आदि ग्रन्थों से अनेक श्लोक प्रमाण में देकर सिद्ध कर दिया है—राजा दशरथ के समय में बन्दूकें और तोपें थीं।"

पूर्व भारत में बन्दूकें थीं या नहीं? इसकी चिन्ता से

गोपी बाबू के सिर में कुछ भी दर्द न हुआ, इससे उसने इस बात पर कान भी न दिया। कालेज के उच्च शिक्षित नवयुवकों से वह बहुत डरता था। उसने प्रयाग जाने का निश्चय किया है—अगर बाबू का भानजा भी वायु-परिवर्तन के लिए वहाँ गया तो बड़ी गड़बड़ होगी। घर के मुखिया माधव बाबू अभी गोपीकान्त को दो-एक दिन और रोक रखना चाहते हैं। यह न होगा, कल गोपीकान्त को यात्रा करनी ही पड़ेगी।

गोपीकान्त को चुप देख कर देवेन्द्र बाबू ने पूछा—महाराज दशरथ के पास तोपें-बन्दूकें थीं, इसे आप स्वीकार करते हैं?

गोपीकान्त—अयँ, क्या कहा?

इसी समय माधव बाबू ने अन्दर के द्वार में खड़े होकर देवेन्द्र बाबू को पुकारा—जरा भीतर तो आओ। धर्मपाल का बिछौना किस कमरे में होगा, इसका निश्चय करलो।

"आता हूँ"—कह कर देवेन्द्र भीतर चले गये। इसलिए बन्दूक की बात आगे न बढ़ी।

रात के नव बजे धर्मपालसिंह परिवार सहित आ पहुँचे। उस रात को गोपीकान्त के साथ उनकी साधारण बात चीत हुई। इससे वह समझ गया कि आगत व्यक्ति शिक्षित होने पर भी भयङ्कर नहीं है।

दूसरे दिन सबेरे सात बजे धर्मपालसिंह बाहर आये। उनके लिए चाय आई। उन्होंने गोपीकान्त से पूछा—आप चाय पीते हैं?

गोपीकान्त चाय का बड़ा ही प्रेमी था। घर पर वह नित्य सवेरे चाय पिया करता था। किन्तु यहाँ आकर सज्जनों और परमभक्तों में परिगणित होने के कारण सवेरे चाय पीने का सुयोग नहीं मिलता था। आठ बजे वह वृद्ध के साथ गङ्गास्नान करने जाता था। स्नान करके, बूढ़े को दिखाने के लिए, घाट पर बैठ कर भजन-पूजन का आडम्बर फैलाता था। घर लौटते लौटते दस बज जाते थे। तब तक चाय पीने का समय टल जाता था।

आज चाय के गरमागरम प्याले को देख कर उसे बड़ा ही लोभ हुआ। विशेष कर वृद्ध माधव बाबू भी वहाँ उपस्थित न थे। इसी से गोपीकान्त ने कहा—हाँ, कभी कभी पीलेता हूँ।

धर्मपाल बाबू ने प्याले को गोपीकान्त की ओर बढ़ा कर कहा—"यह आप लीजिए, मैं दूसरा मँगवाता हूँ।" अरे जा, भीतर से एक प्याला चाय और ले आ।

गोपीकान्त ने योंही झूठी आपत्ति की, फिर यह भी सोचा कि वृद्ध के आने के पहले ही प्याला खाली कर डालना अच्छा है।

धर्मपाल ने कहा—आप पीते क्यों नहीं? एक प्याला और तो आही रहा है।

गोपीकान्त चाय पीता जाता था और शङ्कित नेत्रों से बीच बीच में अन्तःपुर के द्वार की ओर देखता जाता था।

नौकर चाय का दूसरा प्याला ले आया। चाय पीते पीते

धर्मपाल बाबू ने कहा—कल रात को आप का सब वृत्तान्त सुना। आप बड़े गुंडे क पाले पड गये थे। कितने लुच्चे बदमाश बैरागी का भेस बना कर घूमते हैं, इसका ठिकाना नहीं। कितने ही बदमाश जेल से भाग कर, कितने ही खून या डकैती करके, पुलिस के डर से बैरागी बन कर घूमते फिरते हैं। किसी पर सहसा विश्वास नहीं करना चाहिए। आप को तो उसने बड़ी विपद में डाल दिया था।

"गहरी विपत्ति में डाल दिया था। उत्तर को जा रहा था। रुपये के अभाव से यहीं एक सप्ताह बीत गया। कल घर से रुपया आ गया है। मैं आज ही यहाँ से रवाना हूँगा किन्तु माधव बाबू जिद करते हैं। कहते हैं, आज मुझे नहीं जाने देंगे और शायद आपको भी न जाने दे।"

धर्मपाल ने इधर उधर देख कर धीरे से कहा—बाबू गोपीलालजी, यह ठीक हो जायगा। मैंने पञ्चाङ्ग देख लिया है। कल अश्लेषा है, परसो मघा, तरसो बृहस्पतिवार, उसके अगले दिन पूर्णिमा और उसके बाद प्रतिपदा है। जो आज न जायँ तो फिर पाँच दिन तक यात्रा नहीं बनेगी। यही कह कर मामा से आज्ञा लूँगा। आपकी भी छुट्टी मजूर करा दूँगा। आप कहाँ जायँगे ?

"मैं प्रयाग जाना चाहता हूँ।"

"प्रयाग। हम भी तो अब वहीं जायँगे। कलकत्ते जाने की राय नहीं हुई। जाडो के लिए वह स्थान बडा ही विलक्षण है।

मेरी लड़की बहुत बीमार है, इसी से उसको हवा बदलाने के लिए ले जा रहा हूँ । अच्छी बात है । हम लोग भी साथ ही साथ चलेंगे । किस ट्रेन से जाना होगा ?'

इसी समय माधव बाबू आ पहुँचे । वे अन्तिम वाक्य सुन कर बोले—अभी ट्रेन की खोज लेने की ऐसी क्या जल्दी है ? दो दिन ठहरो, तब जाना । गोपीलाल को भी आज न जाने दूँगा ।

धर्मपाल ने सिर झुकाकर गोपीकान्त की ओर टेढी दृष्टि से देख मुस्कुरा कर कहा—यह तो अच्छा ही होता—किन्तु कल अश्लेषा है, परसों मघा, तरसों बृहस्पतिवार, उसके अगले दिन पूर्णिमा, पूर्णिमा के बाद प्रतिपदा होगी । जो आज न जायँ तो पाँच छ दिन लगजायँगे । लड़की का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया है । इतने दिन विलम्ब करना ठीक होगा ?

"तुम ने पञ्चाङ्ग देखा है ?"

"जी हाँ ।"

यह सुन कर माधव बाबू चुप हो रहे । देवेन्द्र बाबू के आने पर उन्होंने कहा—बेटा देवेन्द्र, धर्मपाल तो आज ही जाना चाहता है । कहता है, आज न जाने से पाँच दिन तक मुहूर्त्त नहीं बनेगा ।

देवेन्द्र—तब तो जाने देना ही ठीक है ।

गोपीकान्त—इतने दिन और देरी करना तो मेरे लिए भी अच्छा न होगा । तीर्थ करके शीघ्र घर लौटना है ।

माधव ने कहा—मैं अब कुछ न कहूँगा । क्यों धर्म, तुम किस ट्रेन से जाना चाहते हो ?

गोपीकान्त ने कहा—तीन बजे यहाँ से एक पैसिञ्जर गाडी जाती है । एक सवेरे भी जाती है । मैं तीन बजे की गाडी से ही गणेशजी का नाम ले कर निकल पडूँगा ।

धर्मपाल ने कहा—मैं भी तीन बजे की ट्रेन से ही जाता किन्तु इस ट्रेन से जाने मैं रात को प्रयाग पहुँचूँगा । लडकी को ठण्ड लगेगी । वहाँ जाडा कुछ अधिक होता है । सवेरे की गाडी से जाने ही में मुझे आराम होगा । गोपी बाबू, आप भी उसी गाडी से क्यो नहीं चलते ?

"सवेरे की गाडी से ?"

देवेन्द्र बाबू ने कहा—यही अच्छा होगा ।

माधव बाबू ने कहा—हाँ, यही अच्छा होगा । धर्म अकेला है, बाल-बच्चों को साथ लिये जा रहा है । सबेरे पहर आज कल ट्रेन में अकूसर गडबड हुआ करती है । गोपीलाल बाबू, तुम धर्म के ही साथ जाओ । इससे मैं भी बहुत कुछ निश्चिन्त हो सकूँगा ।

गोपीकान्त राजी होगया । तब धर्मपाल ने कहा —गोपीलाल बाबू, आप प्रयाग में कितने दिन रहेंगे ?

"अधिक से अधिक एक महीना ।"

"ठहरने के लिए मकान का प्रबन्ध कर लिया है ?"

"जी नहीं, मकान का बन्दोबस्त नहीं किया है । अभी

पण्डे के ही मकान में उतरूँगा, फिर कोई मकान पसन्द करके भाड़े पर ले लूँगा।"

"मैंने एक मकान किराये पर ले लिया है। एक काम कीजिए न, पण्डे के घर में ठहर कर आप क्यों कष्ट सहेंगे। अभी चल कर मेरे ही मकान में विश्राम कीजिए। इसके बाद सुभीता देख कर कोई मकान आपके लिए ठीक कर दिया जायगा। आप तो वहाँ एकही महीना रहेंगे। मैं आपसे अनुरोध करने का साहस नहीं कर सकता, नहीं तो एक महीने के लिए कोई मकान लेने की जरूरत ही क्या है? आप तो अकेले हैं। यदि एक महीना मेरे यहाँ रहेंगे तो मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँगा। क्यों मामाजी, मैं बेजा तो नहीं कहता?"

वृद्ध ने कहा—अगर ऐसा हो तो बहुत अच्छा है। गोपीलालजी, यही करो। यमें अभी लड़का है, बहू भी वैसीही है। दो नये यात्री, दो बच्चों को लेकर, विदेश जाते हैं। बच्चों में भी एक बीमार है। वहाँ न कोई भाई-बन्धु है और न कोई अपना सम्बन्धी। ऐसी अवस्था में वहाँ जाने देने को तो मेरा जी ही नहीं चाहता था। आप इनके पास रहेंगे तो इसको आपसे बहुत कुछ सहायता मिलेगी।

गोपीकान्त ने कुछ देर तक मन में सोचा। अब यह बात उसकी समझ में अच्छी तरह आगई कि धर्मपालसिंह आदमी अच्छा है, निष्कपट है और निरभिमानी है। उच्च शिक्षा पाने पर भी उच्छृङ्खल नहीं है। इसका साथ दुःखदायी नहीं

होगा। इसलिए बोला—अच्छा, मैं कल इन्हींके मकान पर रहूँगा। ये अगर मुझे नजदीक कोई घर खोज देंगे तो मैं बराबर इन लोगो की खोज-खबर लेता रहूँगा। धर्मपाल बाबू ने जो अपने यहाँ रहने के लिए मुझसे आग्रह किया है इससे इनकी वडी ही सज्जनता प्रकट होती है। इनकी शिष्टता से मैं अत्यन्त तृप्त हुआ हूँ। किन्तु एक महीने तक इनका गलग्रह हो कर रहना मेरे लिए ठीक न होगा। एक साथ रहने से मैं ही इनके काम आ सकता हूँ यह नहीं, वल्कि इनके द्वारा भी मेरे अनेक उपकार हो सकते हैं।

सब के मन के मुताबिक सब काम ठीक हो गया। गोपीकान्त ने पूछा—धर्मपाल बाबू, प्रयाग में आपके उस मकान का पता क्या है। वह पता मुझे घर पर लिख भेजना है।

धर्मपाल ने कहा—उस मकान का नाम लाल कोठी है। 'लाल कोठी—प्रयाग' यह पता लिख देने ही से वहाँ चिट्ठी पहुँच जायगी।

गोपीकान्त ने रौनक को चिट्ठी लिख दी—"लाल कोठी, प्रयाग, इस ठिकाने से मुझे रुपया भेजो और चिट्ठी लिखो।" सन्ध्या समय माधव बाबू के नोकर-चाकरो को इनाम देकर गोपीकान्त ने धर्मपाल बाबू के साथ प्रयाग की यात्रा की।

चालीसवाँ परिच्छेद

वलदेव बाबू के जन्मदिन के उपलक्ष्य में वन-भोजन करके सब लोग जब जलपथ से घर लौटे तब साँझ होने में विलम्ब न था। घर पहुँच कर उसी बैठक में चाय पीने के लिए सब इकट्ठे हुए। बलदेव बाबू आज कुछ गम्भीर भाव धारण किये बैठे हैं। दृष्टान्तार्णव की दृष्टान्त तरंगें आज शान्त हैं। दिनभर के उत्सव-आमोद ने उन्हें कुछ श्रान्त कर दिया है। आज सन्ध्या-समय वे सोच रहे हैं, हमारे जीवन की भी सन्ध्या अब समीप है। आत्मीय जनों की एकान्तिक इच्छा रहने पर भी उनका जन्म-दिन अब अधिक बार नहीं लौट आवेगा।

कुछ देर बाद सुधा सब के लिए चाय ले आई। पहले पिता को देकर उसने मोती बाबू के आगे प्याला रक्खा। मोती बाबू ने कहा—मुझे क्षमा कीजिए।

सुधा बोली—क्यों, उस समय तो पी ली थी। कहा था, अच्छी लगती है।

"केवल बाबूजी के जन्म-दिन की खुशी में एक प्याला पी लिया था।"

"मान लीजिए, बाबूजी का जन्म-दिन इस समय भी है।"

मोतीलाल ने हँस कर कहा—तुम्हारी भौजाई ने नहीं माना इसी से उस समय पीनी पड़ी।

सुधा ने मुँह फुला कर कहा—आप भाभी के अनुरोध से पियेंगे, और मेरे अनुरोध से नहीं ?

बलदेव बाबू, उनकी स्त्री, नारायणप्रसाद और सुशीला, ये सब यह तमाशा देख कर मनही मन आनन्द पारहे थे। सुधा का मुँह देख कर मोती समझ गया कि चाय न पीने से बालिका के मन में बड़ा दुःख होगा, तब उसने मुस्कुराहट के साथ हाथ बढ़ा कर कहा—अच्छा लाओ।

चाय देकर सुधा ने अपना बायाँ हाथ सुशीला की ओर बढा कर कहा—भाभी रुपया दो।

माँ ने पूछा—कैसा रुपया बेटी ?

सुधा ने कहा—बाजो का रुपया। भाभी ने कहा था, "मैंने मोती बाबू को उस वक्त चाय पिलाई है इससे क्या तुम भी पिला सकोगी ? कभी नहीं पिला सकोगी।" और मैंने कहा, "मैं जरूर पिला सकूँगी।" चार रुपये की बाजी लगी थी। जो बाजी जीते वह बाजो के रुपये आतिशबाजी में उडावेगी। लाओ भाभी रुपया दो।

सुशीला ने हँसते हँसते आँचल के खूँट से चार रुपये खोल कर सुधा के हाथ में दे दिये।

सुधा ने वह रुपये नारायणप्रसाद के हाथ में देकर कहा—भैया, आतिशबाजी बाजार से मँगवा दो।

माँ ने कहा—अभी वे चीजें कहाँ मिलेंगी ? यह क्या काशी-कलकत्ता है ?

सुधा ने कहा—बाजार में मिलेंगी। दिवाली के समय दूकानों में जो आतिशबाजी बिकने आई थी उसमें से अब भी बहुत बच गई है। वीरेन्द्र ने मुझसे कहा है।

वीरेन्द्र ने इस बात का समर्थन कर के कहा—हाँ माँ, अब भी दूकानों में कितनी ही आतिशबाजी पड़ी है। फुलझड़ी है, चरखी है, चक्र है, आसमान तारा है, महताब है।

बलदेव बाबू ने कहा—आतिशबाजी में रुपया फ़ूकना व्यर्थ है।

सुधा ने कहा—तब महारानी की जुबली के समय आतिशबाजी क्यों छूटी थी? आपके भी जन्म-दिन में हम आतिशबाजी का तमाशा देखेंगी।

बलदेव बाबू ने स्नेह से कहा—अच्छा, तो बाजी का रुपया आतिशबाजी में ही फुँके।

चाय-पानी के अनन्तर कुछ देर तक गपशप हुई। इतने में बाजार से कई किस्म की आतिशबाजी आगई।

अन्त पुर के पीछे एक तालाब है। उसीके घाट पर आतिशबाजी छोड़ी जायगी। सभी लोग मकान के पीछे वाले बरामदे मे जा बैठे। खुशी खुशी आध घटे तक आतिशबाजी का तमाशा हुआ।

रात को जब तक नींद न आई तब तक लेटे लेटे मोतीलाल न मालूम क्या क्या सोचता रहा। उसके विचारों के सिलसिले के

बीच बीच में एक सुन्दर सुकुमार मुखड़ा बार बार दर्शन देकर उस विचार-परम्परा को तोड़ने लगा । आखिर वह प्रसन्न मुख और बड़ी बड़ी आँखें ही उसकी चिन्ता के विषय-रूप में परि हो गई । सुधा ने आज दिन भर अपने परिजनो के साथ कौतुक किया है, जो मीठी मीठी बातें कही हैं, वह सभी भा पूर्ण दृश्य एक एक कर उसकी आँखों के सामने आने लग क्रम क्रम से नींद के आवेग ने जब उसे विह्वल कर डाला वह मन में यह कह कर सो गया—बालिका बड़ी अच्छी है जिसके साथ इसका विवाह होगा, वह सुखी होगा ।

मोतीलाल गाढ़ी निद्रा में निमग्न हुआ । आज दिन खुले मैदान में इधर उधर घूमता रहा है, इससे उसे बड़े सुख नींद आई । रात्रि के पिछले पहर उसने स्वप्न देखा, मानो व दूल्हे के रूप में सुसज्जित होकर विवाह-मण्डप में आया है। चा ओर लोगों की भीड़ लगी है । सुहागिनें मङ्गल गीत गा रही हैं बाहर बाजे बज रहे हैं। रोशनी की अपूर्व शोभा चारो ओर छ रही है । स्त्रियो के द्वारा विवाहकालिक विधि आरम्भ हुई वर और कन्या को एक लाल कपड़े से ढक कर मुखावलोक कराया गया । मोतीलाल ने देखा तो कन्या और कोई नहीं— सुधा है ।

चिड़ियों की चहचहाहट से नींद टूटने पर कुछ देर तक मोती को ऐसा मालूम होता रहा जैसे वह सुख-सरोवर में स्नान करके निकला हो । अँगड़ाई-जम्हाई लेने के बाद मोती

लाल उस अँधेरे कमरे में बिछौने के ऊपर उठ बैठा। सोचा, यह क्या सपना देखा है? क्या मेरे सन्यास धारण का यही परिणाम है? क्या विवाह करके संसार-जाल में बद्ध होकर वासना पूरी करने और रुपया कमाने ही को जीवन का प्रधान उद्देश्य बनाना होगा? मन में सपने की बात की समालोचना करके उसे अपने ऊपर कुछ क्रोध भी हुआ। सपना देखना या न देखना अवश्य ही पूर्णतया किसी के इच्छाधीन नहीं है, किन्तु इस स्वप्न से उसके मन में हर्ष क्यों हुआ? यह तो हर्ष की बात नहीं, प्रत्युत विरक्त होने की—घृणा करने की—बात है। ज्ञानशक्ति सो रही थी। स्वामी की अनुपस्थिति में सेवक चित्त, संयम खोकर, बुरे मार्ग पर घूमने लगा। ऐसा नौकर तो अच्छा नहीं। जब तक मालिक की नजर के सामने रहा तब तक बड़ाही शिष्ट और आज्ञाकारी रहा किन्तु आँख की ओट होते ही यथेच्छ विहरण करने लगा।—अपने चित्त पर आँखें लाल कर मोती ने भविष्य के लिए उसे सावधान कर दिया।

सबेरे उठ कर मोतीलाल ने सुना कि सुधा को ज्वर आ गया है। कल वन-भोजन के उत्सव में जाकर उसने नदी में बड़ी देर तक स्नान किया था। यह उसीका प्रतिफल है। बुखार मामूली है, चिन्ता का कारण नहीं। स्नान-ध्यान करके जब मोतीलाल भीतर जलपान करने गया तब उसके नेत्र सुधा को इधर उधर खोजने लगे। सोचा, ज्वर तो साधारण है—शायद वह भी चादर ओढ़े हुए दर्शन देगी। किन्तु वह कहीं भी देख न पड़ी।

उप काल में सावधान कर देने पर भी उसका मन सुधा को न देखने से उदास होगया।

मोतीलाल के मन में दिन भर यह आशा लगी रही कि शाम को चाय पीते समय सुधा अवश्य आवेगी, किन्तु वह आशा भी विफल हुई। सुशीला और नारायण बाबू के अनुरोध करने पर भी आज उसने चाय नहीं पी। आज की यह सायकालिक सभा उसे आनन्ददायक न हुई—एकदम निर्जीव सी जान पडी। माना पेड है, फूल नहीं, आकाश है, चादनी नहीं।

रात को बिछौने पर लेट कर मोतीलाल सोचने लगा कि रोग से आक्रान्त होने का पूर्वलक्षण स्पष्ट ही दिखाई दे रहा है। किस्से-कहानियो में जैसा सुना जाता है बिलकुल वही हाल है। इसी तरह अज्ञानी एक एक पग करके आगे बढता है—और अन्त में अगाध जल में गिर कर बह जाता है या कुघाट मे जा लगता है। नहीं, ऐसा होने से काम नहीं चलेगा। मोती पहले नहीं जानता था कि मेरा हृदय इतना दुर्बल है। सुधा,—सुधा—सुधा—सारा दिन उसका मन क्यों सुधामय हो रहा है। उस बालिका में ऐसा क्या है जो चित्त को इस तरह खींच रहा है? वह क्या जानती है? न दर्शन जानती है न विज्ञान, शायद यह भी नहीं जानती कि शास्त्र किसे कहते हैं। गीता उपनिषद् आदि वेदान्त का विषय भी उसका पढ़ा हुआ नहीं है। विचारशक्ति-विहीन, निरी भोली भाली तेरह वर्ष की बालिका है। उसका मुँह सुन्दर है, लावण्ययुक्त है, आँखें बडी बडी हैं, ओठो पर कपट-भरी

मीठी मुस्कुराहट नाचती रहती है—गले की आवाज़ सुरीली है—बस, यही तो उसकी सम्पत्ति है। क्या इसी पर मोती पागल होगा? नहीं नहीं, मोती! सावधान! यह कल्पना से बाहर की बात है—बड़ी अश्रद्धेय बात है।

कुछ देर तक अपने हृदय की जाँच करने पर मोती समझा—तर्क करने से क्या होगा? पागल होने में अब क्या बाकी है? रात को मानो नींद ने बड़ा अपराध किया था। और, आज दिन भर के इस जागरण ने? सुधा को एक बार देखने के लिए उसका मन क्या प्यासे व्यक्ति की भाँति छटपटा नहीं रहा है? अपने को आपही ठगने से तो कुछ हाथ नहीं आता। रोग होने का पूर्व-लक्षण क्या, यह तो रोग के ही सारे लक्षण हैं। रोग से भली भाँति आक्रान्त हो चुका हूँ। तो? तो अब उपाय? उपाय भागने के सिवा और क्या हो सकता है? कलही इन लोगों से विदा हो कर घर चल दूँगा। समय रहते सावधान होना अच्छा है।

उस रात को मोती ने सुधा को स्वप्न में नहीं देखा। तड़के उठने पर उसके मन का भाव विजयी वीर के सदृश होगया। सोचा, रोग के अंकुर ने जरा सिर उठाया था सही, किन्तु उसने उसे अपने पैर के तलुवे से अच्छी तरह कुचल कर पीस डाला। क्या वह कोई ऐसा वैसा है? वह मोह-गज-केसरी साक्षात् मोतीलाल है। मोहिनी मूर्त्ति धारण करके संसार-सुख किसको ठगने आया था? आदमी को नहीं पहचानता? मोतीलाल के पास तेरी एक न चलेगी।

कमरे के बाहर आकर सुना कि रात्रि में सुधा का ज्वर चढ़ गया था। सारी रात बेचैनी थी। यह सुनते ही मोती के हृदय में वेदना का तार बजने लगा। नारायण से पूछा—कितनी डिगरी का बुखार है ?

"रात में १०५ तक पहुँच गया था। अभी १०४ डिगरी है।"

"कोई डाक्टर आया था ?"

"रात को ग्रामीण वैद्य आया था। उसको बुलाने के लिए फिर आदमी भेजा है। तीन घंटे से ऊपर हो गये, अभी तक ज्वर नहीं उतरा है। कुशल इतनी ही है कि और कोई उपद्रव नहीं।"

उस दिन प्रात काल की पूजा में मोतीलाल का जी नहीं लगा। वह मन मारकर बाहर के कमरे में अकेला बैठा रहा। नारायण और बलदेव बाबू भीतर थे। खबर न पाने से उनका जी और अकुला उठा। दो एक नौकरों से पूछा, पर वे अच्छी तरह कुछ नहीं कह सके। सिर्फ इतनाही कहा—बहुत बीमार है।

मोतीलाल ने किसी तरह ज्यों त्यों करके दिन का आधा भाग बिताया, इसके बाद वह अपनी वेदना-को नहीं रोक सका। उसे हाथ पर हाथ रक्खे चुपचाप बैठ रहना असह्य मालूम होने लगा। उसने सोचा—जाता हूँ, भीतर जाकर देखता हूँ, सुधा कैसे है। घर की सभी स्त्रियाँ तो मेरे सामने निकलती हैं। तो फिर सकोच कैसा ?

यह सिद्धान्त करके मोतीलाल भीतर चला। मानो उसके हृदय के भीतर कोई बोल उठा—"वाह रे मोहगजकेसरी ! बड़ी

आतुरता देख रहा हूँ । क्या किसी को ज्वर नहीं आता ?" मोतीलाल ने मन को उत्तर दिया—मेरे मित्र की बहन बीमार है—मैं चिन्तित क्यो न हूँगा ? यदि मेरी बहन होती—यदि उसको ऐसा बुखार होता तो ?

भीतर जाकर आँगन में सुशीला को देख कर पूछा—सुधा कैसे है ?

"घोर ज्वर है ! १०६ डिगरी है। सिर पर ओडिकलोन की पट्टी रक्खी गई है। आइए न,—देख लीजिए।" कह कर सुशीला मोती को ऊपर लेगई।

सुधा पलँग पर लेटी है । आँखें बन्द हैं। मोती के पैरों की आहट सुनकर एक बार आँख खोली परन्तु यह नहीं जान पडा कि उसने किसी को पहचाना हो । वह एकदम अचेत अवस्था में पडी थी । उसके माँ-बाप, भाई, सभी उद्विग्न मन से उसके पास बैठे थे ।

सुधा का ज्वर से कुम्हलाया हुआ चेहरा देख कर मोती को मानो रुलाई आने लगी । बडे कष्ट से अपने को सँभाल कर वह बाहर चला आया ।

रात को मोतीलाल ब्यालू करने बैठा सही पर उससे कुछ खाया नहीं गया । दुश्चिन्ता में पड कर वह रात भर करवट बदलता रहा।

दूसरे दिन सवेरे उठ कर उसने भीतर जाकर देखा तो ठाकुरजी के कमरे के द्वार पर सुशीला खडी खडी रो रही है ।

इकतालीसवाँ परिच्छेद

मोतीलाल शयन-गृह में जाकर सोया नहीं, एक आराम-कुरसी पर बैठकर आकाश-पाताल की बातें सोचने लगा। अहा! ऐसा एक सुन्दर फूल क्या सदा के लिए इस संसार से लुप्त हो जायगा? वह मन ही मन कल्पना करने लगा, मानो भोर का समय है। भीतर कुहराम मचा हुआ है। सभी लोग चिल्ला चिल्ला कर रो रहे हैं। यह सुन कर वह भी दौड़ कर भीतर गया। देखा तो सुधा को लोग घर से उठा कर बाहर बरामदे में ले आये हैं। आत्मीय परिजन उसे चारों ओर से घेरे हुए हैं। वह इस संसार से अन्तिम विदा ले रही है। सब उसके बदन से लिपटे हुए रो रहे हैं। मन में इस कल्पना का आविर्भाव होते ही मोती की आँखों में आँसू उमड़ आये।

कुछ देर तक आँसुओं का प्रवाह जारी रहा। मोतीलाल ने कुरसी से उठ कर घड़ी में देखा तो बारह बजने में विलम्ब न था। द्वार खोल बरामदे में खड़ा हो कर वह दो मंजिले-कोठे की खिड़की की ओर देखने लगा। दोनों कमरों में रोशनी हो रही है। एक में सुधा है, और दूसरे कमरे में डाक्टर सोया है। मोतीलाल बरामदे में टहलने लगा। बीच बीच में अन्तःपुर के उन दोनों प्रकाशित कमरों को देख कर वह दीर्घ निःश्वास लेता जाता था। टहलते टहलते मन में सोचा कि यदि मैं केवल

मित्र न होता, कोई आत्मीय होता तो बलदेव बाबू मेरे साथ ऐसे कठोर निर्वासन की व्यवस्था न करते। वह बड़ी देर तक चिन्तित चित्त से टहलता रहा। जब एक बज गया तब वह अपने कमरे के भीतर जा द्वार बन्द कर, बत्ती कम कर के, बिछौने पर लेट रहा।

किन्तु जिसका मन ऐसी घोर दुश्चिन्ता से दुखी होगा उसकी आँखों में नींद सहज ही क्यों आवेगी? बड़ी देर तक करवट बदलते बदलते ज़रा आँख लग गई।

अर्धनिद्रित अवस्था में सुन पड़ा, जैसे भीतर से रोने की आवाज आ रही हो। मोतीलाल घबड़ा कर उठ बैठा। कान दे कर सुना तो कुछ सुनाई न दिया। तब उसने जाना, और कुछ नहीं, सपने में सुना था।

बत्ती तेज कर के देखा, दो बज कर कई मिनट हुए थे। किवाड़ खोल कर वह फिर बरामदे में गया। उन दोनों कमरों में अब भी चिराग जल रहे हैं। भीतर सन्नाटा छाया है। कहीं से कोई शब्द सुनाई नहीं देता। यह देख कर मोतीलाल के मन से अमङ्गल की आशङ्का दूर हुई। अभी तक कुशल है, यह सोच कर उसे कुछ ढाढस हुआ।

बरामदे में कुछ देर तक टहलते टहलते उसके मन में बड़ी उत्कण्ठा हुई कि एक बार भीतर जाकर सुधा को देख आऊँ। कौन जाने फिर देखने का अवसर मिले या न मिले। एक बार उससे आखिरी भेंट कर लेना ही ठीक है। अब तीन बजने में

विलम्ब भी नहीं है। फिर उसने सोचा—मैं उसकी चारपाई के पास खडा हो कर क्या करूँगा ? बलदेव बाबू, नारायणप्रसाद आदि कितने ही लोग वहाँ मौजूद हैं। फिर मन में कहा—वही लोग रह कर क्या कर लेंगे ? अगर वह जाने पर होगी तो उसे कौन रोक सकेगा ?

तब सोचा,—डाक्टर साहब तो हैं। हैं तो क्या ? वही क्या करेंगे ? हाँ, एक महापुरुष हैं जो कुछ कर सकते हैं। जिनके हाथ में सारे ससार की बागडोर है और जिन्होंने अपने हाथ से इस अनन्त ब्रह्माण्ड की रचना की है, वही उसे लौटा सकते हैं। मैं अब उन्हीं को पुकारूँगा—हृदय से उन्हीं की प्रार्थना करूँगा। सुधा का जीवन उनसे भीख में माँग लूँगा।

कर्तव्य स्थिर करने में उसे कुछ विलम्ब नहीं हुआ। इस बात का इतनी देर तक स्मरण क्यो नहीं हुआ—यही उसे आश्चर्य जान पडा। सारी रात उसने जाग कर बिताई है। यह सारा समय वृथा ही गया। अब वह भगवान् के चरणो में मन लगा कर अपनी आर्त-पुकार उन्हें सुनावेगा।

मोतीलाल ने झट पट मुँह हाथ धोकर कपडा बदल डाला। सोने के कमरे के एक कोने में उसका पूजा करने का कुशासन, गङ्गाजली आदि सामान रक्खा था। उसने सिर्फ कुशासन ले लिया, गङ्गाजल आदि कुछ न लिया। उसकी आँखो से आज जो पवित्र धारा बह रही है वह भगवान् को गङ्गाजल से भी पवित्र जान पडेगी। आसन लेकर वह पीछे के बरामदे

में जा बैठा। उस बरामदे के नीचे कुछ ही अन्तर पर नदी बह रही थी। धक से उसे याद आगई कि कुछ दिन पूर्व इसी बरामदे में बैठकर वह उपनिषद पढ रहा था। उस समय हाथ में लाल कपडा लिये सुधा उसीके पास अक्षर लिखवाने आई थी।

आसन पर बैठ, पूरब मुँह हो, हाथ जोडे, आँखें मूँद कर मोतीलाल एकाग्र मन से ईश्वर की प्रार्थना करने लगा। घडी में तीन बज चुके थे। बाहर घोर अन्धकार था। नदी देख न पडती थी। किनारे से उसकी तरङ्ग के टकराने का मन्द मन्द शब्द मात्र सुन पडता था। और कहीं कोई शब्द न था। मोतीलाल करुणा भरे स्वर से एक बार अस्पष्ट शब्दों में प्रार्थना का वाक्य उच्चारण करता है—फिर बडी देर तक चुप हो रहता है।

चार बज गये। धीरे धीरे अँधेरा कम होता आता है। आकाश के तारों की ज्योति मन्द हो चली। मोतीलाल बीच बीच में आँख खोल कर देख लेता है कि रात कितनी है, फिर आँख मूँद कर ईश्वर की गहरी प्रार्थना में मग्न होजाता है।

अब रात नहीं है। पूरब ओर आसमान में सफेदी छा गई है। दो एक चिडियों की चहचहाहट सुनाई देने लगी है। नदी की ओर से प्रात काल की ठढी ठढी कोमल बयार आना आरम्भ हुआ है। मोती ने क्षणमात्र पूर्व आकाश की ओर देख कर फिर आँख मूँद ली।

पूरब ओर आकाश मे लाली छा गई है। भाँति भाँति के

पक्षियों के कलरव से नदी का किनारा शब्दायमान हो रहा है। क्रम क्रम से पूर्व दिशा की रक्तिमा गाढ़ी होने लगी। देखते ही देखते नये उदित सूर्य की एक सुनहरी किरण भगवान् का आशीर्वाद लेकर ध्यान-मग्न मोतीलाल के मस्तक पर आ पड़ी। तब उसने आँख खोल कर ईश्वर को साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

कुशासन को सोने के कमरे में रख कर मोतीलाल लम्बी डग से भीतर गया। वहाँ रोने का शब्द सुनाई नहीं देता, सर्वत्र सन्नाटा छाया है।

आँगन में जाकर देखा कि नारायण की माँ खड़ी है। वह मोती को देखकर बोली—सुधा अच्छी है। ज्वर उतर गया। होश के साथ बात-चीत की है। अभी सो गई है। यह कह कर नारायण की माँ ने आँख गड़ा कर मोती के मुँह की ओर देखा। तब मोती को धक से याद आगई कि दोनों गालों पर से जो आँसुओं की धार वह चली थी उसके चिह्न को मैं पोंछ कर नहीं आया हूँ। सकोच से नीचा सिर करके वह बाहर चला आया और मुँह-हाथ धो, स्नान करके, फिर पूजा पर बैठगया।

❀ ❀ ❀ ❀

सुधा अच्छी होगई है, पर अब भी वह दुर्बल है। ऊपर ही रहती है। शरीर में इतनी ताकत नहीं कि नीचे उतर सके। मोती ने इधर तीन दिन से उसे नहीं देखा।

सुधा के प्रति उसके मन का भाव कैसा है, यह अब उसे अच्छी तरह मालूम होगया है। इन कई दिनों से उसने हृदय

किया है कि प्रसङ्गवश बात चीत में उसके सामने सुधा का नाम निकल आने से उसे मालूम होता है, जैसे कानो मे वीणा का तार बज उठा हो। इसके लिए वह मन ही मन लज्जित होता है परन्तु किसी तरह अपने को सँभाल नहीं सकता। वह अपने हृदय की दुर्बलता का परिचय भली भाँति पा गया है, इसलिए उसने मन मे निश्चय किया है कि घर में रहना उसके लिए निरापद नहीं है। भाई की कही हुई बात अब उसे पल भर भी नहीं भूलती—"अगर तुम घर छोड कर सन्यासी हो जाते तो दूसरी बात थी। गृहस्थाश्रम में रह कर जो उसके नियम को न मानोगे तो इसका बुरा फल अवश्य होगा।" भाई ने अवश्य अन्य भाव से यह बात कही थी किन्तु उस समय यह बात मन में खुब नहीं जँची थी। अब उसके मन की वर्तमान अवस्था ही इसका विशेष प्रमाण है।

इस प्रकार आगे पीछे की बातों को अच्छी तरह सोच विचार कर मोतीलाल ने स्थिर किया कि घर में न रहूँगा। अब पक्के तौर से सन्यासी होजाऊँगा। घर में रहने से अपने साधन-भजन में पग पग पर विघ्न-बाधाएँ उपस्थित होती हैं। अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए अच्छे गुरु की भी आवश्यकता है। सो बाहर न निकलें तो वह गुरु महाशय ही कहाँ मिलेंगे? अब यहाँ से शीघ्र विदा हो, घर जाकर, गेरुए कपडे धारण करूँगा और लोटा-कम्बल ले बाहर निकल पड़ूँगा। अहा! वह क्याही उत्तम आत्मग्लानि-रहित स्वाधीनता का जीवन होगा! दिन भर

लोगों की नजर से बच कर एकान्त में बैठ, एकाग्र चित्त से, ईश्वर की उपासना में प्रवृत्त रहूँगा। यहाँ मित्र के आतिथ्य-सत्कार में एक सप्ताह से अधिक हो गया। अब विदा माँगने में विलम्ब ही क्या है? कुछ विलम्ब है तो यही कि सुधा ऊपर से उतरे तो उसे एक बार देखकर सदा के लिए यहाँ से प्रस्थान करूँ। अब मन में आत्मवञ्चना का भाव नहीं है। हृदय की चञ्चलता को अब वह क्षमा की दृष्टि से देख रहा है। इधर कई दिनों से उसने हृदय को अवकाश दे रक्खा है और इसीसे वह दिन रात किसी प्रियचिन्ता में डूबा रहता है। रहने दो—और दो दिन की बात है।

दो दिन बाद शाम को सुधा नीचे आई। जलपान करने के लिए भीतर जाकर मोती ने उसे देखा। उसका पीलापन लिये हुए सूखा सा चेहरा देख कर मोती का हृदय व्याकुल हो उठा। फिरोजी रङ्ग का रैपर ओढ़े सुधा बरामदे में धीरे धीरे टहल रही थी। मोती ने उसके पास जाकर पूछा—सुधा अब कैसी हो?

"अच्छी हूँ। अच्छा कहिए मोती बाबू, मैं इतना जल्द क्योंकर चंगी होगई?"

"मैं नहीं जानता। तो क्योंकर अच्छी हुई?"

"एक बड़ा तमाशा हुआ। बाबूजी ने आपको नहीं बतलाया?"

"नहां।"

"मैं बीमारी के समय, बेहोश होजाने के कारण, अनाप शनाप बकने लग गई थी—यह आपने नहीं सुना ?"

"सुना है।"

"मैंने उस बेहोशी में कहा था—मैं तो नहीं जानती, सभी कहते हैं,—मैं बार बार यही बोल उठती थी, 'माँ, मेरा ग्रामोफोन कहाँ है, मेरा ग्रामोफोन क्या हुआ ?' इसीसे जब मैं होश में आई तब भैया ने मुझसे कहा—'तुम जल्द अच्छी होजाओ तो तुम्हारे लिए ग्रामोफोन मँगवा दिया जाय।' उसी ग्रामोफोन के लोभ से मैं इतना जल्द अच्छी होगई हूँ।"

इसी समय सुशीला वहाँ आकर बोली—सुधा दिन भर ग्रामोफोन ग्रामोफोन जपती रहती है। जब तक इसका ग्रामोफोन न आवेगा तब तक यह भर नींद सोवेगी भी नहीं।

जलपान करके बाहर आकर मोती ने बलदेव बाबू से अपने जाने की प्रार्थना की। उन्होंने उसे और भी दो-चार दिन ठहरने के लिए सस्नेह अनुरोध किया। किन्तु मोती ने विनय करके उनके अनुरोध को अस्वीकृत किया।

कुछ रात बीतने पर जब सब लोग चाय पीने के लिए इकट्ठे हुए तब सुधा ने कहा—मोती बाबू, तो कल आप चले जाइएगा ?

"हाँ।"

"नहीं, कल मत जाइए। पहले मेरा ग्रामोफ़ोन आने दीजिए, तब गाना सुन कर जाइएगा।"

मोती ने सिर हिलाकर सूचित किया—नहीं, इतना विलम्ब करने से काम नहीं चलेगा । कल जाना ही है ।

तब सुधा ने पिता से कहा—बाबूजी, मोती बाबू को ठहरने के लिए कहिए। तीन ही चार दिन में तो मेरा ग्रामोफोन आ जायगा ।

बलदेव बाबू ने कहा—मैंने तो मोतीलाल से रहने के लिए बहुत कहा है परन्तु अब वे नहीं रहना चाहते ।

मोतीलाल ने कहा—अच्छा, ग्रामोफोन आने दो । दूसरी बार जब आऊँगा तब सुनलूँगा।

इस वाक्य से सुधा एकदम निराश हो गई । बलदेव बाबू ने कहा— जाओ बेटी, देखो चाय तैयार हुई ।

"जाती हूँ" कह कर सुधा ने मोती की ओर टेढ़ी गर्दन करके देखा और कहा—आप के लिए भी एक प्याला लाऊँ?

कुछ देर चुप रह कर मोती ने कहा—अच्छा, लाओ।

ग्रामोफोन आने तक रहना अस्वीकार करके मोती ने सुधा के मन मे दु ख दिया है । अब चाय पीना अस्वीकार करके उसके मन में और दु ख देने का उसे साहस नहीं हुआ । उसने यह भी सोचा—आजही तो अन्तिम दिन है । एकदम निष्ठुर व्यवहार करना ठीक नहीं ।

दूसरे दिन भोजन आदि करके मोतीलाल नारायणप्रसाद की माँ के पास विदा होने गया । तब वह अकेली थी । मोती के बैठने पर दो चार स्नेहभरी बाते कह कर बोलीं—बबुआ,

मैं तुमसे एक बात कहना चाहती हूँ, किन्तु कहने में कुछ सकोच होता है।

मोती ने कहा—माँ कौन बात? नारायण जैसा आपका लड़का है वैसा ही मुझे भी आप समझिए। जो कहना चाहती हैं, कहे। उसमें सकोच क्या?

इससे पहले मोती ने किसी की माँ को माँ नहीं कहा था।

मोती के मुँह से "माँ" सम्बोधन सुन कर नारायणप्रसाद की माँ बहुत प्रसन्न हुई। वे बोलीं—जैसा नारायण मेरा लड़का है वैसे ही तुम भी वास्तविक रूप से मेरे सन्तान-स्थानीय हो जाओ, यही मेरी लालसा है। मैं चाहती हूँ कि सुधा के साथ तुम्हें व्याह दूँ। तुम्हारे माँ नहीं है। मैं ही तुम्हारी माँ हो जाऊँ। यही मेरे मन की साध है।

मोती कुछ देर तक चुप रह कर बोला—माँ, यह होने की सम्भावना नहीं। मैंने अपने जीवन की गति को दूसरे मार्ग पर ले जाने का सङ्कल्प कर लिया है। गृहस्थाश्रम मेरे लिए नहीं है। मैं सन्यास धारण करूँगा।

"बेटा, यह क्या कहते हो? क्या यह सन्यासी होने की तुम्हारी अवस्था है? ऐसी बात मत बोलो। मेरी सुधा से तुम व्याह नहीं करते तो न करो—किन्तु सन्यासी होने की बात मुँह में मत लाओ। अगर और ही कहीं अच्छी लड़की देख भाल कर विवाह करके ससारी सुख भोगोगे तो भी मैं सुख पाऊँगी।"

मोती ने कहा—माँ, यदि मैं व्याह करता तो आपके आज्ञा-पालन के सौभाग्य से कदापि अपने को वञ्चित नहीं करता।

"यह अविचार की बात है। ऐसा न करो। मैं नारायण के पिता से कहती हूँ। वे तुम्हारे भाई को चिट्ठी लिख देंगे। इसी माघ में अच्छा मुहूर्त्त है। शुभ कार्य सम्पन्न हो जाय।"

मोती के नेत्रों में आँसू भर आये। वह खड़ा होकर बोला—"माँ, मुझे मायाजाल में फँसाने की चेष्टा न करो।" उन्हें प्रणाम कर और उनके पैरों की रज माथे में लगा कर वह चला आया।

घर पहुँच कर मोती वहाँ दो दिन रहा। तीसरे दिन पिछली रात को उसने गेरुए कपड़े पहने और लोटा-कम्बल लेकर वह खाली हाथ घर से निकल पड़ा।

बयालीसवाँ परिच्छेद

रौनकलाल ने सवेरे उठ मुँह-हाथ धो कर रेशमी धोती पहिन ली। फिर खडाऊँ पर चढ़ फूलों की टोकरी हाथ मे ले फूल तोडने के लिए फुलवाडी में गया।

अगहन का महीना है। जाडा पडने लगा है। रौनक ने आधी धोती खोल कर ओढ ली। पेड के पत्तों से ओस की बूँदें टपक रही हैं। फूलो की पत्ती ओस से भरी है। हर एक पेड की डाल पकड कर, उसे अच्छी तरह हिला फूलो से ओस झाड कर, रौनक फूल तोडने लगा। सफेद और लाल कनेर, अपराजिता, नगर और गुटहल के फूलो से रौनक की टोकरी भर गई। फूल तोडते समय रौनक बीच बीच में, सतृष्ण दृष्टि से, रास्ते का ओर देखता जाता था। पेट-पौधो से गाँव की सडक घिरी थी। बहुत दूर तक दृष्टि नहीं पहुँचती थी। फिर भी रौनक सडक की ओर देखने लगा। कुछ समय इसी तरह बीतने पर रौनक को उन पेट-पौधो की आड से किसी के रोने-चिल्लाने की आवाज सुन पडी। रौनक ने कान खडे किये। शब्द समीप आने पर मालूम हुआ, जैसे कोई कह रहा है—"अरे मेरा सब ले गया रे। मेरा सब लूट ले गया।" यह सुन कर रौनक का मुँह प्रसन्न होगया।

शब्द क्रम क्रम से और भी निकटस्थ होने लगा। रोने-

चिल्लाने की आवाज सुन कर आस पास के लोग हाल जानने के लिए बडी उत्सुकता के साथ बाहर आ खडे हुए। कुछ देर बाद बाँस के पेड की ओट से धनीराम बाहर निकला। वह छाती पीटता है और चिल्ला चिल्ला कर कहता है–"सब ले गया रे दादा!—सब लेगया।" उसके साथ लडकों का झुंड था और दो चार जवान आदमी भी थे।

रैनकलाल को देखते ही धनीराम चिल्ला कर कहने लगा–जिलेदार साहब, जिलेदार साहब, मेरा सर्वनाश हो गया।

फूलों की टोकरी हाथ में लिये रैनक ने, फुलवाडी के फाटक की ओर अग्रसर होकर, पूछा—क्या है धनीराम, सवेरे सवेरे इतना हल्ला क्यो मचा रहे हो?

"सर्वनाश होगया। मेरा सब कुछ ले गया–कुछ नही बचा।"

"कौन ले गया?"

"चोर चुरा ले गये।"

"चोरी हुई है?"

"जी हाँ।"

"कैसे चोरी हुई?"

"मेरे मकान के पीछे बखशीजी का बागीचा है। उसी आम के बागीचे में बैठ कर चोरों ने सेंध लगाई है। मेरे दक्खिन तरफ़ वाले घर मे सेंघ लगाई है।"

तमाशबीन लोगों मे से कितने ही बोल उठे—अयँ! सेंध लगाई है?

धनीराम—कहने से कोई विश्वास नहीं करेगा। इतनी बडी सेंध, जिसमें आदमी चाहे तो सीधे इस पार से उस पार तक चला जाय। Mahesh Kumar

रौनक—तुम लोग किस कमर में थे ?

"मैं और मेरी स्त्री दोनों उसी कमर में सोये थे। मेरे दोनों लडके अपनी चाची के साथ दूसरे कमरे में थे।"

रौनक थोडी देर ठहर कर बोला—घर में सेंध लगी, चोरी हुई और नींद न टूटी !

"क्या कहूँ सरकार, कुछ भी मालूम न हुआ। सबेरे नींद टूटने पर देखा तो सेंध की राह से घर में उजेला आ रहा है। देखते ही मैं चौंक उठा। हिला कर स्त्री से कहा—'अरी उठ उठ, देख तो दीवार में यह क्या हुआ है ?' वह घबडा कर उठी, सेंध देख कर छाती पीटने लगी। इसके बाद किवाड खोल कर देखा तो घर मे थाली, लोटा, बर्तन-बासन कुछ नहीं, जो कुछ था सब ले गया। बेत की पिटारी में बारह आने पैसे थे, छोटी बहू के हाथों का एक जोडा कँगना था, बच्चे की करधनी थी, सब ले गया रे दादा ! मुझे फकीर कर गया—हूहूहू" करके धनीराम रोने लगा।

वहाँ जितने लोग जमा हुए थे सभी धनीराम के दुःख से द्रवित होकर उसे समझाने लगे। रौनक ने कहा—जाओ, अभी थाने में जाकर रपट लिखा आओ।

धनीराम—रपट लिखाने से क्या मेरा चोरी का माल मिल जायगा ?

"सो मैं कैसे कहूँ ? पुलिस अगर चोर को गिरफ़ार कर सके, पता लगाकर माल बरामद कर सके तो जरूर तुम्हें मिल जायगा। जिस कमरे मे चोरी हुई है, वहाँ जो चीज जैसी पड़ी हो उसे वैसीही रहने देकर थाने में जाओ। देखो, कोई चीज इधर उधर न होने पावे। दारोगा आकर सब देखेगा। चलो, मैं इसी समय मौके पर चलकर देख सकता हूँ। क्या मालूम अगर गवाही मुझे भी देनी पड़े। चलो जी, तुम लोग भी चलो।"

यह सुन कर उपस्थित लोग शङ्कित भाव से परस्पर एक दूसरे का मुँह देखने लगे। सोचा, देखने जायँगे तो शायद हम लोग भी गवाही के बखेड़े मे फाँसे जायँ। फौजदारी का मुकद्दमा है, क्या जानें क्या से क्या हो जाय। इसीसे किसीने कहा—आप यहाँ के जिलेदार हैं—अफसर हैं। आप आगे चलें—मैं मुँह-हाथ धोकर आता हूँ। किसी ने कहा—मेरे लड़के को बड़े जोर से बुखार चढ़ा है, वैद्य को बुलाने जाता हूँ। कोई बोला—मेरी गाय अभी तक दुही नही गई है, गाय दुहा कर आता हूँ।—इस तरह बहाने करके सभी लोग खिसक गये।

अकेला रौनकलाल, गम्भीर भाव धारण कर, धीरे धीरे धनीराम के साथ उसके घर गया। आँगन में प्रवेश करके खूब जोर से हँस कर रौनकलाल ने धनीराम की पीठ ठोकते हुए कहा—शाबाश धनीराम, शाबाश। आज तुमने जो नकल की

है वह थिएटर के ऐक्ट से भी बढ कर है। दिल्ली के किसी थिएटर में जाकर अगर तू नौकरी करना चाहे ता अभी तुझे तीस चालीस रुपया महीना मिलेगा।

धनीराम ने मुस्कुरा कर कहा—क्या कहा, थिएचर! थिएचर क्या?

'थिएटर नहीं जानते? रामलीला तो देखी है। दिल्ली में आज कल उसी तरह थिएटर होता है। विलायती लीला और क्या? वहाँ जितने ऐक्टर हैं—उनमें जो जितना चिल्ला सके उसकी उतनी ही कदर होती है।"

अब दोनों दक्खिन वाले कमरे के उसारे में जा खड़े हुए। रौनक को देख कर लीलावती घूँघट बढा कर गोशाला में चली गई। बड़ी बहू भी मुँह ढँक कर कुछ दूर हट कर खड़ी हुई।

रौनक घर के भीतर जा करके सेंध को देख बोल उठा— यही तुम्हारी बुद्धि है! मैं साथ चला आया यह अच्छा हुआ, नहीं तो तुम्हारा मुकद्दमा अभी हवा हो जाता।

धनीराम ने डर कर कहा—क्यों जिलेदार साहब?

"क्यों जिलेदार साहब! अरे गधे, चोर ने बाहर बैठ कर सेंध लगाई तो मिट्टी तेरे घर के भीतर कैसे जमा होगई? जो देखेगा वही कहेगा कि घर के भीतर बैठकर सेंध लगाई गई है। हटा, अभी मिट्टी को यहाँ से हटा दे। पैर से टाल टाल कर सेंध की राह से कुल मिट्टी को बाहर फेंक।"

धनीराम वही करने लगा। फिर रौनक़ ने कहा—मैं घर जाता हूँ, तुम जल्दी कुछ खा पीकर वहीं आओ। किसी आदमी के साथ तुम्हें थाने में भेज दूँगा।

धनीराम ने जमींदारी दफ़्तर में हाजिरी देकर थाने में जा रपट लिखा दी। शायद धनीराम घबड़ा कर सब बातों का बयान ठीक ठीक न कर सके, बर्तन मरम्मत कराने का चिह्न दिखाना और मरम्मत करने वाले कसेरे का नाम बतलाना भूल जाय, इसीसे रपट का मसविदा रौनक़ ने स्वयं लिखकर धनीराम के हाथ भेज दिया था।

रपट लिख कर दारोगा ने तीन चार दिन तक अपने इलाके के दागी चोरों के घर की तलाशी ली। किन्तु कहीं कुछ न मिला।

चौथे दिन रौनकलाल हुक्मनामा दिखा कर सदर दफ्तर से एक हजार रुपये ले आया। थाने में जाकर दारोगा को दो सौ रुपये देकर कहा—हुजूर को पान खाने के लिए यह लाया हूँ। बाबू साहब ने इस मुक़द्दमे के लिए चार सौ रुपया देना मंजूर किया है। सौ रुपया उस दिन दाखिल किया था, दो सौ ये हैं, कुल तीन सौ हुए। बाबू ने कहा है, असामी को जिस दिन जेल का हुक्म होगा उस दिन बाक़ी सौ रुपये दे दूँगा।

दारोगा ने रुपया लेकर कहा—बस, चारसौ! तुम्हारे बाबू साहब बड़े कंजूस हैं। पाँच सौ भी पूरा पूरा नहीं दे सके।

"कोशिश तो मैंने खुद की थी। बाबू साहब ने कहा—दारोगा साहब को मेरा सलाम कह कर कहना—एक दिन का तो कारोबार है नहीं, उनके साथ जब दोस्ती हुई है तब फिर उनके हाथ से कई काम लेने हैं। पहला काम वे किस सफाई से कर दिखलाते हैं, यह देखना है।"

दारोगा ने कमीशन का ३०) रौनक का देकर कहा—अच्छा, बाबू साहब देखलें मेरे हाथ की सफाई। किन्तु उन्हें खुश करने पर मैं सिर्फ वही सौ नहीं लूँगा, बाबू से यह कह देना।

"कहूँगा, जरूर कहूँगा। मैं कहने में क्या कुछ कसर रखता हूँ। जितना ही हुजूर को मिलेगा उतना ही मुझे भी तो लाभ है। उन बर्तनों को किस उपाय से—"

दारोगा ने बात काट करके कहा—दारोगा को उपाय की कमी नहीं रहती। आज ही रात को कुल बर्तन हरिदास के घर पहुँच जायँगे। जानते हो, मेरे काबू में कितने चोर बदमाश हैं? उनमें से दो आदमियों को ठीक कर रक्खा है। वे दोनों हरिदास का घर देख भी आये हैं। उस ग्वाले का एक घर पीछे से कुछ टूटा हुआ है, उसी राह से घर में घुस कर पयाल की ढेरी में उन बर्तनों को छिपा आवेंगे। कल आठ बजे मैं जाकर खाना-तलाशी करके उन बर्तनों को निकालूँगा। इसके बाद उस मूँजी को मुश्कें बाँध कर डंडे से पीटते पीटते थाने में

ले आऊँगा और ४११ दफा के अनुसार चालान कर दूगा। एक वर्ष की सजा तो जरूर ही होगी।

हरिदास की वन्धन-अवस्था का चित्र, कल्पना-दृष्टि से, देखकर रौनक का हृदय पुलकित हो उठा। बोला—दारोगा साहब, डडे की मार के सिवा और कुछ न होगा? थाने में लाकर उसकी अच्छी तरह मरम्मत की जाती तो अच्छा होता।

दारोगा ने कहा—होना क्या मुश्किल है? किन्तु इतने रुपये से वह काम नहीं होगा। दूध में जितनी चीनी मिलाओगे उतनाही मीठा होगा।

रौनक ने दारोगा के दोनों हाथ पकड कर कहा—अगर साले को थाने में ला, खूब कस कर बाँधो और उसको किवाँच लगा सको तो बाबू साहब से पचास रुपये और दिला दूँगा।

"अच्छा यही सही" कह कर दारोगा दूसरे काम में लग गया। रौनकलाल मनही मन उमँगता हुआ अपने मुकाम पर लौट आया।

तेतालीसवाँ परिच्छेद

मोतीलाल जब घर से चला तब रात नाम मात्र को थी। दो एक तारे आकाश में टिमटिमा रहे थे। बस्तीवाले या नौकर-चाकर उस समय भी सुख की नींद में निमग्न थे। मोती बेरोक टोक फाटक पार होकर गाँव की सडक पर चलने लगा। रास्ते में दो चार परिचित व्यक्ति मिले थे किन्तु रात के धुँधलेपन में, इस कपटवेश में, उसे कोई पहचान नहीं सका।

मोतीलाल एक गेरुवा कपडा पहने और इसी रङ्ग की चादर तथा कम्बल ओढे था। आधा अगहन बीत चुका था। आधी रात से जाडा अपना विशेष प्रभाव दिखाने लग गया था। खारुवा कपडे की एक झोली मोती के दहने कन्धे में लटक रही थी। उस झोली में पूजा की साधारण सामग्री, एक भगवद्गीता की पोथी, सांख्य, दर्शन और चार पाँच अन्य पाठ्य पुस्तकें थीं। एक बडी सी छुरी भी उसने झोली में रख ली थी। बाँये हाथ में लोटा और बगल में मृगछाला थी। खाने की कोई चीज या रुपया-पैसा साथ न था। बिना द्रव्य के काम कैसे चलेगा, यह क्या मोती ने नहीं सोचा था? सोचा था, किन्तु बचपन से ही उसका मन भगवान् की भक्ति में आसक्त था। उसे विश्वास था कि ईश्वर ने जब जन्म दिया है तब भोजन तो वह देगा ही।

यही निर्भरशीलता का भाव उसके मन में इस समय विशेष रूप से जाग उठा था ।

किस रास्ते से कहाँ जायगा—इसका निश्चय करके मोती घर से नहीं निकला था । कमलपुर से दो कोस पर सरकारी पक्की सडक थी । वह सडक बराबर आजमगढ तक गई है । जब रेलगाडी नहीं खुली थी तब लोग इसी रास्ते से शहर को जाते थे । मोतीलाल भी इसी रास्ते की ओर अग्रसर हुआ ।

मोतीलाल जब गांव से करीब एक कोस आगया तब बडे घटाटोप के साथ सूर्य का उदय हुआ । कुछ दिन पूर्व मदनपुर मे रात भर जागने के बाद मोती ने जो सूर्योदय देखा था उसका स्मरण, यह दृश्य देखकर हुआ । समझा कि वह सूर्य उसकी आर्त प्रार्थना के पुरस्कार मे सुधा का नवजीवन लेकर उदित हुआ था । क्या ही शान्ति—क्या ही पुलकावली की तरङ्ग ने उसके हृदय को आप्लावित किया था । वह सोचने लगा, सुधा अब कैसे होगी ? क्या करती होगी ? अहा ! उस बालिका के दिन सुख से कटे । इस प्रकार विचारो की परम्परा ने जब मोती के मानसक्षेत्र में अनधिकार-प्रवेश करके दौडना आरम्भ किया तब उसे होश हुआ । वह रास्ते में एकाएक ठिठक कर खडा होगया । अपने ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोला—यह क्या ? कहाँ तो मैं घर-द्वार छोड गेरुवा वस्त्र धारण करके सन्यास-ग्रहण करने चला हूँ—कहाँ मैं धर्म-चिन्तन और भाव-चिन्तन मे रह कर समय विताऊँगा—और कहाँ उसके बदले मेरे मन

पर यह कामिनी की चिन्ता आधिपत्य कर रही है। छि छि छि —धिक्कार है मुझको। इस प्रकार अपने मन को सावधान कर मोह-मुद्गर का श्लोक पढते पढते वह पहले की अपेक्षा और भी तीव्रवेग से उस रास्ते की ओर झपट चला।

इस तरह आधे घंटे तक चलने पर सम्मुख धूप में उसे कष्ट मालूम होने लगा। तब कम्बल को चौहरा कर कन्धे पर रख लिया। सडक के दोनों ओर के खेत पीले धान से अपूर्व शोभा धारण किये हुए थे। अब सडक पर लोग आते जाते दिखाई देते हैं। कितने ही लोग मोती को साधु जान कर प्रणाम भी करते हैं।

मोती जब पक्की सडक के ऊपर पहुँचा तब सात बज चुके थे। इतने ही में वह थक गया। रात को उसे एक तरह से नींद नहीं आई थी। दूसरे, पैदल चलने का उसे कभी अभ्यास न था। जब प्रयाग के कालेज में पढता था तब शाम को एक बार कम्पनी बाग़ की तरफ पैदल घूमने जाता था। जब से कालेज छोडा है तब से सुबह-शाम को थोडी दूर तक टहलने के सिवा दूर तक पैदल चलने का शायद उसे मौका ही न मिला था।

कच्ची सडक से जहाँ पक्की सडक का मिलान हुआ था उसके समीप ही पक्की सडक पर एक पुल था। उसी के ऊँचे पुश्ते पर एक पेड की छाया मे मोतीलाल बैठ गया। हेमन्त की ठण्डी हवा सन् सन् बह रही थी। मोतीलाल की थकावट

शीघ्र ही दूर होगई। वहाँ बैठ कर वह सोचने लगा—"अब किधर जाना चाहिए? आजमगढ की तरफ या इसकी उलटी ओर जिधर से यह सड़क आई है?" मोती को मालूम न था कि विपरीत दिशा मे यह रास्ता कहाँ खतम हुआ है। सोचा, आजमगढ की ओर जाना ही ठीक है। यदि भगवान् की कृपा होगी तो वहाँ से काशी या वृन्दावन चला जाऊँगा।

यहाँ से आजमगढ छत्तीस मील है। दो ढाई दिन का रास्ता है। तीन कोस के फासले पर शिवपुर नामक एक बहुत बडा गाँव है। मोती उठकर फिर चलने लगा।

चलते चलते धूप क्रमश बढ गई। मोती की चाल भी धीरे धीरे मन्द हो चली। जब दस का समय हुआ तब मारे प्यास के उसकी छाती फटने लगी। एक पथिक से पूछने पर मालूम हुआ, शिवपुर यहाँ से कोस भर दूर है। आज वहाँ हाट लगेगी। केले, अमरूद और अन्यान्य फल मनो बिकने के लिए वहाँ जा रहे हैं। ग्वाले लोग दही दूध और घी लिये जा रहे हैं। सडक के किनारे बहुत बडी बावली थी। पानी पीने के लिये मोती रास्ते से उतर उसके घाट पर जा खडा हुआ।

पानी के समीप पहुँच कर मोती के मन में हठात् यह बात आई कि आज अभी तक भजन-पूजन तो किया ही नहीं, पहले ही पानी कैसे पी लूँ? तब वह पानी मे प्रवेश कर मुँह-हाथ धो पाक साफ हुआ। बावली के तीन ओर आम, कट-हल और अमरूद आदि फलवान् वृक्ष लगे थे। एक वृक्ष की

छाया मे साफ सुथरा स्थान देख वह मृगछाला बिछा कर बैठ गया।

उसके गले मे अब भी कण्ठी बँधी है। इच्छा है, कोई सद्गुरु सन्यासी मिलने पर उनसे दीक्षा ग्रहण करके इसे उतार देगा।

भगवान् की उपासना करके मोती ने गीता की पोथी निकाली। गीता के कई श्लोक पाठ करने के बाद देखा, बागीचे के भीतर कुछ दूर तीन चार आदमी घूम रहे हैं। एक आदमी के हाथ में फल तोडने की लग्गी है और दूसरो के सिरो पर टोकरियाँ हैं। वे सब क्रम क्रम से मोती के समीपस्थ होने लगे। कुछ दूर पर कागजी नीबू के कुछ पेड थे। जिसके हाथ में लग्गी थी वह लग्गी से नीबू तोड तोड कर एक आदमी के सिर पर, टोकरी में, फेंकने लगा। मोती ने समझ लिया कि इसी का बागीचा है।

नीबू तोड चुकने पर उस आदमी की नजर मोती पर जा पडी। तब वह कुछ डरता डरता आगे बढा। कुछ दूर पर अपना फटा हुआ जूता उतार कर वह मोती के पास खडा हो चुपचाप उसके मुँह की ओर देखने लगा।

मोती को पुस्तक की ओर से सिर उठाते देख उस आदमी ने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। फिर वह हाथ जोड कर कहने लगा—बाबा जी, मैंने इस बावडी के पासवाले पेड जमींदार से १२०) सालाना पर ठीके में लिये हैं। आज ही पहले पहल फल

तोड़ने आया हूँ। शिवपुर की हाट में बेचूँगा। आज बागीचे मे बाबा के चरणों की धूल पड़ी है, मेरे लिए यह बड़ा ही शुभ शकुन हुआ—कह कर उसने टोकरी से एक चकोतरा और एक पका शरीफा निकाल कर मोती बाबू के सामने रक्खा और हाथ जोड़े।

मोती आँखे मूँद कर मन ही मन बोला—प्रभो! मैं जानता था कि जब तुम्हारे चरणों की शरण गही है तब मुझे किसी बात की चिन्ता नहीं करनी होगी। हे दयामय! ऐसा करना, जिसमे तुम्हारे चरणो का दृढ़ विश्वास मेरे हृदय मे सदा अटल भाव से बना रहे।

मोती के आँख खोलने पर उस आदमी ने हाथ जोड़कर विनय-पूर्वक कहा—बाबाजी! आशीर्वाद दीजिए जिसमें इस बागीचे के फल बेचने से मुझे दो पैसा मुनाफा हो।

मोती ने कहा—मैं आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हे भक्ति प्राप्त हो, और भगवान् के चरणारविन्द में तुम्हारा मन बराबर लगा रहे।

द्रव्य-प्राप्ति का आशीर्वाद न पाकर वह आदमी कुछ उदास हो गया। "अच्छा तो जाता हूँ बाबा जी" कह कर वह फिर प्रणाम कर के चला गया। मोती फिर भगवद्भजन में निमग्न हुआ।

आध घण्टे के बाद मोती ने चकोतरे को झोली में रखकर शरीफा खाया। बावली में जाकर मुँह धोया और कुल्ला कर के उसने फिर रास्ता पकड़ा।

जब वह शिवपुर पहुँचा तब दोपहर हो गया था। गाँव के बाहर हाट लगी है। चारों ओर कड़ी धूप फैली है। मोती ने सोचा, कहीं पर कुछ देर सुस्ताकर स्नान कर लेना चाहिए। हाट के समीप ही एक स्वच्छ सरोवर दिखाई दे रहा था।

विश्राम की इच्छा से वह कुछ दूर स्थित एक बड के पेड की ओर चला। वहाँ पहुँच कर देखा, पेड के नीचे एक जटा-जूटधारी साधु सारे अङ्ग में भस्म रमाये बैठे हैं। कितनेही स्त्री पुरुष उनको चारों ओर से घेरे खडे हैं। एक युवती स्त्री बैठ कर उनसे हाथ दिखा रही है। साधुबाबा के बगल में एक कपडा बिछा है। उस पर चौअन्नी, दुअन्नी और कुछ पैसे पडे हैं।

मोतीलाल कुतूहल-वश वहाँ दो मिनट के लिए खडा हो गया। वह साधु उसे खडा देख, क्रोध और उदासीनता की दृष्टि से, उसकी ओर घूरने लगा। उसके मन का अभिप्राय समझ कर मोती वहाँ से हट गया।

तालाब के किनारे पहुँच कर मोती ने देखा, दो तीन आदमी घाट पर नहा रहे हैं। सीढी पर झोली आदि रखकर मोती पानी में पैठा। कुछ देर तक स्नान करने से उसका शरीर ठण्डा हुआ। स्नान करके चादर लपेट कर वह एक पेड के नीचे गया। सूखने के लिए भीगे कपडे को उसने पेड की दो टहनियों में बाँध दिया और धरती साफ कर मृगछाला बिछा ली। फिर वह झोली से गीता की पोथी निकाल कर पाठ करने बैठा। पाठ करते करते मोती को भूख लगी। रात ही से चलने का परिश्रम

मोती—मैं जड़ी-बूटी नहीं जानता ।

"हाथ देखा ?"

"हाथ देखना भी नहीं जानता ।"

"तो क्या जानते हो ? सिर्फ गाँजा फूँकना जानते हो ।"

मोती—वह भी नहीं जानता ।

"क्या अभी तक गाँजा पीना नहीं सीखा है ? शायद तुम अभी अभी भर्ती हुए हो । मैं तो तुम्हारा चेहरा देख कर ही समझ गया हूँ । मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ—तुम बड़े अल्हड़ हो । सिर में जटा तक नहीं । सिर्फ गेरुवा पहिरने और कन्धे में झोली लटकाने ही से कोई सन्यासी नहीं हो जाता । अङ्ग मे भभूत रमानी चाहिये, सिर पर लम्बी जटा चाहिए, और घटे घटे पर गाँजा पीना चाहिए। नशे से जब आँखें अगारे की तरह लाल हो रहेंगी तभी तो देखकर लोगों को भक्ति होगी। जब मैं पहले पहल घर से निकला था तब एकदम सीधा काशी गया । वहाँ के बाजार से साढे तीन रुपये में एक लम्बी जटा लेकर माथे पर रख ली थी । सीधे सादे रहने से क्या कुछ होता है ।" यह कहकर साधु ने गाँजा निकाल कर बाँयें हाथ में रख दहने हाथ के अँगूठे से मलना आरम्भ किया ।

गाँजा तैयार होने पर उसे चिलम में भर कर कहा—घर छोडे कितने दिन हुए ?

"बहुत थोडे दिन ।"

इधर उधर देख कर साधु ने मोती के कान के पास मुँह लेजाकर पूछा—कहो किस दफ़ा में?

मोतीलाल ने दफ़ा का अर्थ न समझ कर पूछा—क्या कहा?

सन्यासी ने हँसकर कहा—क्यों मुकरते हो? जैसे कुछ जानते ही नहीं! बड़े ही निर्दोष बिलकुल भोले भाले हो। खून, डकैती या जाल—कहो किस मुक़द्दमे में फँसे थे?

मोती ने गम्भीरता-पूर्वक कहा—मैं तो किसी भी मुक़द्दमे में नहीं फँसा था।

साधु ने सिर हिलाकर और मुस्कुरा कर कहा—वाहजी वाह! तुम तो बड़े पक्के मालूम होते हो। योंही घर से निकल पड़े हो! मानो दुनियाँ से तुम्हारा कोई सरोकार ही नहीं।—अब उसने गाँजे की चिलम पर आग चढ़ाई।

मोतीलाल चुप हो रहा। साधु दो चार कश लगाकर बोला—सच सच कहो न! मुझ से छिपाते क्यों हो? मैं खुफिया पुलिस नहीं हूँ। कौन साला झूठ नहीं बोलता? तुम्हारी कसम, तुम अपनी बीती कह डालो। फिर मैं भी अपना सारा किस्सा कह सुनाऊँगा।

इसपर भी मोती ने स्वीकार नहीं किया कि वह किसी फ़ौजदारी मामले में फँसा था।

साधु ने और दो चार दम लगा चिलम नीचे रखकर

कहा—तुम न कहो तो इससे क्या मैं मान लूँगा? इतने लोगों के हाथ देख कर जो फल कहता हूँ वह कुछ मिलता है, कुछ नहीं भी मिलता है, किन्तु तुम्हारा हाथ विना देखे ही कहे देता हूँ, तुम दौरा-मुकद्दमे के फरार असामी हो। चिलम पर आग जल रही है—साक्षात् ब्रह्म है। अच्छा इसे छू कर कहो कि तुम फरार नहीं हो?

मोती ने उसकी यह बात भी स्वीकार नहीं की। आखिर साधु ने गाँजे की चिलम मोती की ओर बढ़ाकर कहा—पिओगे?

"नहीं।"

तब साधु ने बचे हुए गाँजे को भस्म करके कहा—उठो, चलो।

मोतीलाल—कहाँ?

"ठाकुरद्वारे मे। यहाँ ठाकुरद्वारा है, तुम्हे मालूम नहीं?"

"नहीं।"

"इस तरफ पहले पहल आये हो। गाँव के भीतर श्रीराधा-कृष्ण का मन्दिर है। रोज हलुवा, पूरी, मालपुआ का भोग लगता है। जो साधु-सन्यासी वहाँ पहुँचते हैं, प्रसाद पाते हैं। खूब गरमागरम मालपुआ, जो जितना खा सके-खाय। आठ, दस, पन्द्रह। घी से खूब तर रहते हैं। बहुत बढ़िया होते हैं। मैं आज रात को वहीं रहूँगा। साधु-सन्यासियो के रहने के लिए एक

पक्का मकान भी है। एकबारगी खूब आनन्द। सिर्फ एक ही चीज का सुख नहीं और सब तरह का सुख है। चलना हो तो मेरे साथ चलो।" यह कह कर साधु उठ खड़ा हुआ।

ऐसे भण्ड का साथ पकड़ना मोती को जरा भी पसन्द न था। तथापि भोजन और आश्रय के लिए विवश होकर उसने उस कपट-वेशधारी साधु के साथ जाना स्वीकार किया। दोनों धीरे धीरे ठाकुरद्वारे की ओर अग्रसर हुए।

चवालीसवाँ परिच्छेद

रास्ते में जाते जाते मोतीलाल ने पूछा—बाबा, आपका नाम क्या है?

"मेरा नाम भैरवानन्द भारती है। जब गृहस्थ था तब दूसरा नाम था। तुम्हारा नाम क्या है? स्थान आदि कहाँ है?"

"मेरा नाम अभी तक कुछ नहीं रक्खा गया है—अभी घर का ही नाम है।"

"वह नाम जाहिर न करना। किसी को मत बतलाना। असली नाम और गाँव दोनों को छिपा डालना ही अच्छा है। पुलिस को पता लग जाय तो वह रजिस्टर में नाम दर्ज कर धर पकड़ करना शुरू कर दे। मुझे चुपचाप बतला दो, मैं तुम्हें नहीं पकड़वाऊँगा।"—कह कर साधु हँसने लगा।

मोती को चुप देख कर उसने कहा—देखो, एक बात तुम्हें अभी समझाये देता हूँ। ठाकुरद्वारे में पहुँचकर खूब गम्भीर होकर रहना। समझ गये न? ऐसा भाव दिखाना, जिसमें लोग समझें कि इसका मन सदा परमार्थ-चिन्तन में ही डूबा रहता है। संसार कुछ नहीं—सर्व मिथ्या। रुपया-पैसा, खाने-पीने की चीजें, ये सभी तुच्छ पदार्थ हैं। इन पर भूल कर भी नजर नहीं डालना। आँख मूँद कर केवल ध्यान करना—सोहं सोहम्।

हम लोग जो हँसी-तफरीह करते हैं वह छिप कर अपनी मण्डली में। अपनी धर्मगोष्ठी में हँसो बोलो, जो जी में आवे करो, उसके लिए कोई मनाही नहीं। किन्तु उन लोगों के सामने एक दम गम्भीर विश्वम्भर-मूर्त्ति बन जाना चाहिए। अच्छा एक काम करो न, तुम मेरे चेला बन जाओ। दो एक चेला न होने से साधु-सन्यासी की क़दर नहीं बढ़ती। तुमको भी लाभ होगा। मेरे साथ घूमने से तजरबा हासिल करोगे। दो पैसे कमाने का ढँग सीखोगे। मैं तुमको सब बातों में होशियार कर दूँगा। विज्ञानशास्त्र की भी शिक्षा दूँगा।

मोती—आपने विज्ञान पढ़ा है?

"क्यों नहीं पढ़ा है। आज कल शहरों में विज्ञान की बड़ी क़दर है। विज्ञान की दो चार बातें यदि उन लोगों के मन के माफ़िक़ कह दो तो फिर तुम्हारी पूजा में कमी न रहेगी—बड़े बड़े सेठ साहूकार, डिपटी, मुन्सिफ तुमको गुरु बना कर मन्त्र लेंगे। तुम्हारी सेवा करेंगे। रुपये-पैसे की कमी न रहेगी। यही सब देख सुन कर मैंने विज्ञान का कुछ विषय सीख लेना बड़ा आवश्यक समझा। मुझे कोरा मूर्ख मत समझो, मैं पढ़ा लिखा आदमी हूँ। हिन्दी-विज्ञान की कोई पुस्तक मिल जाती तो मैं स्वयं पढ़कर उसका मतलब समझ लेता, इस बात का मुझे गर्व था। भगवत्कृपा से एक सुयोग भी मिल गया। एक दिन घूमते घूमते मैं एक बड़े आदमी के घर आतिथ्य ग्रहण करने के लिए जा पहुँचा। कमरे के भीतर पैर रख कर देखा तो

कोई बाबू नहीं है। बरामदे की कोनेवाली खुली कोठरी में, जहाँ बैठ कर लडके पढते थे, जाकर देखा तो वहाँ एक भी लडका नहीं था। टेबल पर कितनी ही किताबे इधर उधर बिखरी पडी थीं। उनमे एक किताब की पीठ पर मोटे अक्षरों में "सरल विज्ञान पाठ" लिखा देखा। फिर क्या था, झट मैं उसे झोली के भीतर डाल कर "बक परमधार्मिक" की भाँति धीरे धीरे चल दिया। दूसरे भक्त के घर जाकर आतिथ्य ग्रहण किया। उसी पुस्तक को पढकर मैंने कुछ विज्ञान की बाते सीख ली हैं। पुस्तक के जिस पेज पर लडके का नाम लिखा था उसे फाड कर फेंक दिया है। कभी कभी पढता हूँ। अगर तुम मेरे चेले बन कर मेरी खूब सेवा-शुश्रूषा करो, और किताब लेकर कहीं चम्पत न हो जाओ तो वह किताब मैं तुमको पढने के लिए दे सकता हूँ। किन्तु पढ कर क्या तुम ख़ुद समझ सकोगे ? कहाँ तक पढे लिखे हो ?"

मोती ने कहा—बहुत नहीं, मामूली तरह से कुछ लिख पढ लिया है।

"हे हें। मालूम होता है, उस तरफ ठन ठन गोपाल— काला अक्षर भैंस बराबर है। उल्टा घडा है। अच्छा, मैं तुमको जबानी ही सिखा दूँगा, कुछ चिन्ता मत करो। क्या सभी लोग लिखे पढे होते हैं? आज कल के बाजार में कितने ही सन्यासी पढे लिखे मिलते हैं। तुम मेरे चेला बन जाओ। ऐसा सुयोग फिर नहीं मिलेगा।"

इस तरह बातें करते करते दोनों ठाकुरद्वारे के समीप जा पहुँचे। सभा-मण्डप के एक ओर ठाकुरजी का मन्दिर था, दूसरी ओर अतिथिशाला थी। मोती ने भीतर जाकर देखा कि अतिथिशाला के बरामदे में तीन सन्यासी बैठे हैं। उनमें एक अधेड़ खूब विशालकाय हृष्ट पुष्ट था। एक बालक सन्यासी गाँजा बना रहा था और एक युवा सन्यासी बेल की लकड़ी के भङ्गघुटने से कुण्डी में भङ्ग रगड़ रहा था। मोती और भैरवानन्द को देखकर वह मोटा सन्यासी धीर स्वर से बोल उठा—"अरे और दो मूरत साधू आगया। उसमें आधी छटाँक भङ्ग और डाल दे।" यह कह कर वह उच्चस्वर से पुकारने लगा—पुजारीजी—ओ पुजारी, ओ मिसिरजी।

आवाज सुन कर एक दुबले पतले मिसिरजी रामनामी दुपट्टा ओढ़े बाहर आये। उन्होंने पूछा—क्या है स्वामीजी?

स्वामीजी—पुजारीजी, और दो मूरत साधू आया है। दो छटाँक किसमिस, दो छटाँक चीनी और आध सेर दूध मँगा दो।

"बहुत अच्छा" कह कर पुजारी चला गया।

इतने में मोतीलाल और भैरवानन्द वहाँ जा खड़े हुए। स्वामीजी ने कहा—बैठो।

दोनों के बैठने पर स्वामीजी मोती को सिर से पैर तक देखने लगे। फिर बोले—तुमने नया भेष लिया है।

मोती के साथी साधु ने कहा—बिलकुल नया।

"तेरा ही चेला है?"

भैरवानन्द ने मोती के मुँह की ओर देख कर कहा—हाँ, है तो—पर अभी इसको चेला नहीं किया है। लेकिन हमारा चेला होने के वास्ते उसकी बडी ख्वाहिश है।

"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। देखो, हमारे दो दो चेले हैं। एक भङ्ग पीस रहा है, एक गाँजा मल रहा है।" इतने में बालक चेले ने गाँजे की चिलम गुरु के हाथ में दी। कई दम खींच कर उसने चिलम भैरवानन्द के हाथ में दी। भैरवानन्द ने प्रसाद पाकर एक दूसरे सन्यासी को दी। उसने दो दम लगा कर मोती को देने के लिए हाथ बढाया। यह देख कर स्वामीजी बोल उठे—क्यो रे तू भी गाँजा पीता है?

मोती ने कहा—नहीं महाराज।

"बहुत अच्छा—बहुत अच्छा। मत पी—गाँजा मत पी—तू अभी बचा है। गाँजा पियेगा तो पागल हो जायगा—कलेजा जल जायगा—मर जायगा। भग पी—गाँजा मत पी। भग अच्छी होती है। भङ्ग पीवे मौज करे बना रहे अवधूत। यह कवित्त है। जब तेरी चालीस वर्ष की उमर हो तब गाँजा पीना। अभी भग पी।"

गाँजे की चिलम नियमित भाव से पियक्कड़ साधुओं के बीच घूमने लगी। सूर्यास्त हो गया।

इधर एक बडे लोटे में चीनी मिला हुआ दूध रक्खा था। भग का गोला भी तैयार हो चुका था। वह दूध में मिला दिया गया। मन्दिर का नौकर तुरन्त के धोये तीन चार मिट्टी के

पुरुवे दे गया। उन्हीं पुरुवों से सभी विजयापान करने लग। दो पुरुवा भग पीने के बाद स्वामीजी ने देखा, मोती भग नहीं पीता है। बोले—क्यो रे, तू भग भी नहीं पीता ?

मोती—जी नहीं।

"भग नहीं पीता है तो सुन, एक कवित्त सुन—

जिसने इस दुनिया में आकर एक दिन भी पिया न भग।

उसने सच पूछो तो क्या देखा जहान का रङ्ग ?

समझा ? नहीं समझा। जिसने इस दुनियाँ में आकर याने जनम लेकर एक दिन भी भग नहीं पी लिया उसने जहान का—जहान नाम है दुनिया का—जहान दुनिया को कहते हैं, फारसी लफज है। उसने दुनिया का रङ्ग ढङ्ग क्या देखा ? कुछ नहो देखा।"—कह कर स्वामीजी हहा कर हँसने लगे।

और सन्यासी भी स्वामीजी के स्वर में स्वर मिलाकर हँसते हँसते बोल उठे—"कुछ नही देखा।" भैरवानन्द बोल उठे—वाह वाह, बहुत अच्छी कविता है, बहुत अच्छी।

घडी भर रात बीती। आरती होने में अब विलम्ब नहीं है। एक एक कर गाँव के कितने ही स्त्री पुरुष आरती देखने के लिए मन्दिर में इकट्ठे होने लगे। सोने का चश्मा लगाये, शाल ओढे हुए, एक मोटेमल वाबू भी आये। आरती होने में कुछ विलम्ब देख वे दर्शक लोग सन्यासियो के पास आकर बैठे।

स्वामीजी ने चार पुरुवे भग पेट में डाल करके पाँचवें पुरुवे का कुछ अंश मात्र पीकर बचा बचाया बालक चेले को दिया।

उसने उसे एकही साँस मे साफ़ कर डाला। इसके बाद स्वामीजी ने कहा—अरे बचा, थोडा भजन सुना दे। माई लोग बाबू लोग आये हैं। थोडा हरिनाम गाकर इन लोगो को सुना दे।

तब लडके ने दो करताले निकालीं। स्वामी हाथ में करताल लेकर बजाने लगे और लडका करताल के ताल पर नाचते नाचते गाने लगा—

राम नाम लड्डू गोपाल नाम घी।
कृष्ण नाम मिसिरी घोल घाल पी॥

स्वामीजी करताल बजाने के साथ ताल ताल पर सिर हिलाने लगे। जब गाना समाप्त हुआ तब स्वामीजी ने उस बुढिया से, जो सबके आगे बैठी थी, कहा—माई तुमने गीत का अर्थ समझा?

"हाँ बाबा, कुछ कुछ समझती हूँ।"

स्वामीजी ने कहा—राम नाम लड्डू है (हाथ के इशारे से गोलाकार पदार्थ दिखाकर) मोतीचूर का, बेसन का। गोपाल नाम घी है—मक्खन के ऐसा, कृष्ण नाम मिसरी है। सबको घोल घाल कर पिओ। मतलब हर घडी राम कृष्ण गोपाल कहो।

विधवा ने कहा–हाँ बाबाजी, राम नाम लड्डू से भी बढकर और कृष्ण नाम मिसरी से भी बढकर मीठा है।

"हाँ, बहुत मीठा है–बहुत मीठा। एक साधुने कहा है–

"भरोसा देह का मत राखो,
अमीरस नाम का चाखो।

समझा माईजी? यह जो मनुष्य का चोला है इसका कुछ भरोसा नहीं, कुछ भी नहीं।"

अन्य सन्यासी भी स्वर में स्वर मिलाकर बोले—कुछ भी नहीं—कुछ भी नहीं।

बुढ़िया ने कहा—सच्ची बात है बाबाजी, इस देह का भरोसा ही क्या? अभी है, कुछ देर में नहीं।

स्वामीजी—माई तू बड़ी भगतिन है। तू ने ठीक कहा है—नाम जो है वही अमृत है। उसके पीने से जीव को मोक्ष होता है, वह आवागमन से छूटता है।

दर्शक आपस में फुसुर फुसुर कर कहने लगे—"यह साधु असल में तत्त्व ज्ञानी है—ऐसे महात्मा के दर्शन से पुण्य होता है।" स्वामीजी ने यह बात अच्छी तरह सुनली।

"संस्कृत में भी लिखा है—असारे संसारे—यह संसार कुछ चीज नहीं है।"—कहकर स्वामीजी दोनो आँखें मूँद कर भक्ति-गद्गद स्वर से कहने लगे—

> साँस साँस में कृष्ण रट श्वास वृथा न खो।
> क्या जाने इस श्वास का यही अन्त ना हो।

इतने में आरती का घंटा बज उठा। दर्शको ने स्वामीजी को प्रणाम कर के किसी ने दुअन्नी, किसी ने चौअन्नी, किसी ने पैसा उनके पैरों के समीप रक्खा। चश्माधारी बाबू ने टन से एक रुपया उनके आगे फेंक दिया। सब लोग आरती देखने गये।

आरती होने पर पुजारी ने भगवान् की प्रसादी पूरी, मोहन-भोग, मालपुआ, साधुओं में बाँट दिया। मोती ने भी हाथ पसारा किन्तु मारे ग्लानि के उसका मन व्याकुल हो रहा था। इन वञ्चकों के दल में मिलकर मानो वह भी उन्हीं का साथी होकर मालपुआ खाने आया है। यह सोच कर उसका हृदय लज्जा और क्षोभ से सकुचित हो गया था। किन्तु बेचारा करे क्या! भूख से पेट जल रहा था। उसने एक कोने में दबकर अँधेरे में बैठ, किसी तरह आँख के जल को आँख में ही रोक कर भोजन किया।

ठाकुरजी के मन्दिर का द्वार बन्द हो गया। पुजारी आदि सभी चले गये। और जो दो सन्यासी पहले ही से उस अतिथिशाला में थे उन्होंने स्वामीजी से कहा—भेंट में आज कितना आया?

युवक चेले ने कहा—दो रुपये।

एक सन्यासी ने कहा—हमारा हिस्सा?

यह सुन कर स्वामीजी ने कहा—कैसा हिस्सा?

"भाई लोग जो भेंट दे गई हैं वह सभी साधुओं को दे गई हैं। क्या वे अकेले तुम्हीं को दे गई हैं? उसमें आधा हमारा होगा।"

स्वामीजी बोले—ठीक है। तो मुझे प्रणाम करके मेरे पैरों के पास क्यों रख गई। श्लोक सुनाया मैंने, श्लोक का अर्थ

बताया मैंने, नाच कर गीत गाया मेरे चेले ने। मुफ्त का हिस्सा लेने वाले तुम लोग! मैंने उनको खुश किया है, उन्होंने मुझे भेंट दी है। तुमने क्या किया है जो हिस्सा माँगते हो? लाज नहीं आती?

उन सन्यासियो ने कहा—हम भी तो यहीं बैठे थे। हम लोग क्या घास काटने आये हैं? लाओ, हमारा हिस्सा दो।

दोनो में भारी झगडा हुआ। वाद विवाद के अनन्तर गाली-गलौज होने लगी। स्वामीजी के मुँह से ऐसी अश्लील गालियाँ निकलने लगीं, जिन्हें सुनकर कान मूँदना पड़े। आखिर स्वामीजी भङ्ग घोटने का सोंटा हाथ में ले घुडक कर बोले— "कौन हमसे हिस्सा बँटाता है, बँटावे तो देखें। आज लाश गिर जायगी।" युवक चेला भी गुरु का पक्ष लेकर खूब कूद-फाँद करने लगा। आखिर दोनो सन्यासी कोई उपाय न देख चुप हो रहे।

तब स्वामीजी दोनो चेलों को लेकर घर के भीतर चले गये। भैरवानन्द से एक सन्यासी कहने लगा—देखा, इस बेईमान को? इस तरह गरीब का हिस्सा मार खाता है। उस पर ब्रह्मज्ञानी बनकर लोगो को ठगता है।

दूसरा सन्यासी बोला—उसने दो कवित्त कहे हैं और दो चेलों को साथ लाया है। इससे क्या सर्वस्व ग्रास करेगा? मेरा हक भी मारा गया। मुफ्त मे गालियाँ सुनीं।

बन्द कर के सोगये हैं। छप्परों के समीप जाकर देखा—दो तीन जगहों से मछली की दुर्गन्ध आ रही थी। हाट के दिन मछाहिनें इन्हीं घरों में बैठ कर मछलियाँ बेचती हैं। दो तीन छप्परों में बदबू तो न थी किन्तु खूब कूडा-करकट पडा था। वहाँ सोने से रात में साँप वगैरह का भय था। इसलिए मोतीलाल ने उस स्थान का छोडकर फिर पक्की सडक पकडी।

कुछ ही दूर आगे जाने पर देखा, सड़क के पास एक ऊँचे बरामदे का सुन्दर बँगला है। सोचा, इस बरामदे में बेखटके सो सकता हूँ। तब वह रास्ता छोडकर बरामदे के पास जा खडा हुआ। मन में सोचा, जिसका मकान है उससे आज्ञा लेकर बरामदे में सोना अच्छा है। इसलिए उसने धीरे से पुकारा—यहा कोई है? कुछ उत्तर न मिला।

मोती ने फिर स्वर को कुछ ऊँचा करके आवाज दी—यहाँ कोई है?

फिर भी कुछ उत्तर न मिला। मोती ने सोचा, मकान खाली तो नहीं है। सीढी पर पैर रख धीरे धीरे वह उसारे में गया। कुछ कुछ जो प्रकाश था उसमें देखा कि कमरे का दरवाजा बन्द है। तब उसने धीरे धीरे बरामदे के प्रान्त में जाकर देखा तो एक किञ्चित् खुली खिडकी की राह से रोशनी आ रही है। खिडकी के पास जाकर देखा कि कोठरी के भीतर एक तीस बत्तीस वर्ष का युवा नीचे आसन बिछाये उस पर हाथ जोडे आखें मूँदे बैठा है। मोती ने समझा कि वह उपासना में लीन है, अभी

उसको पुकारना उचित नहीं। मोती वहाँ चोर की तरह कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा। फिर वहाँ से हटकर उस कोठरी के द्वार के पास आया। द्वार भीतर से बन्द था। थक जाने के कारण मोती ने सोचा, कन्धे से झोली उतार कर नीचे रख कर जरा बैठ जाय। बैठते समय कन्धे से धरती पर झोली रखने का शब्द हुआ। तब भीतर से आवाज आई—कौन है ?

मोती ने खड़े हो कर कहा—मैं सन्यासी हूँ।

बाबू किवाड़ खोल कर बाहर आये। बोले—आप सन्यासी हैं ? आइए, भीतर आइए।

मोती—भीतर जाने की आवश्यकता नहीं है। मैंने आपकी शान्ति भङ्ग की, इसके लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ। मैं आप के बरामदे में रात को सोऊँगा, यही आज्ञा लेने आया हूँ।

बाबू—सोइएगा तो बरामदे में क्यों ? इस अगहन मे, जाड़े की रात मे, आपको कष्ट होगा। मेरे इसी कमरे के भीतर सोइए। आइए।

मोती—नहीं, मैं आपको तकलीफ देना नहीं चाहता। मैं इसी बरामदे मे बड़े आराम से सोऊँगा। आप जाकर सोइए।

"भला ऐसा भी कभी हो सकता है ? मैं घर के भीतर सोऊँ, और आप बरामदे में रहें। आइए, आइए। मुझे कुछ तकलीफ नहीं होगी। बहुत जगह है।"

मोती ने, बाबू के पीछे पीछे, घर के भीतर प्रवेश किया। देखा तो कमरा साफ सुथरा और खूब लम्बा चौड़ा है। एक

वन्द कर के सोगये हैं। छप्परों के समीप जाकर देखा—दो तीन जगहों से मछली की दुर्गन्ध आ रही थी । हाट के दिन मल्लाहिनें इन्हीं घरों में बैठ कर मछलियाँ बेचती हैं । दो तीन छप्परों मे वदबू तो न थी किन्तु खूब कूडा-करकट पडा था। वहाँ सोने से रात में साँप वगैरह का भय था । इसलिए मोतीलाल ने उस स्थान को छोडकर फिर पक्की सड़क पकडी ।

कुछ ही दूर आगे जाने पर देखा, सडक के पास एक ऊँचे वरामदे का सुन्दर बँगला है । सोचा, इस वरामदे में वेखटके सो सकता हूँ । तब वह रास्ता छोडकर वरामदे के पास जा खडा हुआ । मन में सोचा, जिसका मकान है उससे आज्ञा लेकर वरामदे में सोना अच्छा है । इसलिए उसने धीरे से पुकारा—यहाँ कोई है ? कुछ उत्तर न मिला ।

मोती ने फिर स्वर को कुछ ऊँचा करके आवाज दी—यहाँ कोई है ?

फिर भी कुछ उत्तर न मिला । मोती ने सोचा, मकान खाली तो नहीं है । सीढी पर पैर रख धीरे धीरे वह उसारे में गया । कुछ कुछ जो प्रकाश था उसमे देखा कि कमरे का दरवाजा वन्द है। तब उसने धीरे धीरे वरामदे के प्रान्त में जाकर देखा तो एक किञ्चित् खुली खिडकी की राह से रोशनी आ रही है । खिडकी के पास जाकर देखा कि कोठरी के भीतर एक तीस वत्तीस वर्ष का युवा नीचे आसन विछाये उस पर हाथ जोंडे आखें मूँदे वैठा है । मोती ने समझा कि वह उपासना में लीन है, अभी

उसको पुकारना उचित नहीं। मोती वहाँ चोर की तरह कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा। फिर वहाँ से हटकर उस कोठरी के द्वार के पास आया। द्वार भीतर से बन्द था। थक जाने के कारण मोती ने सोचा, कन्धे से झोली उतार कर नीचे रख कर ज़रा बैठ जाय। बैठते समय कन्धे से धरती पर झोली रखने का शब्द हुआ। तब भीतर से आवाज आई—कौन है ?

मोती ने खड़े हो कर कहा—मैं सन्यासी हूँ।

बाबू किवाड़ खोल कर बाहर आये। बोले—आप सन्यासी हैं? आइए, भीतर आइए।

मोती—भीतर जाने की आवश्यकता नहीं है। मैंने आपकी शान्ति भङ्ग की, इसके लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ। मैं आप के बरामदे में रात को सोऊँगा, यही आज्ञा लेने आया हूँ।

बाबू—सोइएगा तो बरामदे में क्यों? इस अगहन में, जाड़े की रात में, आपको कष्ट होगा। मेरे इसी कमरे के भीतर सोइए। आइए।

मोती—नहीं, मैं आपको तकलीफ देना नहीं चाहता। मैं इसी बरामदे में बड़े आराम से सोऊँगा। आप जाकर सोइए।

"भला ऐसा भी कभी हो सकता है? मैं घर के भीतर सोऊँ, और आप बरामदे में रहें। आइए, आइए। मुझे कुछ तकलीफ नहीं होगी। बहुत जगह है।"

मोती ने, बाबू के पीछे पीछे, घर के भीतर प्रवेश किया। देखा तो कमरा साफ सुथरा और खूब लम्बा चौड़ा है। एक

तरफ चौकी पर विछौना विछा हुआ है। उसके पास ही वेञ्च पर एक स्टील ट्रङ्क रक्खा है। दीवार से कुछ हटकर एक विलायती चूल्हा और चाय औटने तथा पीने का सब सामान पड़ा है। चौकी के सिरहाने की तरफ एक टेवल पर लालटेन बल रही है और कितनी ही मोटी मोटी पुस्तकें उसपर रक्खी हुई हैं। दीवार में चार पाँच नक्शे मोड़े हुए लटक रहे थे। दो बेञ्चें और एक टूटा हुआ काला वोर्ड भी था।

बाबू ने भीतर जा चौकी पर बैठ अपने बगल में स्थान दिखा कर कहा—"आइए, बैठिए।" मोती चौकी की कगनी पर बैठ कर कमरे में विछे आसन पर दृष्टि डाल कर बोला—आप उपासना में सलग्न थे। मैंने बाधा डाली, बड़ा अन्याय हुआ।

बाबू—उपासना क्या, उपासना की नकल कहिए। हम लोग उपासना क्या करेंगे ? गृहस्थ का मन क्या स्थिर रहता है ? बैठ कर भगवान् का स्मरण करने की चेष्टा मात्र करता हूँ। आप आये हैं, यह मेरा सौभाग्य है।

कुछ देर इधर उधर की बातें होने के अनन्तर बाबू एकाएक बोल उठे—अच्छा, बाबाजी, आप आज्ञा दीजिए तो मैं एक बात पूछूँ।

"पूछिए।"

बाबू दोनों भौंहें उँगली से दवा कर बोले—मनुष्य की मृत्यु होने पर आत्मा कहिए–या जो कहिए–उसकी क्या स्वतन्त्र सत्ता रहती है ?

मोती ने कहा—हिन्दूशास्त्रों पर विश्वास करने से—

बाबू ने बात काट कर कहा—वह सब मैं जानता हूँ। मैंने पढ़ा है। मैं आप से वह नहीं पूछता—आप अपने मन का—शास्त्र-पुराण की बात छोड़ दीजिए—अपने मन का स्वाधीन विश्वास जो हो, वही मुझसे कहिए।

मोती—मेरे मन का विश्वास है—मनुष्य के मर जाने पर भी उसका स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है।

बाबू एक मिनट चुप रह कर बोले—अस्तित्व रहता है। मेरा भी यही विश्वास है। स्वामीजी, मैं आप से एक बात और पूछूँगा। आशा है, आप कृपा-पूर्वक मेरी धृष्टता क्षमा करके समीचीन उत्तर दे अनुगृहीत करेंगे। मैं आपकी परीक्षा करने के अभिप्राय से या आपको धोखे में डालने के लिए नहीं पूछता। किसी कारण से मेरा मन बड़ाही व्याकुल है। यह कहने की अभी जरूरत ही क्या! इसे जाने दीजिए। हाँ, आपने जो कहा है कि मृत्यु के अनन्तर भी मनुष्य की स्वतन्त्र सत्ता रहती है—यह आपका स्वतन्त्र विश्वास है। अच्छा, इस विश्वास का आधार क्या है? क्या विचार कर आपने विश्वास किया है कि मृत्यु के बाद भी मनुष्य का स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है?

मोती—मेरा विश्वास a priori के आधार पर अवलम्बित है और—

बाबू—आप अँगरेजी जानते हैं?

"जी हाँ।"

"पाश्चात्य दर्शन पढा है ?"

"हाँ, कुछ कुछ।"

"अच्छा ही हुआ। तब हम लोगों का अनुभव मिलेगा। अच्छा क्या कहते थे, कहिए।"

मोती—मेरा विश्वास है कि प्रथम तो ईश्वर सृष्टिकर्ता हैं और फिर उनकी सृष्टि का अभिप्राय शुभ है। मनुष्य को जो उन्होंने सिरजा है वह योंही नहीं सिरजा, किसी अभिप्राय से ही सिरजा है। मनुष्य को क्रम क्रम से ऊँचे शिखर तक पहुँचानेही के लिए बनाया है। वे उसे एक एक सीढी ऊपर चढा कर चरम स्थान तक पहुँचा देंगे। स्कूल में जैसे अलग अलग क्लास होते हैं, मैं समझता हूँ, मनुष्य का एक एक जन्म भी उसी तरह एक एक क्लास है। एक जन्म में मनुष्य अपनी कितनी क्या उन्नति कर सकता है ? मृत्यु के साथ साथ यदि सभी समाप्त हो जाय तो यह सृष्टिव्यापार बिलकुल ही, लडकों के खेल की तरह, निरुद्देश्य होगा। इसीसे मैं विश्वास करता हूँ कि मृत्यु के बाद भी मनुष्य का स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है। उसे चाहे आत्मा कहिये चाहे और कुछ। वही आत्मा फिर नया मनुष्य-शरीर धारण करती है, पिछले जन्म में मनुष्य-जीवन का सबक जहाँ तक सीखा था, इस जन्म में फिर वहाँ से आरम्भ कर उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होती है।

बाबू ने कहा—मैं भी एक समय यही सोचता था। अच्छा, मेरे एक प्रश्न का उत्तर दीजिए। क्या वृक्षों में भी आत्मा

है? पेड सूख जाने पर क्या उसका स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है और वह फिर नया पेड होकर जन्म लेता है?

मोती ने कहा—यह मेरी समझ में नहीं आता।

"तब तो भगवान् का वृक्षों की रचना करना उद्देश्य-हीन, लडकों का खेल, हुआ?"

"सो क्यों? वृक्ष सूख जाता है, किन्तु उसके फल के बीज से जो सैकडों पेड उत्पन्न होते हैं, वही ईश्वर के उद्देश्य की सार्थकता के प्रमाणस्वरूप हैं।"

बाबू ने कहा—तो मैं भी इसी तरह कहूँ कि ईश्वर ने पूर्ण परिणति के लिए मनुष्य की सृष्टि की है, बहुत ठीक। किन्तु प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्र भाव से पूर्ण परिणति को प्राप्त हो, यह उनका उद्देश्य नहीं है। पूर्ण परिणति के लिए उन्होंने मानव जाति की सृष्टि की है। वंशावली-क्रम से मानवजाति पूर्णता की ओर अग्रसर होती है। वही उनके अभिप्राय को सफल करेगी।

मोतीलाल ने कुछ सोच कर कहा—बात के इस पहलू की ओर मेरा खयाल कभी नहीं गया था। अच्छा, मैं इसे सोचकर देखूँगा। मृत्यु के बाद प्रत्येक मनुष्य का स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है, आपके इस विश्वास का आधार क्या है? क्या मैं यह पूछ सकता हूँ।

बाबू धीरे धीरे कहने लगे—जरूर पूछ सकते हैं। देखिए, मैं छोटी उम्र में पक्का हिन्दू था—जैसे कि सब होते हैं। जब पहले पहल कालेज में गया तब मेरे साथ एक विद्यार्थी रहता था।

मुझे याद है, उसने कहा था, गङ्गा भी अन्य नदियो के ही समान है। उसमें पाप-नाश करने की कोई विशेष शक्ति नहीं है। इस पर मैंने उसे एक महीने तक नास्तिक कह कर चिढाया था। इसके बाद जब मैं बी० ए० में पढ़ने लगा—जब विज्ञान की आलोचना करते करते मेरे मन का भाव बदलने लगा—तब मेरे मन में यह आशङ्का होने लगी कि हमारे ये सब देवी और देवता ऋषि-मुनियो की कविकल्पना ही तो नहीं हैं? क्रम क्रम से जितनी आलोचना करने लगा उतना ही सशय बढने लगा। एक दिन मेरे छात्रावास में भोज था। लडको ने धोखा देकर मुझे भग मिला हुआ पेडा खिला दिया था। थोडी ही देर में नशे से मेरा सिर घूमने लगा। उस रात को, भग के नशे मे, आँख मूँद कर मैंने न जाने कितने अद्भुत चित्र देखे, यह सब आपको क्या बताऊँ। दूसरे दिन तबीयत ठीक होने पर मनही मन सोचा कि हिन्दू-पुराण के ये तैंतीस कोटि देवता ऋषि-मुनियो के स्वप्न हैं। एम० ए० में हर्बर्ट स्पेन्सर की ग्रन्थावली पढ कर तो मैं एकदम घोर अज्ञेयवादी हो उठा। 'पास' करके हेडमास्टरी करने लगा। जितना ही पढता गया उतनाही सशयवादी होता गया। इस तरह कई वर्ष बीतने पर मेरी—

बिचले हाल की घडी में टन् टन् कर बारह बज गये। घडी सुन कर बाबू आधे मिनट तक चुप रहे, फिर धीरे धीरे कहने लगे—

मेरी स्त्री की मृत्यु हुई। उसके शोक से मैं एकदम पागल

सा बन गया। छः महीने हो जाने पर भी मेरा मन स्थिर नहीं हुआ। कहीं एक जगह स्थिर होकर नहीं रह सकता था। छटपटा कर समय बिताता था। बराबर घूमते ही रहने की इच्छा होती थी। तब इन्सपेक्टर साहब से कह कर यह डिपटी-इन्सपेक्टरी की नौकरी ली है। तीन जिलों में जितने स्कूल पाठ-शालायें हैं उन सबको देखता फिरता हूँ। यह बँगला यहाँ का प्राइमरी स्कूल है। आज सवेरे ही यहाँ आया हूँ। कल सवेरे फिर यहाँ से दूसरी जगह जाऊँगा। बात बड़ी ही असम्बद्ध निकल आई—खैर। मेरी स्त्री की मृत्यु के अनन्तर मेरे मन में होने लगा—ऐसा नहीं हो सकता कि मर जाने से ही मनुष्य का सब समाप्त हो जाता हो। ऐसा होने से तो वह फिर कभी मुझे दिखाई ही न देगी, किसी काल में भी नहीं। पर यह असम्भव है। अवश्य ही उससे फिर कभी न कभी भेंट होगी। तब मैं विश्वास करने लगा कि मेरी स्त्री आत्म-रूपिणी होकर कहीं न कहीं अवश्य है। मेरी आत्मा जब इस देह का त्याग करेगी तब फिर हम दोनों में भेंट होगी। परलोक का विश्वास जम गया, संशय-वाद मिट गया। ईश्वर में भी फिर विश्वास-ज्ञान दृढ़ हुआ। तभी से मैं भगवान् का स्मरण करता हूँ। उनसे कहता हूँ—हे प्रभो, वह मेरी अर्द्धाङ्गिनी कहाँ है? उसे सुख से रक्खो जिसमें उससे फिर मेरी भेंट हो।

यह कह कर बाबू चुप हो रहे। मोती आश्चर्य से मुग्ध हो कर इस शोक-गाथा को सुन रहा था। बाबू जब वैसी ऐकान्तिक

प्रार्थना में निमग्न थे उस समय आकर मैंने व्याघात पहुँचाया, यह सोच कर उसका अनुताप और बढ़ गया।

बाबू ने चौकी से उतर कलसी से एक गिलास पानी ले कर पिया, और गिलास भर पानी लेकर बाहर जा वे आँख मुँह धो आये। रूमाल से मुँह पोंछते पोंछते कुछ प्रकृतिस्थ हो कर उन्होंने कहा—बाबाजी, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। आप ने कुछ भोजन किया है या नहीं, मैं यह पूछना अब तक भूल ही रहा था।

मोती ने हँस कर कहा—आप चिन्ता न करें। इस स्थान पर पहुँचने के एक घंटा पहले मैं भोजन कर आया हूँ।

"आपको बहुत थका हुआ देखता हूँ। आप इस चौकी पर सो रहिए।"

"आप कहाँ सोइएगा?"

"बिछौने के नीचे जो शतरंजी है उसे बिछाकर मैं नीचे सोऊँगा।"

मोती ने खड़े होकर कहा—नहीं नहीं, यह कैसे हो सकता है? मैंही नीचे सोऊँगा, मेरे पास कम्बल है।

बाबू—नहीं, आप को नीचे कष्ट होगा। आप चौकी ही पर सोइए।

मोती—कुछ कष्ट न होगा। ये जो दोनों बेञ्चें हैं इन्हीं को जोड़ कर मैं लेट रहूँगा।

बाबू कुछ देर तक चुप रह कर बोले—यदि आप बेञ्च पर सोवें तो भी मैं नीचे ही सोऊँगा । मैं चौकी पर नहीं सोता। आप के न आने पर भी मैं, चौकी से बिछौना उतार कर, नीचे ज़मीन पर ही सोता ।

मोती ने आश्चर्ययुक्त होकर कहा—चौकी पर क्यों नहीं सोते?

बाबू ने धीरे से कहा—मेरी स्त्री के शरीर के अणु-परमाणु इसी पृथिवी में मिले हैं न! इससे मैं ज़मीन पर सोना ही पसन्द करता हूँ ।

मोती ने इस पर कुछ न कहकर उनका बिछौना चौकी से उतार दिया । उस चौकी पर सो कर रात के पिछले पहर मोती ने सपना देखा, मानो सुधा उसका हाथ पकड़ कर कह रही है—"आओ।"

दूसरे दिन सवेरे उठ कर, डिपटी इन्सपेक्टर साहब के अनुरोध से, उनके साथ बैलगाड़ी में बैठ कर मोतीलाल आज़मगढ़ को रवाना हुआ ।



छियालीसवाँ परिच्छेद

हरिदास सवेरे का काम करके बड़े कमरे के उसारे में बैठा बैठा तम्बाकू पी रहा था। इसी समय उसके सत्रह वर्ष के जेठे लड़के ने आकर कहा—दादा, दरवाजे पर सिपाही बैठा है।

हरिदास ने विस्मित होकर कहा—सिपाही! सिपाही क्यों आया है?

लड़के ने उत्तर दिया—यह तो मैं नहीं जानता। मैं बाहर जाता था। उसने कहा, बाहर न जाने पावोगे। हुक्म नहीं है।

इसी समय घर की कहारिन हाँफते हाँफते आकर बोली—मालिक, गली के द्वार पर सिपाही खड़ा है।

यह सुन कर हरिदास उठ खड़ा हुआ और बोला—क्यों, सिपाही क्यों आया है?

कहारिन ने कहा—मैं बर्तन मलने के लिए तालाब के घाट पर जा रही थी। सिपाही ने रोक दिया। कहा, दारोगा का हुकुम है, बाहर नहीं जाने दूँगा।

तब हरिदास ने दोनो दरवाजों पर जाकर देखा, सचमुच ही लाल मुरैठे वाले दो कान्सटेबल खड़े हैं। पूछने पर उन्होंने कहा—अभी दारोगा साहब आते हैं। किसी को बाहर जाने का हुक्म नहीं है।

हरिदास ने पूछा—क्यों, क्या हुआ है?

"हम लोग नहीं जानते । अभी दारोगा साहब आते हैं—उनके आने पर मालूम होगा ।"

हरिदास चिन्ताकुल हो आँगन में आ खड़ा हुआ । तब उसकी बेटी ने आकर कहा—दादा, गोशाला के पिछवाड़े की दीवार जो कुछ गिर गई है, वहाँ भी एक सिपाही है ।

हरिदास ने उस ओर जाकर देखा—बात ठीक ही है । टूटी दीवार के बाहर भी एक सिपाही खड़ा है । बाहर जाने के सभी मार्ग बन्द हैं ।

घर के सभी लोग इस अचिन्तनीय घटना से चिन्तित हो उठे । शीघ्र आने वाली किसी विपत्ति की आशङ्का से सभी के मुँह पर अन्धकार छा गया ।

कुछ देर बाद घोड़े पर चढ़े हुए दारोगा शहादतहुसेन आ पहुँचे । पीछे पीछे दो चौकीदार दौड़े आ रहे थे । एक के माथे पर लकड़ी का छोटा सा बक्स था जिसमें दारोगा साहब के कागज-पत्तर, दावात-कलम आदि आवश्यक सामान था ।

दारोगा ने सदर दर्वाजे पर पहुँचतेही घर के मालिक को पुकारने का हुक्म दिया । दोनो चौकीदार गला फाड़ फाड़ कर पुकारने लगे । हरिदास ने बाहर आकर दारोगा को सलाम किया । दारोगा ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ?

"हरिदास ।"

"यह घर तुम्हारा है ?"

"जी हाँ ।"

"और कोई शरीकदार है ?"

"कोई नहीं। मैं ही सोलह आने मालिक हूँ।"

"तुम्हारे घर की खाना तलाशी होगी। औरतों को हटाओ।"

हरिदास—क्यों दारोगा साहब ? मेरे घर की तलाशी क्यो ली जायगी ?

"मुझे खबर लगी है, तुम्हारे घर मे चोरी का माल है।"

इसी समय धनीराम वहाँ आ पहुँचा।

हरिदास ने कहा—चोरी का माल! मेरे घर में ? कभी नहीं। किसने खबर दी है ?

दारोगा घोड़े से उतर कर बोला—"किसने खबर दी है, यह बतलाने का हुक्म पुलिस को नहीं।" एक चौकीदार ने घोड़ा पकड़ा। दूसरे चौकीदार से दारोगा ने कहा—महल्ले के दो चार मातबर आदमियो को बुला लाओ।

दारोगा आँगन में जा करके, धनीराम को दिखा कर, बोला—इस आदमी के घर मे सेंध लगी थी। माल चोरी गया है। पता लगा है, वह माल तुम्हारे घर मे है। अगर अपनी भलाई चाहो तो अभी दिखा दो, वह सब चीजे कहाँ हैं। जो न बताओगे तो तुम्हारे घर को खोदवा डालूँगा।

यह सुन कर हरिदास के मन से भय का बोझ उतर गया। हँस कर बोला—यही बात है तो आप खुशी से खाना तलाशी कर सकते हैं। मेरे घर में किसी का कुछ माल नहीं है। यह

खबर जरूर मेरे किसी दुश्मन ने आपको दी है। (धनीराम की ओर देख कर) क्यो भैया, तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है, घर कहाँ है ?

दारोगा ने धनीराम को घुडक कर कहा—खबरदार, चुप रहो। कुछ मत बोलो।

हरिदास ने कहा—न बतलावे। मेरे किस दुश्मन ने मुझ पर यह झूठी तुहमत लगाई है, यह मालूम होही जायगा। आज न सही, कल सही। तब मैं आपही के पास जाकर अर्ज करूँगा। उसके द्वारा पग पग पर मैं इतना अपमानित किया गया, मुझे झूठ मूठ उसने इतना हैरान किया—इसका इन्साफ हजूर को करना होगा। अच्छा, अभी आइए। मैं सन्दूक, बक्स, पिटारी आदि सब चीजों की कुंजी देता हूँ। आप खुशी से सब चीजों की तलाशी लेलीजिए।

इसी समय महल्ले के तीन चार आदमी थर थर काँपते हुए दारोगा साहब के सामने आ खडे हुए। सभी किसान हैं, अशिक्षित हैं। दारोगा साहब को सलाम करके वे चुपचाप खड रहे। दारोगा ने कागज कलम निकाल कर उन सब का नाम लिख लिया। फिर बोला, खाना-तलाशी होगी। तुम लोग गवाह हो, साथ साथ हाजिर रहो।

तब बूट खटखटाते हुए दारोगा ने हरेक कमरे की तलाशी ली। बक्स पिटारी जहाँ जो कुछ थी, सबको खुलवा खुलवा कर

देखा। दारोगा ने सभी वर्तन और जेवर आदि एक जगह जमा करके धनीराम से पूछा—इन सब में तेरा कोई माल है?

धनीराम ने हाथ जोड़ कर कहा—नहीं हजूर।

दारोगा ने अपनी छड़ी उसकी बगल में कोच कर कहा—साले बिना देखेही कहता है! पहले सब चीजों को अच्छी तरह देखले तब बोल।

धनीराम सब चीजें अच्छी तरह देख कर बोला—नहीं, इनमें मेरी कोई चीज नहीं है।

तब दारोगा आँगन में उतर कर चारो ओर देखने लगा। मिट्टी खोद कर गाड़ रखने का कोई चिह्न कहीं है या नहीं, यह देखने के लिए दारोगा ने कान्सटेबलो को हुक्म दिया। उन्होने चारो ओर खोज डाला पर कहीं वैसा चिह्न ढूँढ निकालने में वे समर्थ नहीं हुए।

आँगन में धान के दो बड़े बड़े बखार थे। दारोगा ने हुक्म दिया—"देखो, इन दोनों के भीतर तो माल नहीं है।" सिपाहियो ने अपनी वर्दी पटी खोल कर दोनों बखारों से कुल धान बाहर कर डाला। किन्तु कोई माल नहीं निकला।

तब दारोगा ने दलबल सहित रसोईघर की ओर जाकर कहा—"इस घर मे जरूर माल है।" हरिदास के हजार एतराज करने पर भी दारोगा घर में घुसही गया। उसने करीम खाँ कान्सटेबल से पुकार कर कहा—हाँड़ियाँ फोड़ डालो। देखो, उनके भीतर माल है या नहीं।

उस मुसलमान सिपाही ने लाठी से मिट्टी के बर्तनों को तोड फोड डाला। बासी भात, दाल आदि सब चीजें घर में छितरा गई। उसके कुछ छींटे सिपाही की दाढी और बदन पर भी जा पडे लेकिन माल न मिला। अब दारोगा गोशाला के द्वार पर जाकर बोला—"यहाँ एक बोझ पयाल फैला हुआ है। इसको तो अब तक देखाही नहीं।" आज्ञा के अनुसार कान्स-टेबल लोग उस पयाल को हटा कर खोजने लगे। पयाल हटाते हो उसके भीतर से कुछ काँसे-पीतल के बर्तन निकल पडे। यह देख धनीराम उछल कर बोल उठा—यही मेरे बर्तन हैं। कँसेरे से मरम्मत करवाई थी, देखो यह चिह्न है।

दारोगा ने लहमे भर तक धनीराम की ओर गुस्सा भरी नजर से देख कर कहा—क्यों रे पाजी, अब बता? यह चीजे कहाँ से बरामद हुई?

यह घटना देख कर हरिदास को काठ मार गया। कुछ देर तक उसके मुँह से बात ही नहीं निकली। आखिर बडे कष्ट से बोला—यह मेरे किसी दुश्मन का काम है। मुझे फँसाने के लिए कोई छिपा कर रख गया है।

व्यङ्ग के स्वर मे दारोगा बोला—हाँ, दुश्मन का काम है। अदालत में जाकर यही जवाब देना। इसकी अक्ल तो देखो। पयाल के भीतर छिपा रक्खा था। समझता था, पुलिस आवेगी तो सन्दूक-पिटारी ढूँढेगी, घर टूटेगी। पयाल की टेरी में

देखा। दारोगा ने सभी वर्तन और जेवर आदि एक जगह जमा करके धनीराम से पूछा—इन सब में तेरा कोई माल है?

धनीराम ने हाथ जोड़ कर कहा—नहीं हुजूर।

दारोगा ने अपनी छडी उसकी बगल में कोच कर कहा—साले विना देखेही कहता है! पहले सब चीजों को अच्छी तरह देखले तब बोल।

धनीराम सब चीजें अच्छी तरह देख कर बोला—नहीं, इनमें मेरी कोई चीज नहीं है।

तब दारोगा आँगन में उतर कर चारो ओर देखने लगा। मिट्टी खोद कर गाड रखने का कोई चिह्न कहीं है या नहीं, यह देखने के लिए दारोग़ा ने कान्सटेवलों को हुक्म दिया। उन्होंने चारो ओर खोज डाला पर कहीं वैसा चिह्न ढूँढ निकालने में वे समर्थ नहीं हुए।

आँगन मे धान के दो बडे बडे बखार थे। दारोगा ने हुक्म दिया—"देखो, इन दोनों के भीतर तो माल नहीं है।" सिपाहियो ने अपनी वर्दी पटी खोल कर दोनों बखारों से कुल धान बाहर कर डाला। किन्तु कोई माल नहीं निकला।

तब दारोगा ने दलबल सहित रसोईघर की ओर जाकर कहा—"इस घर मे जरूर माल है।" हरिदास के हजार एतराज करने पर भी दारोगा घर में घुसही गया। उसने करीम खाँ कान्सटेवल से पुकार कर कहा—हाँडियाँ फोड डालो। देखो, उनके भीतर माल है या नहीं।

उस मुसलमान सिपाही ने लाठी से मिट्टी के बर्तनों को तोड़ फोड़ डाला। बासी भात, दाल आदि सब चीजें घर में छितरा गईं। उसके कुछ छींटे सिपाही की दाढ़ी और बदन पर भी जा पड़े लेकिन माल न मिला। अब दारोगा गोशाला के द्वार पर जाकर बोला—"यहाँ एक बोझ पयाल फैला हुआ है। इसको तो अब तक देखा ही नहीं।" आज्ञा के अनुसार कान्स-टेबल लोग उस पयाल को हटा कर खोजने लगे। पयाल हटाते ही उसके भीतर से कुछ काँसे-पीतल के बर्तन निकल पड़े। यह देख धनीराम उछल कर बोल उठा—यही मेरे बर्तन हैं। कँसेरे से मरम्मत करवाई थी, देखो यह चिह्न है।

दारोगा ने लहमे भर तक धनीराम की ओर गुस्सा भरी नजर से देख कर कहा—क्यों रे पाजी, अब बता ? यह चीजे कहाँ से बरामद हुई ?

यह घटना देख कर हरिदास को काठ मार गया। कुछ देर तक उसके मुँह से बात ही नहीं निकली। आखिर बड़े कष्ट से बोला—यह मेरे किसी दुश्मन का काम है। मुझे फँसाने के लिए कोई छिपा कर रख गया है।

व्यङ्ग के स्वर में दारोगा बोला—हाँ, दुश्मन का काम है! अदालत में जाकर यही जवाब देना। इसकी अक्ल तो देखो! पयाल के भीतर छिपा रक्खा था। समझता था, पुलिस आवेगी तो सन्दूक-पिटारी ढूँढेगी, घर ढूँढेगी। पयाल की ढेरी में

कौन ढूँढेगा ? अरे मैं तेरह वर्ष से दारोगागरी करता हूँ। मेरी ही आँखो में तू धूल डालेगा चोट्टे ?

यह सुन कर हरिदास की आँखें क्रोध से लाल होगईं। वह काँपते हुए स्वर से चिल्ला कर बोला—खबरदार दारोगा साहब ! गाली मत दीजिए, जबान सँभाल कर बोलिए।

दारोगा ने कडी आवाज में कहा—छोटे मुँह बडी बात ? दारोगा के ऊपर आँखे लाल करना ? पाजी साले, हरामजादे ! करीम खाँ, साले बेअदब को हथकडी डाल दो।

करीम खाँ ने फौरन् हरिदास को एक धक्का दिया। पास ही एक अमरूद का पेड था, किसी तरह उसे पकडकर हरिदास नीचे गिरने से बचा। किन्तु पेड की रगड लगने से उसकी बगल का चमडा छिल गया और उससे लहू बहने लगा। हरिदास खडा भी नहीं होने पाया कि दो कान्सटेबलो ने उसके दोनों हाथ मोड कर पीठ की ओर कस कर पकडे और करीम खाँ ने हथकडी डाल दी। हरिदास के घर की स्त्रियाँ और बालक कुछ दूर खडे थे। वे यह देख कर चिल्ला उठे और रोने लगे।

दारोगा खूब जोर से धरती पर पैर पटक स्त्रियो की ओर देख कर—"चुप रहो हरामजादियो, नहीं तो अभी—" कह कर अश्लील गालियाँ देने लगा।

हरिदास ने चिल्ला कर कहा—"दारोगा, तुम बडे नीच हो, अफ़सर के मुँह से ऐसी बोली ! फिर चिताता हूँ, स्त्रियो को गाली मत दो। मैं कलकृर साहब के पास जाकर

तुम पर नालिश करूँगा।" उसकी आँखों से मानो क्रोध और क्षोभ की आग निकल रही थी। रह रह कर उसकी नाक फूलने और होठ फड़कने लगे।

दारोगा ने हरिदास के गाल में खूब जोर से थप्पड़ मार कर कहा—करीम खाँ, साले के मुँह में थूक दो।

यह हुक्म तामील करने में करीम खाँ इधर उधर करने लगा। स्त्रियाँ फिर चिल्लाकर रोने लगीं।

स्त्रियों के बेइज्जत होने की आशङ्का से हरिदास के दो चार आत्मीय मोटे मोटे लट्ठ लेकर एक पेड़ की आड़ में आ खड़े हुए। दारोगा ने उन ग्वालों के मन का भाव समझ हुक्म दुहराने की आवश्यकता नहीं समझी।

यह सब अत्याचार देख कर धनीराम रूँधे गले से बोला—दारोगा साहब—इसे छोड़ दीजिए—ये बर्तन मेरे नहीं हैं।

दारोगा ने आँख बदल कर कहा—क्या कहा?

धनीराम ने पूर्व की अपेक्षा दृढ़ स्वर में कहा—सरकार ये बर्तन मेरे नहीं हैं। इसे छोड़ दीजिए।

दारोगा गरज कर बोला—क्यों बे! तेरे नहीं हैं? तो फिर तूने पहले क्यों अपने बतलाये!

"हजूर मैंने झूठ कह दिया था।"

दारोगा ने बड़े ज़ोर से डपट कर कहा—दारोगा के सामने झूठा इजहार? तो तेरा ही चालान करता हूँ। तू माल चरस के लिए जेल भेजा जायगा। करीम खाँ, हथकड़ी लाओ।

यद्यपि दूसरी हथकडी न थी तथापि करीम खाँ ने अपने थैले में हथकडी ढूँढने के लिए झूठमूठ हाथ डाला।

धनीराम ने भौंह तान कर कहा—अयँ! झूठा इजहार देने से जेल जाना होता है ?

दारोगा ने दाँत पीस कर विकृत स्वर में कहा—नहीं—जेल क्यों जाना होगा ? लड्डू खाने को मिलेंगे। करीम खाँ, हथकडी पहना दो।

धनीराम काँपते काँपते—हजूर, तो वह—वर्तन-मेरे ही हैं।—कह कर जिधर स्त्रियाँ थीं उधर पीठ करके सिर नीचा करके खडा हो रहा।

दारोगा ने कागज कलम निकाल कर वर्तनों की फर्द तैयार की। उस पर गवाहों से दस्तखत करा लिये। धनीराम फिर कहीं यह इजहार लौटा न ले और यह कहने न लग जाय कि ये वर्तन मेरे नहीं हैं—इसलिए उस फर्द के एक किनारे पर उसके हाथ के अँगूठे की भी छाप ले ली।

इतने में पडोस के और भी कितने ही लोग हरिदास के आँगन में आ खडे हुए थे। देखा कि एक बूढा आदमी हरिदास के बेटे के साथ खडा होकर फुसुर फुसुर बातें कर रहा है। इसके बाद लडका स्त्रियों के पास जाकर चुपके से कुछ कहने लगा। दारोगा की दृष्टि से यह बात छिपी न रही। तेरह वर्ष की अभिज्ञता के फल से दारोगा समझ गया कि बात क्या है।

तब शहादतहुसेन उच्च स्वर से ठहर ठहर कर कहने

लगा—इधर तो मब •ठीक हुआ। अब एक चौकीदार नर्तन बाँध ले चल। करीम खाँ, असामी की कमर में रस्सी बाँधो। भोलासिंह और जालिमसिंह उस रस्सी के दोनो छोर, दो ओर से, पकड़ कर ले जायँ। अगर रास्ते में यह बदमाशी करे—या चलने में देरी करे—तो करीम खाँ तुम इसकी पीठ में खूब डण्डे जमाना। और रास्ते के किसी जङ्गल से दो चार किवाँच के पेड लेते आना। थाने मे जाकर असामी अगर आसानी से कसूर कबूल न करेगा तो इसके बदन में किवाँच लगाना होगा। जल्दी करो, इसकी कमर मे रस्सी बाँधो।

करीम खाँ ने रस्सी निकाली। यह देखकर स्त्रियाँ फिर रोने चिल्लाने लगीं।

अब वृद्ध ने दारोगा के पास आकर कहा—हजूर, एक बार इस तरफ आने की तकलीफ करे।

हजूर बडी मिलनसारी के साथ बूढे के साथ साथ चले। आँगन के एक कोने में दोनों खडे हुए। बूटे ने कहा–दारोगा साहब, कोई उपाय कर दीजिए, नहीं तो गरीब मारा जायगा।

"मैं क्या उपाय करूँगा?"

"गरीब आदमी है, बाल-बच्चो का सहारा वही है। सब बरबाद हो जायगा। दया कीजिए। छोड दीजिए।"

"मैं रहम करनेवाला कौन! मैं कैसे छोडूँगा! कानून क्या मेरा बनाया है? हम लोग सरकार का नमक खाते हैं। सरकार के कानून को जिसने नहीं माना है उसे कैसे छोड सकते हैं।"

"क्यो नहीं छोड सकते हैं—हजूर गरीब के माँ-बाप हैं। आप चाहे तो सब कुछ कर सकते हैं।"

असल बात कहने में वृद्ध को सकुचित होते देख दारोगा ने अधीर होकर कहा—ये वाहियात बातें सुनने की मुझे फुरसत नहीं। जो कहना हो झटपट कहो।

तब वृद्ध ने इधर उधर देखकर कहा—दारोगा साहब, कितने मे आप उसे छोड सकते हैं?

"बिलकुल छोड देना तो बडा मुश्किल है। अच्छा यह बातें फिर होगी। मैं जो अभी काम की बात कहता हूँ सो सुनो। मैं ने सिपाहियो को जो हुक्म दिया है उसे तो तुम अपने कानो सुन ही चुके हो। मैं बडा कडा हाकिम हूँ। जो कहा है वह सब करूँगा—बल्कि ज्यादह भले हो जाय कम नहीं। अगर अभी मुझको १००) रुपया दो तो कमर की रस्सी और हथकडी खुलवा दूँगा। सिर्फ सिपाही के साथ साथ जायगा। इकरार कराने के लिए किवाँच लगाना, जूते से पीटना या और किसी तरह का अत्याचार नहीं करूँगा। सिर्फ हाजत मे करा दूँगा। तुम लोग उसके साथ जा, वहाँ रह कर, रसोई बनाकर खिला सकते हो, बात चीत कर सकते हो। सिर्फ इतने के लिए अभी १००) चाहिए। और बात चीत शाम को थाने में होगी। रुपया खर्च करने से क्या नहीं हो सकता है?"

बूढ़ा कई दफे स्त्रियों के पास गया और कई दफे दारोगा के पास आया। आखिर ५०) रुपये पर दारोगा को राजी

होना पड़ा। तीन कान्सटेबल दो दो रुपये और दो चौकीदार आठ आठ आने पाकर ही खुश हो गये। कुल ५७) रुपया पान-तम्बाकू के लिए लेकर अभियुक्त को साथ ले दारोगा जी थाने को रुख़सत हुए।

दूसरे दिन रैनकलाल ने चिट्ठी में कुल हाल गोपीकान्त को लिख भेजा। अन्त में यह भी लिख दिया—हरिदास मातबर आदमी है। उनने दारोगा को ५००)रु० तक घूस देकर मुक्त होने की चेष्टा की थी। यह सुन कर मैंने थाने में जाकर दारोगा को और १००) रुपया देना कबूल किया तब उन्हों-ने आज उसका ४११ दफा के अनुसार चालान किया है। जो हाल होगा उसकी इत्तिला हुज़ूर को फिर दूँगा।

सैंतालीसवाँ परिच्छेद

दो दिन डिपटी इन्सपेक्टर के साथ रह कर मोती ने काशी जाने की इच्छा प्रकट की। डिपटी बाबू ने उसे रेल-भाडा देना चाहा था किन्तु उसने लेना स्वीकार नहीं किया। कहा, "मैं पैदल ही जाना चाहता हूँ।" वह काशीवाली सडक पर धीरे धीरे जाने लगा। यह सडक सीधी नहीं है। चक्कर काट कर गई है। समय पर यथेष्ट भोजन न मिलने के कारण उसके शरीर का सामर्थ्य दिन दिन घटता गया। कल से भूखा है, नंगे पैरों चलने से पैर के तलुवे में फफोले पड गये हैं। घर छोडे आज दो सप्ताह हो गये। इतनी दूर पैदल ही आया है—डिपुटी साहब के साथ दो दिन तक मोतीलाल को समय पर भर पेट भोजन मिला था। तब से भर पेट भोजन नहीं मिला। कभी थोडा सा दूध मिल गया, कभी कुछ फल-फूल मिल गये और कभी वह भी नहीं। यदि वह लोगों से माँग सकता तो उसकी यह दुर्दशा न होती। पर भीख माँगने मे तो वह बिलकुल ही असमर्थ है। उसके कन्धे पर झोली, बाँयें हाथ में लोटा और बगल में वही मृगछाला है। उसकी धोती और चादर अब बहुत मैली हो गई है। सिर के बाल धूल से भर गये हैं। कमजोरी के मारे आँखें धँस गई हैं।

रास्ते के प्रान्तवर्ती पेडों की छाया में होकर मोती जा रहा

है। दिन डेढ़ पहर के करीब चढ़ आया है । बीच बीच में दो चार किसान उस राह से इधर उधर जाते आते दिखाई देते हैं । धूप जितनी बढ़ती जा रही है, मोती की गति का वेग भी उतनाही घटता जा रहा है । और तीन चार मील रास्ता तय करने पर वह सारनाथ पहुँचेगा । वहाँ पहुँचने पर यदि उसे कोई बिना माँगे भोजन देगा तो वह खायगा। भूखे रहने पर भी उसे किसी से भोजन माँगने का साहस नहीं होता । चलते चलते प्यास के मारे उसका कण्ठ सूख गया है तो भी वह धीरे धीरे चल रहा है। और कुछ दूर आगे बढ़ने पर उसे रास्ते में एक पक्का पुल मिला। अधिक थकावट मालूम होने से मोती उसी पुल पर बैठ गया । पहले मन में सोचा था, पाँच मिनट सुस्ता कर फिर चलूँगा किन्तु पन्द्रह बीस मिनट हो जाने पर भी उठने को जी नहीं चाहता था। एँड़ी एक जगह फट गई थी, देखा तो उससे लहू बह रहा है ।

वह बैठे बैठे सोचने लगा, मालूम होता है कि अब ग्यारह का समय होगा। अगर घर पर होता तो दासी आकर कहती– "छोटे बबू, रसोई हो गई भोजन करने चलिए।" आसन पर जा कर बैठता और भरपेट षट्रस भोजन करता । कुछ देर तक इसी तरह आकाश-पाताल की बातें सोच रहा था। इसी समय मानो किसी ने कान में कहा––"हाय रे अन्न! हाय रे मोती!" तब वह चौंक उठा। अपनी दुर्बलता पर लज्जित होकर और अपने ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध होकर वह वहाँ से उठ खड़ा हुआ। फिर पैर घसीट घसीट कर चलने लगा ।

दोपहर से वेर ढल गई । सारनाथ का मन्दिर देख पडता है । एक मील से भी कम होगा । दो एक पक्के मकान भी नजर आते हैं। प्यास से वह इतना व्याकुल हो गया है कि उसे एक पग भी चलना कठिन हो गया है । समीप ही एक बडा सा पक्का कुवाँ था। रास्ते से उतर कर मोती कुएँ की ओर गया। वहाँ जाकर देखा तो वह एक खँडहर था । मिट्टी के टूटे फूटे घडे वहाँ पडे थे । जगह जगह पर आग जलने के चिह्न भी विद्यमान थे । बाँस के खम्भो पर एक छपरी पडी थी। उसी के नीचे मोती जा बैठा। कुछ सुस्ता कर पानी पियेगा।

बैठ कर वह भाँति भाँति की चिन्ता करने लगा। उसमें सब से मुख्य अन्न की चिन्ता थी । यह चिन्ता किसी भी तरह दूर होनेवाली न थी। सारनाथ पहुँचने पर उसका क्षुधा से सूखा हुआ मुँह देखकर क्या कोई कुछ खाने को न देगा ? हाय ! कलावन्नगत प्राण —ससारी जीव का अन्न विना नहीं चल सकता ।

मोती की आज अभी तक नित्य-पूजा भी नहीं हुई है। झोली और कमण्डल आदि उस छपरी के भीतर रखकर मोतीलाल ने कुएँ पर स्नान किया । नहा-धोकर भजन-पूजन करके वह जल पान करेगा—खाने को कोई भी वस्तु उसके पास न थी।

भजन पूजन करके उसने कुछ पानी पिया और भीगे कपडे को सूखने के लिए फैला दिया। फिर मृग-छाला बिछा-

कर वह उसी छपरी के नीचे आ बैठा और झोली से वेदान्त-रामायण निकाल कर दसवाँ सर्ग पढने लगा। पढते पढते यह श्लोक निकला—

> संन्यासमाश्रयति योहि विनेव कर्म-
> योग स चेह लभते खलु दु खमेव।
> य कर्मयोगमनुतिष्ठति वा मुनि सन्
> स ब्रह्म विन्दति पर न चिरेण मर्त्य ॥

जो कर्मयोग को त्याग कर सन्यास धारण करता है वह यहाँ दु खही पाता है। जो मननशील होकर कर्मयोग का अनुष्ठान करता है वह मनुष्य शीघ्र ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है।

यह बात नहीं कि मोतीलाल ने यह श्लोक पहले न पढा हो किन्तु इस श्लोक का विलक्षण भाव उसे अभी सूझ पडा। पुस्तक बन्द करके वह सोचने लगा—मैंने जिस जीवन-वृत्ति का अवलम्बन किया है वह बिलकुल कर्मशून्य है इसलिए दु खही मेरे हाथ लगेगा। सोभी केवल अन्न-कष्ट या शारीरिक कष्ट ही नहीं है, किन्तु मैं जिस शास्त्रचर्चा या भगवद्-भजन को निर्विघ्न-पूर्वक करने की इच्छा से घर छोड कर आया हूँ, उसका इस दो सप्ताह के भीतर कितना क्या कर सका हूँ? घर में रहकर मैं दो दिन में जो कर सकता वह इस दो सप्ताह में भी नहीं कर सका। मेरा शरीर जैसे दिन दिन सूखता जा रहा है वैसेही मानो मेरी मानसिक शक्ति भी क्रमश शिथिल होती जा रही है।

मोतीलाल फिर पोथी खोल कर पाठ करने लगा। किन्तु भावार्थ अच्छी तरह से हृदय में नहीं जमा। भूख से देह अवसन्न थी। सिर चकरा रहा था। बैठे रहने में भी कष्ट मालूम होने लगा। तब वह उसी मृगछाले पर लेट गया। लेटतेही नींद आगई।

नींद में वह भाँति भाँति के पदार्थ खाने का स्वप्न देखने लगा। उसने विचित्र स्थानो मे अद्भुत भोजन करना देखा। इस तरह दो घटे बीत गये।

नींद टूटने पर मोती ने आँख खोल कर देखा तो सूर्यदेव पच्छिम आकाश में ढुल पडे हैं। बैठ कर वह स्वप्न की बातें सोचने लगा। एक लम्बी साँस लेकर वह मन्दस्वर में यह सवैया पढने लगा—

जब दाँत न थे तब दूध दियो जब दात भये कह अन्न न दैहै।
जो जल मे थल मे पशु पच्छिन की सुधि लेत सो तेरीहु लैहै॥
काहे को सोच करे मन मूरख सोच किये कछु हाथ न ऐहै।
जान को देत अजान को देत जहान को देत सो तोहुको दैहे॥

मोतीलाल की आँखो से आँसू बह चले। वह कुछ देर तक आँसू भरी दृष्टि से उस खँडहर की ओर देखने लगा। इसके बाद आँखें पोछ कर सोचने लगा—ईसाइयो की प्रार्थना है—Give us this day our daily bread—हे प्रभो! आज हमारा दैनिक भोजन दे।—ईसाइयों की इस प्रार्थना का

पहले मैं तुच्छ समझता था। प्रभु से भक्ति या मुक्ति न माँग कर यह क्या माँगा जाता है, "प्रभो मुझे रोटी दो।" उनकी इस माँग पर मैं हँसता था। किन्तु आज अच्छी तरह समझता हूँ कि भोजन ईश्वर का कितना बड़ा दान है, अन्न ही से आनन्द है। अन्न बिना गति नहीं। अन्न ही जीवों के लिए सर्वप्रधान सर्वप्रथम प्रार्थनीय पदार्थ है।

मोतीलाल अपनी चीज़ वस्तु लेकर धीरे धीरे सारनाथ की ओर चला। एक मील रास्ता चलने में उसे एक घंटा लगा। दूर से जो सफ़ेद मकान देख पड़े थे वे रईसों के वाटिका-भवन थे। वे अभी बन्द हैं। मोतीलाल जितना ही आगे बढ़ने लगा उतनेही अधिक लोग उसे मिलने लगे। कोई कोई उसे प्रणाम भी करने लगा।

जब सूर्य पश्चिम में पेड़ों की आड़ में जा छिपा तब मोतीलाल का सिर भूख से घूमने लगा। आँखों के सामने अन्धकार छा गया। ऐसा मालूम हुआ कि अब वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ेगा। समीप ही सड़क के पास एक मकान का सुन्दर बरामदा था। वह उसी बरामदे में जा बैठा, परन्तु देर तक बैठा नहीं रह सका। बेहोश होकर वहीं लेट गया।

इसके कई मिनट बाद मकान के भीतर से एक पन्द्रह सोलह वर्ष का और दूसरा अट्ठारह वर्ष का लड़का काला कोट पहिने, हाथ में बाइसिकिल लिये, बाहर आया। मोती को उस अवस्था में पड़ा देख बाइसिकिल छोड़ दोनो उसके पास गये।

मोतीलाल फिर पोथी खोल कर पाठ करने लगा। किन्तु भावार्थ अच्छी तरह से हृदय में नहीं जमा। भूख से देह अव सन्न थी। सिर चकरा रहा था। बैठे रहने में भी कष्ट मालूम होने लगा। तब वह उसी मृगछाले पर लेट गया। लेटतेही नींद आगई।

नींद में वह भाँति भाति के पदार्थ खाने का स्वप्न देखने लगा। उसने विचित्र स्थानो में अद्भुत भोजन करना देखा। इस तरह दो घंटे बीत गये।

नींद टूटने पर मोती ने आँख खोल कर देखा तो सूर्यदेव पच्छिम आकाश में ढुल पड़े हैं। बैठ कर वह स्वप्न की बातें सोचने लगा। एक लम्बी साँस लेकर वह मन्दस्वर में यह सवैया पढने लगा—

जब दाँत न थे तब दूध दियो अब दाँत भये कह अन्न न दैहै।
जो जल में थल मे पशु पच्छिन की सुधि लेत सो तेरीहु लैहै॥
काहे को शोच करे मन मूरख सोच किये कछु हाथ न ऐहै।
जान को देत अजान को देत जहान को देत सो तोहुको देहै॥

मोतीलाल की आँखो से आँसू बह चले। वह कुछ देर तक आँसू भरी दृष्टि से उस खँडहर की ओर देखने लगा। इसके बाद आँखें पोछ कर सोचने लगा—ईसाइयो की प्रार्थना है—Give us this day our daily bread—हे प्रभो! आज हमारा दैनिक भोजन दो।—ईसाइयो की इस प्रार्थना को

पहले मैं तुच्छ समझता था। प्रभु से भक्ति या मुक्ति न माँग कर यह क्या माँगा जाता है, "प्रभो मुझे रोटी दो।" उनकी इस माँग पर मैं हँसता था। किन्तु आज अच्छी तरह समझता हूँ कि भोजन ईश्वर का कितना बडा दान है, अन्न ही से आनन्द है। अन्न बिना गति नहीं। अन्न ही जीनो के लिए सर्वप्रधान सर्वप्रथम प्रार्थनीय पदार्थ है।

मोतीलाल अपनी चीज़ वस्तु लेकर धीरे धीरे सारनाथ की ओर चला। एक मील रास्ता चलने में उसे एक घंटा लगा। दूर से जो सफेद मकान देख पडे थे वे रईसो के वाटिका-भवन थे। वे अभी बन्द हैं। मोतीलाल जितना ही आगे बढने लगा उतनेही अधिक लोग उसे मिलने लगे। कोई कोई उसे प्रणाम भी करने लगा।

जब सूर्य पश्चिम में पेडो की आड मे जा छिपा तब मोतीलाल का सिर भूख से घूमने लगा। आँखो के सामने अन्धकार छा गया। ऐसा मालूम हुआ कि अब वह मूर्च्छित होकर गिर पडेगा। समीप ही सडक के पास एक मकान का सुन्दर बरामदा था। वह उसी बरामदे में जा बैठा, परन्तु देर तक बैठा नहीं रह सका। बेहोश होकर वहाँ लेट गया।

इसके कई मिनट बाद मकान के भीतर से एक पन्द्रह सोलह वर्ष का और दूसरा अट्ठारह वर्ष का लडका काला कोट पहिने, हाथ में बाइसिकिल लिये, बाहर आया। मोती को उस अवस्था में पडा देख बाइसिकिल छोड दोनों उसके पास गये।

देखा कि आगन्तुक की आँखें बन्द हैं, साँस चल रही है पर है वह चैतन्यरहित । इस असमय में एक सन्यासी का इस तरह सडक के पास बरामदे मे आकर सो रहना उन दोनो लडको को आश्चर्य कारक जान पडा । वे दोनों शङ्कित भाव से एक दूसरे का मुँह देखने लगे । एक ने कहा—"अभी तक इसकी बेहोशी नहीं गई है ।" दूसरे लड़के ने कहा—"शायद इसे कोई बीमारी हो गई है । बाबूजी को खबर दो ।" एक आदमी रास्ते से जा रहा था। उसने उच्च स्वर से हँस कर कहा—"गाँजे की मात्रा अधिक हो गई है, उसीकी लहर है ।" किन्तु उस बात पर ध्यान न देकर एक लडका अपने बाप को बुला लाया ।

उसने आकर मोती की नाडी देखी । छाती पर हाथ रक्खा। फिर कहा—नहीं, कोई बीमारी नहीं है किन्तु नाडी बहुत ही चीण है । मालूम होता है, भूख से इसकी ऐसी दशा हुई है । फिर वह मोतीलाल की छाती पर हाथ रख कर परीचा करने लगा । इस बार मोती ने आँख खोल कर उसकी ओर देखा ।

गृहपति रामलाल ने पूछा—तुम कौन हो ?

चीण स्वर मे उत्तर मिला—सन्यासी ।

"तुम्हें क्या हुआ है ?"

कुछ उत्तर नहीं मिला । बाबू ने फिर पूछा—तुम कुछ खाओगे ?

उसी खिन्न स्वर में उत्तर मिला—हाँ ।

' कितने दिन से कुछ नहीं खाया है ?"

"दो दिन से।"

"समझ गया" कह कर रामलाल दोनो पुत्रों की सहायता से मोती को उठा कर कमरे के भीतर ले गये। भीतर दवाओं से सजी हुई कई आलमारियाँ थीं। यह छोटा सा औषधालय था। उक्त बाबू यहाँ के डाक्टर हैं।

मोती को एक आराम-कुरसी पर लिटा कर उन्होंने पौष्टिक दवा में थोडा सा गरम पानी मिला कर उसे पाँच छ चम्मच पिला दिया। मोती असमर्थता के कारण कुरसी पर लेटा हुआ था। अब इस पथ्य-सेवन से दो मिनट बाद वह कुछ सीधा होकर बैठ गया। डाक्टर ने फिर नाडी देख कर पूछा—कैसे हो?

"अच्छा हूँ।"

बाबू ने पूछा—थोडा दूध पिओगे?

"पिऊँगा।"

आध पाव दूध गरम करके लाने के लिए नौकर को हुक्म देकर डाक्टर बाबू ने मोती से "तब तक यह थोडी सी बची हुई दवा पी डालो" कहकर बाकी दवा उसको पिला दी।

डाक्टर ने पूछा—बैठने मे तकलीफ मालूम होती है? लेटोगे?

"जी हाँ, लेटूँगा।"

"आओ" कह कर डाक्टर बाबू उसका हाथ पकड कर

कहा था—"गृहस्थ का मन क्या स्थिर रहता है?" किन्तु गृहत्यागी मोतीलाल क्या एक दिन भी उसकी भाँति उपासना कर सका है? सोचा, वह सज्जन यदि अपनी पत्नी के प्रति इतना गहरा प्रेम नहीं रखता तो क्या वह इस तरह एकाग्र मन से ईश्वर का स्मरण कर सकता? वह तो नास्तिक था ही, प्रेम ने उसके हृदय को आस्तिकता की ओर झुका कर उसे भगवद्भक्ति का पात्र बना दिया है। इस विचार के साथ साथ उस रात का सपना—सुधा उसका हाथ पकड़ कर कह रही है—"आओ" भी याद आया। बलदेव बाबू के घर, पीछे के बरामदे में बैठ कर, तीन बजे रात से सूर्योदय तक भगवान् की प्रार्थना की थी—इसके पूर्व तो एकाग्रभाव से मोतीलाल ने कभी भगवान् को इस तरह नहीं पुकारा था। इन बातों की आलोचना करके मोतीलाल ने निश्चय किया—संसार-बन्धन में रह कर ही ईश्वर का सामीप्य प्राप्त हो सकता है। फिर उसके मन में आया कि ईश्वर की इस प्रकार की उपासना सकाम उपासना है। यह तो श्रेष्ठ उपासना नहीं है। फिर सोचा, बिलकुल उपासना न करने की अपेक्षा सकाम उपासना भी अच्छी ही है। जिस प्रदेश की नदी में गँदला जल बह रहा है वह प्रदेश मरुभूमि से तो अवश्य ही अच्छा है। इसलिए मोतीलाल ने स्थिर किया कि सन्यास धारण करने का संकल्प त्याग कर मैं कल घर को लौट जाऊँगा। किन्तु जाऊँगा कैसे? राह खर्च तो पास है ही नहीं।

अब डिसपेन्सरी की घड़ी में एक बजा। मोतीलाल ने

सोचा कि राह-खर्च नहीं है तो क्या हुआ, ईश्वर कोई उपाय कर ही देगा। इस तरह सोचते सोचते वह सो गया।

दूसरे दिन सबेरे मोतीलाल उठ कर औषधालय में बैठा था। अकस्मात् वहाँ एक सहपाठी से उसकी भेंट हो गई। यह सहपाठी सारनाथ की सैर करने आया था। उससे कुछ रुपया उधार लेकर गृहस्थोपयोगी पोशाक से फिर सुसज्जित हो, साँझ की गाड़ी से, मोतीलाल कमलपुर को रवाना हुआ।

अड़तालीसवाँ परिच्छेद

आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है। आज रौनकलाल को कमलपुर जाना होगा और रात में बक्स खोल कर बसन्ती को दिखलाना होगा कि काली माई की कृपा से रुपया चौगुना हो गया।

सवेरे उठ कर रौनक ने दफ़्तर के काम में मन लगाया। कुछ देर बाद चौकीदार ने आकर उसके हाथ में एक चिट्ठी दी। चिट्ठी खोल कर रौनक ने देखा, दारोगा ने उसे बुला भेजा है—जरूरी काम है।

रौनक तुरन्त दफ्तर बन्द करके घोड़े पर सवार हो थाने को गया। दारोगा शहादतहुसेन चौकी पर बैठा, टीन का बक्स आगे रक्खे, कागज पत्तर देखते देखते हुक्का पीरहा था। रौनक को देख कर बोला—आइए मुन्शीजी, बैठिए, बन्दगी।

रौनक ने बैठ कर कहा—बेमौके क्यो याद किया गया हूँ?

"कहता हूँ—तम्बाकू पिओ।" कह कर दारोगा एक रद्दी लिफाफ़ा और चिलम रौनक के हाथ में देकर फिर कागज पत्तर देखने लगा।

लिफ़ाफे के कागज मे चिलम लपेट कर रौनक तम्बाकू पीने लगा।

पाँच मिनट के बाद दारोगा ने कागज़ की ओर से दृष्टि

हटा कर सिर उठाया। रौनक ने हुक्के पर चिलम रखदी। दारोगा ने कहा—परसों हरिदास के मुकदमे की तारीख है।

रौनक—गवाह तो सब ठीक हैं?

"ठीक की क्या बात पूछते हो? मुद्दई का ही पता नहीं है।"

रौनक़ अचम्भे के साथ बोला—पता नहीं है! कैसे?

"गवाहों को सिखा पढ़ा कर तो मैं ने सब ठीक कर लिया है। कल धनीराम को बुलाने के लिए दो दफे आदमी भेजा था। आदमी ने लौट कर कहा—वह घर पर नहीं है। कहाँ गया है यह भी घर का कोई शख्स नहीं कह सकता। आज तड़के चौकीदार को फिर भेजा था, तुम्हारे नाम की चिट्ठी भी उसी को दी थी। कह दिया था, धनीराम से भेंट न हो तो यह चिट्ठी मुंशीजी को देना। वह पैदल आ रहा है, इसी से अभी तक नहीं पहुँचा। तुमको चिट्ठी दी है इससे जान पड़ता है आज भी धनीराम से भेंट नहीं हुई। साला भाग तो नहीं गया।"

रौनक ने उत्तेजित स्वर में कहा—भेंट नहीं हुई! यह आप क्या कहते हैं। आज तड़के मैंने अपनी आँखों उसे तालाब के घाट पर देखा है। साला जरूर ही घर में छिपा है। हरामजादा कहीं जाने का बहाना करके घर में ही छिपा बैठा है।

दारोगा—यही तो तरद्दुद की बात है।

"क्यों, तरद्दुद क्या! मेरे साथ दो कान्सटेबल दीजिए। मैं अभी जा कर उसे पकड़वा देता हूँ।"

"मान लिया कि आप पकड़वा देंगे। लेकिन विगड़े हुए मुद्दई को लेकर क्या मुकद्दमा चल सकता है?"

"हरिदास ने उसे अपनी मुट्ठी में तो नहीं कर लिया है!"

"दो चार कश तम्बाकू पीकर दारोगा ने कहा—नहीं, ऐसा तो मालूम नहीं होता। जिस दिन मैंने खानातलाशी ली थी उसी दिन से वह कुछ बेदिल सा मालूम होता है। उस दिन जब वे बर्तन पयाल के भीतर से निकले तब मैंने हरिदास को कुछ डाँट डपट दिखाई थी, और कुछ नहीं सिर्फ गाली देकर एक थप्पड़ मारा था। इतने ही में वह बोल उठा—दारोगा साहब इसे छोड़ दीजिए, ये बर्तन मेरे नहीं है। मैंने २११ दफा की धमकी दी और कहा, झूठा मुकद्दमा चलाने के कसूर में तुम्हीं को जेल भिजवा दूँगा। तब साला रास्ते पर आया। इसी से कहता हूँ कि अदालत में जाकर वह मूजी कहीं सब बात विगाड़ न दे।"

रौनक—विगाड़ देगा! उसकी मजाल क्या। अगर ऐसा करेगा तो जूते से पीट कर उसकी खाल खींच लूँगा।

"यह कुछ करना न होगा। उसी घड़ी उस शैतान पर अदालत से, झूठी नालिश दायर करने के अपराध में, २११ दफा की रू से कार्रवाई की जायगी। अभी उससे मीठी मीठी बातें करके किसी तरह काम निकालना ही अच्छा है।"

रौनक कुछ देर तक चुप रहकर बोला—तो इजाजत दीजिए, अब जाता हूँ। मैं उसे अच्छी तरह समझा बुझा कर अभी भेजे देता हूँ।

देवीपुर आकर रौनकलाल स्वयं धनीराम के मकान पर गया। बहुत पुकारने पर धनीराम का बेटा बाहर आकर बोला—दादा आज सवेरे ही उठकर कहीं गये हैं। कहाँ गये हैं, और कब आवेंगे, यह कुछ नहीं कह गये।

रौनक ने सोचा, धनीराम अवश्य ही घर के भीतर कहीं छिपा है। इसीसे वह आँगन में जाकर उच्च स्वर से कहने लगा—

"धनीराम घर पर नहीं है तो क्या, उसकी जोरू तो है, उसीसे कहता हूँ। सुनो, धनीराम का ऐसे वक्त में घर से जाना बड़ा खराब हुआ है। नरसों मुक़द्दमे की तारीख है। आजमगढ़ जाना जरूरी है। धनीराम मुद्दई है। मुझसे पूछे बिना आज क्यों चला गया? कब सीखे पढ़ेगा? मुक़द्दमे की बहुत बातें उसको समझानी हैं। वकील की जिरह में बड़े बड़े होशियार गवाह—अच्छी तरह तालीम न पाने पर—अदालत में ठहरते ही नहीं। कुछ का कुछ कह देते हैं। धनीराम किस लेखे में है। कहाँ गया, कब आवेगा, यह भी नहीं कह गया। ऐसा मूर्ख तो देखा नहीं। कल खा पीकर बारह या एक बजे यहाँ से चलेगा तभी तो ठीक समय पर आजमगढ़ पहुँचेगा। तारीख पर हाजिर न होने से हाकिम उसी घड़ी उसके नाम से वारंट जारी करने का हुक्म देगा। सदर से सिपाही

जमादार आकर हाथ में हथकडी डाल मारते पीटते यहाँ से घसीट कर ले जायँगे। सरकार के हुक्म को न मानना क्या सहज बात है? वारट जारी होने पर भी अगर अदालत में हाजिर न होगा तो पुलिस हल, बैल, थाली, लोटा सब जब्त कर लेगी और धनीराम के बदले तुम्हीं को इजहार देना होगा। कहीं गया है इसकी चिन्ता नहीं, लेकिन परसों शाम तक उसे आजमगढ पहुँच जाना चाहिए। अगर वह अपना पता बता गया हो तो झट आदमी भेजकर उसे बुलालो। गवाही देने में उसे डर किस बात का है? क्या ससार में कभी कोई गवाही नहीं देता? वही पहले पहल देगा? जज मजिस्टर बाघ नहीं है जो उसे निगल जायगा। जो हो, घर आते ही उसको धूलभरे पैरों मेरे पास भेज देना, नहीं तो तुम लोगो पर बडी आफत आयगी। भारी मुसीबत मे फँसोगी।"

यह कह कर रौनक दफ्तर में लौट आया। उसके मन मे विश्वास था कि धनीराम ने छिपे छिपे मेरी सब बातें सुनी होंगी। डर से आप ही कुछ देर बाद दफ्तर में आवेगा और कहेगा, मैं अभी अमुक स्थान से घर आया हूँ।

भोजन करके रौनक ने कुछ देर आराम किया, किन्तु धनीराम के आने की प्रतीक्षा मे उसे नींद न आई। दिन को पिछले पहर बैलगाडी में बैठकर वह कमलपुर को रवाना हुआ। दफ्तर में कह गया—धनीराम आवे तो तुरत एक आदमी के साथ उसे दारोगा के पास भेज देना।

साँझ होने के पहले ही,रौनक़लाल की गाड़ी कमलपुर पहुँची । तालाब के कोने पर पहुँचते ही रौनक ने देखा—बसन्ती पानी का घड़ा बगल में दबाये आ रही है । आँखों ही आँखों में दोनों की बातें हो गईं ।

घर के भीतर जाकर रौनक ने गाड़ीवान से घर, आँगन बुहरवा कर साफ करवा लिया। तालाब से दो घड़े पानी मँगवा कर रख लिया । गाड़ीवान ने तब जलपान के लिए पैसा लेकर गाड़ी वहीं रखदी । दोनों बैलों की रास अपने हाथ मे ले किसी रिश्तेदार के घर वह रात को मेहमानी करने गया । रौनक़ ने कह दिया; कल सबेरे ही फिर देवीपुर जाना होगा ।

रात के नौ बज गये । देवीपुर से पूरी तरकारी आदि खाने की जो सामग्री साथ रख ली थी उसी से रात की क्षुधा शान्त करके रौनक पान चबाता हुआ हाथ में हुक्का लेकर बैठा । थोड़ी ही देर में सदर दरवाजे की जजीर झनझना उठी ।

रौनक़ ने जाकर द्वार खोल दिया । बोला—बसन्ती, आओ।

भीतर आकर दर्वाजा बन्द करके बसन्ती बोली—आप की कैसी बुद्धि है । दर्वाजा खुला रखना चाहिए था । जजीर खट-खटानी पड़ी । अगर कोई सुन लेता तो ?

रौनक़—क्या मैं जानता था कि तुम इतनी सवेरे आओगी । मैं सोचता था कि तुम दस बजे के पहले न आसकोगी । आज इतनी जल्दी तुम छुट्टी कैसे पा गईं ?

उसारे में आकर बसन्ती बोली—मुझे तो आजकल आठों पहर छुट्टी ही छुट्टी रहती है। मालकिन यहाँ नहीं हैं।

"कहाँ गई हैं?"

"तीरथ करने।"

"कब?"

"कल रात को। क्या आपने नहीं सुना? बाबू बहुत बीमार हैं। प्रयागराज से तार आया था। बहूजी को साथ ले कर छोटे बाबू इलाहाबाद गये हैं।"

"कुछ सुना है, बड़े बाबू को किस तरह की बीमारी हुई है?"

"ज्वर आता है।"

"छोटे बाबू कहीं गये थे न। वे कब आगये?"

"कल सवेरे ही आये थे। दोपहर को तार आया। इससे रात ही को फिर रवाना हो गये।"

"यह तो बड़े शोच की बात सुनी है।"

"शोच की तो बात ही है। भगवान् की कृपा से बाबू साहब शीघ्र अच्छे होकर देश लौट आवें। कल से घर भर के लोग मारे शोच के छटपटा रहे हैं। सभी बेचैन हैं।"

बात सचमुच बड़ी शोचनीय है।—कह कर रौनक कुछ देर तक नीचा सिर करके चुप हो रहा। उसकी चिन्ता बसन्ती की चिन्ता से और ही तरह की थी। उसे भय हो रहा है कि उसने मोती बाबू के खिलाफ़ जो, झूठे मुक़द्दमे की, बात बना कर

बाबू से कही है वह कहीं खुल न जाय। भगवान् जो करेंगे, वही होगा। अब तक़दीर जिस रास्ते ले चले।

कुछ देर तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। फिर रौनक ने कहा—बसन्तो, तुम कपड़े बदल कर शुद्ध हो आई हो?

"हाँ। क्या अभी सन्दूक खोला जायगा?"

"बैठो, दस बजने दो। कुछ गहरी रात हुए बिना कालीजी की योगिनियाँ बाहर नहीं निकलतीं। आओ, तब तक हम लोग समय नष्ट न कर के थोड़ा थोड़ा चरणामृत पान करें। अगर आज काली माई ने मेरे मुँह की लाज रखली तो और क्या चाहिए? ब्याह कर के हम तुम दोनों रुपयों की गद्दी पर बैठे रहेंगे। मैं कपड़े बदल कर चरणामृत लिये आता हूँ।"

सोने की कोठरी में जाकर रौनक ने वह लाल धोती पहन ली। इसके बाद वह एक बोतल में से आधा,तरल पदार्थ ताँबे के बर्तन में ढाल कर उसमें कनेर का फूल डाल बाहर आया। कुशासन पर बैठ कर उसने कहा—बसन्तो जाओ तो, घर के भीतर नहाने की चौकी पर से पत्थर के दो कटोरे लेआओ।

बसन्तो ने एक कूँडी आप ली और एक रौनक को देकर कहा—यह चरणामृत कहाँ पाया?

ताम्रपात्र की ओर भक्तिपूर्ण दृष्टि से देख कर रौनक ने कहा—"यह बहुत दूर से आया है। कामरूप कामाख्या से एक साधु लाया था। उसी ने मुझको थोड़ा सा दिया है।" अब

रौनक ने अपनी कूँडी भर ली और वसन्ती की कूँडी आधी भर दी ।

अपनी कूँडी खाली करके रौनक ने कहा—जय काली मैया कहकर तुम भी पी डालो ।

वसन्ती कूँडी को मुँह के पास ले जाकर बोली—ओ मैया ! बदबू आती है ।

रौनक—चुप चुप, पगली ! कोई ऐसा कहता है । दुर्गन्ध नहीं—सुगन्ध, सुगन्ध । कामाख्या देवी की प्रतिमा के नीचे एक कुण्ड है—उसी कुण्ड मे चरणामृत भरा रहता है । उस कुण्ड में ढेरों फूल और बेलपत्र गिरते रहते हैं । फूल और बेलपत्रों के सडने से इसमें ऐसी सुगन्ध आती है । बाँये हाथ से नाक मूँद कर दहने हाथ से कूँडी पकड गट से पी जाओ ।

वसन्ती ने रौनक के उपदेशानुसार पीकर कूँडी नीचे रख दी ।

वह नाक मुँह सिकोड कर बोली—माई री माई ! कैसी सुगन्ध है ! छि छि , राम राम !

रौनक ने फिर अपनी कूँडी में सुरा ढाल कर कहा—यह क्या ? "छि छि राम राम" क्या कहती हो ? जानती हो किसका चरणामृत है ? साक्षात् कामरूप कामाख्या देवी का । तुम ने छि छि' कहा है इससे जीभ गल कर गिर पडेगी । इनसे बढ कर साक्षात् काली इस कलि में और कहाँ हैं ? यह कह कर वह एकही दम में कूँडी का चरणामृत सोख गया । इसके बाद धोती के अग्रभाग को गले में लपेट दोनो हाथ जोडकर प्रणाम करते

करते बोला—हे मा, कामरूप कामाख्या भगवती! वसन्ती के अपराध पर ध्यान न देना। यह बडी भोली भाली है, अज्ञान है। इसकी बात को ग्रहण न करना। माफ करो मा। दुहाई मा।

रौनक़ का यह आचरण देख कर वसन्ती कुछ भय और कुछ आश्चर्य से हतज्ञान हो बैठी रही।

कुछ देर के बाद रौनक़ ने अपनी कूँडी फिर चरणामृत से भरी और वसन्ती की कूँडी को भी बारह आने भर दिया।

वसन्ती ने कहा—अब नहीं, मैं अब न पी सकूँगी।

रौनक—पीलो, नहीं पिओगी तो अपराध होगा। पहली बार पीने में तुमने नाक-भौ सिकोडी है, छि छि कहा है, इससे तुमको बडा भारी पाप हुआ है। क्या जान रुपया चौगुना होने के बदले कहीं बिलकुल न उड जाय। फिर तो ब्याह भी मजे में होगा और हम लोग बडे आदमी भी खूब बनेंगे। पिओ, पीकर कहो—अहा! मैया का चरणामृत पीने से हृदय शीतल हुआ।

तब वसन्ती आँख मूँद कर किसी तरह उसे घोंट कर बोली—आहा! मैया का चरणामृत पीने से हृदय शीतल हुआ। अच्छा कहिए, कुछ तेज है न?

रौनक़ ने अपनी कूँडी खाली करके कहा—हाँ है।

"इतना तेज क्यों है?"

रौनक़ ने हँसकर कहा—मा कामाख्या का चरणामृत तेज न होगा तो क्या आदमी के हाथ से बनाई गई काली का

चरणामृत तेज होगा ? जिसे तुम तेज कहती हो वह असल में मा काली की शक्ति है—ब्रह्म-तेज है।

बसन्ती—खूब तेज है। मेरा सिर घूमने लगा।

"घूमेगा नहीं ? कामरूप कामाख्या देवी सब देवताओं में प्रत्यक्ष देवता हैं। उनके बाद कालीघाट, कलकत्ते, की काली हैं। क्या तुम कभी कालीघाट गई हो ? जो लोग पुरी जाते हैं वे रास्ते में काली माई का दर्शन भी करते जाते हैं।"

"नहीं।" बसन्ती की दोनों आँखें चढ़ गईं। साँस प्रबल हो उठी।

रौनक ने बड़े भाव से कहा—अच्छा, पहले हमारा व्याह हो जाय तब तुम को कालीघाट की काली और कामाख्या भगवती, सब का दर्शन करा लाऊँगा।

बसन्ती—हमारा-व्या-ह-क-ब-होगा ?

बसन्ती की जीभ लड़खड़ाते देखकर रौनक समझ गया कि दवा असर कर गई। वह मुस्कुराकर झट बोला—यदि भगवती की दया हुई तो व्याह हुआ ही समझो। उसकी चिन्ता ही क्या है। अगर आज मेरे वह पचास रुपये दो सौ हो गये तो एक महीने के बाद ही व्याह हो जायगा। आज अगहन सुदी नवमी है। यह महीना एक तरह से बीत ही गया। पूस में हिन्दुओं का व्याह हो नहीं सकता। माघ आते ही यह शुभ कर्म हो जायगा।

वसन्ती—फ-फ-फिर क-कलकत्ते जा-जा ना-ना हो-होगा ? का-काली घा-घाट की क-काली जी का दर्शन मुझको क-कराओगे ?

"हाँ, दर्शन जरूर कराऊँगा। कालीजी दिखाऊँगा, चिड़ियाखाना दिखाऊँगा, जादूघर दिखाऊँगा, एक दिन थियेटर दिखलाने को भी लेजाऊँगा।" यह कह कर रौनक ने फिर अपने लिए एक प्याला ढाला। यह देख कर वसन्ती ने कहा—थो-थोड़ा मुझे भी, मुझे भी दो।

रौनक—नहीं, तुमको अब पीने की जरूरत नहीं है। तुम औरत हो। अधिक ब्रह्मतेज सहन न कर सकोगी।

वसन्ती—थोड़ा-थो-ड़ा।

रौनक ने हँसकर उसकी कूँडी में थोड़ा सा ढाल दिया। वसन्ती उसे पी कर ऊपर मुँह करके बोली—माई का च-चरणामृत पी कर हृदय-हृदय-शीतल हु-हुआ।

• अब रौनक अपने व्याह और भावी सुख-सम्भोग का चित्र बड़ी खूबी से खींचने लगा।—अब नौकरी न करनी पड़ेगी। मन्त्रबल से रुपया बढ़ा बढ़ा कर बड़े सुख से समय बितावेंगे। आजमगढ़ और काशी में मकान बनवावेंगे। रौनक ने कहा—दोमजिला। वसन्ती बोली—तेमजिला न होगा तो मैं न मानूँगी। इसी तरह बात चीत होते होते दस बज गये।

रौनक ने कहा—अब देरी करने का काम नहीं। चौका लगा कर आसन बिछाओ और धूप जला दो।

वसन्ती बोली—ठहरो, ठहरो। अभी मत बन्द करो। अच्छा, एक बात पूछती हूँ। एक नोट रख दूँ तो चार नोट होंगे न ?

रौनक मन ही मन खूब प्रसन्न हो कर बोला—जरूर होंगे। माँ काली के हुक्म से क्या नहीं हो सकता। नोट की क्या बात कहती हो, अगर एक फूटा खपरा रख दो तो वैसे ही चार हो जायँगे।

तब वसन्ती ने आँचल की गिरह खोल कर कुछ नोट रौनक के हाथ में दिये। रौनक ने गिन कर देखा तो दस दस रुपये के दस नोट थे। वसन्ती ने कहा—डेढ सौ और एक सौ—ढाई सौ हुए। मेरे एक हजार रुपये तो बेखटके होंगे।

"होंगे नहीं तो जायँगे कहाँ ? अब बक्स बन्द करता हूँ।"

"बन्द कर दो।"

"देखो, खूब सोच विचार लो। और कुछ रखना हो तो रक्खो।"

"अब तो यहाँ कुछ नहीं है।"

"गिन्नी वगैरह ?"

"नहीं। फिर दूसरी बार देखा जायगा।"

रौनक ने बक्स बन्द करके पूर्वोक्त रीति से सब काम किया। जब सब हो चुका तब वसन्ती ने कहा—रात बहुत हुई। अब जाती हूँ। अब फिर कब आओगे ?

"एक महीने के बाद फिर कृष्ण चतुर्दशी को रात को तो आना ही होगा। बीच में भी दो एक बार आ सकता हूँ।"

"देखो अच्छी तरह मन्त्र जपना। मुझे हजार रुपये मिलने चाहिएँ।"—कह कर वसन्ती चली गई।

रौनक़ ने भीतर से द्वार में साँकल दे कर एक कटोरा चरणामृत पान किया। बिछौने पर लेट कर अपने मन में हँसते हँसते बोला—एकदम ढाई सौ रुपया हाथ लगा। रौनक के इन दिनों बृहस्पति की दशा बीत रही है। कोई अच्छा ज्योतिषी मिल जाय तो उससे पूछूँगा कि यह मेरी दशा और कितने दिन रहेगी।

उनचासवाँ परिच्छेद

गोपीकान्त बाबू प्रयागराज पहुँच कर धर्मपालसिंह के ही मकान में ठहरे। शहर के बाहर एक बड़ा सा दोमंजिला मकान है। मकान के चारों ओर, तीन बीघे के घेरे में, नाना प्रकार के फल-फूलों के पेड़ लगे हैं। स्थान अत्यन्त रमणीय है। गोपीकान्त को यह जगह बहुत ही पसन्द हुई।

पहले कई दिन सबेरे और शाम को गोपीकान्त और धर्मपालसिंह, दोनों साथ ही साथ, घूमने जाते थे और दो तीन घण्टे तक इधर उधर घूम फिर कर लौट आते थे। धर्मपालसिंह के अभिमान-रहित सद्व्यवहार से गोपीकान्त अत्यन्त प्रसन्न हुए। पाँच छः दिन के बाद गोपीकान्त ने कहा—चलिए महाशय, आज सबेरे सबेरे घूम कर एक मकान ठीक कर लें।

धर्मपाल—मकान! कैसा मकान?

गोपी बाबू ने हँसकर कहा—आपको और कब तक कष्ट दूँगा!

"मुझे तो कुछ भी कष्ट नहीं। आपके साथ बड़े आनन्द से समय बिता रहा हूँ। यह क्यों नहीं कहते कि यहाँ रहने से आपको तकलीफ होती है?"

"नहीं, मुझे तो कुछ तकलीफ नहीं है।"

"क्या यह बात आप हृदय से कहते हैं, या शिष्टता के

अनुरोध से? देखिए, मैं सच्चे हृदय से कहता हूँ। जो मेरे मन में है वही आप के निकट प्रकट करता हूँ। अगर यहाँ रहने में आप को किसी तरह की असुविधा होती हो तो कृपा करके कहिए—हम उस असुविधा को दूर करने की यथासाध्य चेष्टा करेंगे। यदि हमसे आपके कष्ट का निवारण न हो सकेगा तो हम स्वयं उद्यत होकर आपके लिए अलग एक मकान ठीक कर देंगे।"

गोपीकान्त—नहीं, मैंने हृदय की ही बात आप से कही है। यहाँ मुझे तिल मात्र भी कष्ट नहीं होता। आप लोग सम्बन्धी से भी बढ़कर मेरी खातिर करते हैं। मैं समझता हूँ, मेरे रहने से आप लोगों को अवश्य कुछ कष्ट होता होगा।

धर्मपाल—इसके लिए आप निश्चिन्त रहें। आपसे हम लोगों को कष्ट होने की तो कोई बात ही नहीं बल्कि आपके रहने से मुझे बहुत भरोसा रहता है। मामा ने ठीक ही कहा था, 'विदेश में बाल-बच्चों को लेकर जाता है' यदि मैं बीमार पड़ूँ तो मेरी स्त्री बड़ी मुश्किल में पड़ जायगी।

गोपीकान्त ने हँस कर कहा—इसका मुझे सुभीता है। स्त्री के न रहने से मुश्किल में पड़नेवाला यहाँ कोई नहीं।

धर्मपालसिंह कुछ देर तक गोपी बाबू के मुँह की ओर देख कर बोले—क्या आप स्त्री-हीन हैं?

"नहीं तो।" गोपी बाबू और कुछ न बोले। धर्मपाल ने भी इस विषय में और कुछ न पूछा। इन्होंने इस भाव पर लक्ष्य

किया है कि घर की वात या आत्मीय स्वजनो का प्रसग छिडते ही गोपी वावू चुप हो रहते हैं । इसी कारण, वे इस विषय मे गोपीकान्त से कुछ नही पूछते । वे गोपी वावू को मिर्जापुर के गोपीलाल ही समझते थे । इसके अतिरिक्त गोपी वावू के विषय मे उन्हें और कुछ ज्ञात न था ।

दूसरी जगह असवाव ले जाने का फिर कोई प्रसङ्ग नही उठा । दस दिन वीतने पर ग्यारहवें दिन गोपी वावू को एकाएक ज्वर चढ आया । मामूली वुखार जानकर पहले दिन चिकित्सा आदि की कोई व्यवस्था नहीं की गई ।

दूसरे दिन ज्वर का वेग वहुत वढ गया । स्थानीय डाकृर का इलाज शुरू किया गया । उसने कहा—यह मैलेरिया वुखार के सिवा और कुछ नहीं है ।

इसके दूसरे दिन डाकृर के रोग निर्णय मे भूल निकली । ज्वर विगड गया । गोपी वावू की सज्ञा जाती रही । वे अचेत हो पडे ।

धर्मपाल और उनकी स्त्री दोनो, मिल कर, यथासाध्य रोगी की सेवा करने लगे । डाकृर वावू रोगी की वुरी हालत देख कर डर गये । वोले—लक्षण अच्छे नहीं हैं । इनके घरवालो को आने के लिए तार दे दीजिए ।

धर्मपाल वावू वडी चिन्ता में पडे । उन्हें कुछ भी ज्ञात न था कि रोगी के घरवाले कौन हैं और कहाँ हैं । इस अवस्था में यदि विदेश में रोगी की मृत्यु हो जाय तो वडे ही परिताप का

विषय होगा। वे आशा करने लगे कि यदि रोगी को दिन में एक बार भी होश होजाय तो घरवालो का नाम ठिकाना पूछ लें।

किन्तु ऐसा सुयोग न मिला। साँझ हो चली। रोगी की अवस्था उत्तरोत्तर मन्द ही होती गई। धर्मपालसिंह की स्त्री सावित्री बाल-बच्चों के ही पीछे हैरान रहती थी, रोगी के पास देर तक बैठने के लिए उसे अवसर नहीं मिलता था। अकेले धर्मपालसिंह रोगी की सेवा में बराबर मुस्तैद रहने के कारण क्लान्त होगये। अवस्था देख कर उनकी स्त्री ने कहा—इनका टीन का बक्स खोल कर देखिए न, उसमे चिट्ठी-पत्री जरूर होगी। उसीसे इनके घरवालो का नाम और ठिकाना मिल जायगा।

धर्मपालसिंह ने सकोच के साथ कहा—क्या यह उचित होगा?

सावित्री—इस विपत्ति के समय उचित-अनुचित का इतना सूक्ष्म विचार करने से काम कैसे चलेगा? ईश्वर न करें, यदि कुछ भला-बुरा हुआ तो इनके बन्धु-बान्धव बहुत करके यही कहेंगे कि इन (हम) लोगों ने इनकी यथेष्ट सेवा नहीं की—अच्छी तरह इलाज नहीं कराया, इसीसे ऐसा हुआ। आप बक्स खोल कर देखिए। इसमें कुछ अन्याय न होगा।

तब धर्मपाल ने स्त्री की ही युक्ति ग्रहण की। खोजते खोजते गोपी बाबू के कोट की जेब में बक्स की कुंजी मिल गई। बक्स खोलने पर भीतर पाँच पत्र मिले। घर में यथेष्ट प्रकाश न रहने

के कारण वे उन चिट्ठियो को पढने के लिए बाहर बरामदे में जा बैठे।

उनमें जो चिट्ठी सबसे छोटी जान पडी पहले उसीको खोला। सोचा कि यदि इसीमे प्रयोजनीय बात मिल गई तो दूसरी चिट्ठी खोलने की जरूरत ही क्या है।

यह मिर्जापुर में पाई हुई पहली चिट्ठी है। इसे पढ कर धर्मपाल ने समझा कि यह कमलपुर से आई है, और ये वहाँ के जमींदार हैं। हरिदास थाने में रपट करने गया था—वहाँ कृतकार्य न होने पर आजमगढ में मैजिस्ट्रेट के पास नालिश करने गया है। इससे ज्ञात हुआ कि कमलपुर आजमगढ जिले मे है। स्त्री के ही सम्बन्ध का कोई मुकदमा है। "आजमगढ से वारट जारी होने की सम्भावना है—इसलिए अभी हुजूर को देश में आने की आवश्यकता नहीं।" सभव है, इसी वारट के भय से ये फरार हो।

चिट्ठी के नीचे लिखा है—सेवक रौनकलाल। हरिदास मुद्दई है। कौन हरिदास? मेरी रैयत हलीमपुर का वही हरिदास तो नहीं? वह भी तो आजमगढ जिले में अपने मामा के घर रहता है। रौनकलाल!—वही जालिया रौनकलाल तो नहीं?

धर्मपाल ने कुछ निश्चय न कर सकने पर एक और चिट्ठी खोली। इसमें पुलिस के द्वारा हरिदास के गिरफ्तार होने का हाल रौनकलाल के हाथ का लिखा है। इस पत्र को पढ कर

धर्मपालसिंह समझ गये कि रैनकलाल ने षड्यन्त्र करके, पुलिस को घूस दे, झूठा मुकदमा खड़ा कर हरिदास का चालान करवाया है। यह वही हरिदास है और रैनकलाल भी वही है—उनके मन में यह धारणा पक्की हो गई। यह बात भी याद आ गई कि हरिदास ने कहा था कि 'मैं लालाजी की जमींदारी में जा बसा हूँ।' पर यह तो खासे वैष्णव हैं, शायद इन्होंने अपना नाम और भेष बदल डाला है। इस पत्र में भी पूरा पता न पाकर इस दफे उन्होंने लम्बी चिट्ठी खोली।

चिट्ठी पढ़ते पढ़ते अँधेरा हो गया। नौकर पास में एक छोटी सी टेबल रख कर उस पर लालटेन रख गया। इस चिट्ठी को दो बार पढ़ कर धर्मपाल बाबू ने सब वृत्तान्त जान लिया। आवश्यक पता भी मिल गया। फिर शेष दोनों पत्र भी पढ़ लिये। रैनकलाल ने झूठे मुकद्दमे में हरिदास को फँसाया है, यह जान कर क्रोध से उनका जी जल उठा। रैनकू ने वैर की कसर निकालने ही के अभिप्राय से यह काम किया है, इसमें कुछ भी सन्देह न रहा। धर्मपाल ने सोचा, वह गरीब द्रव्याभाव से अपने मुकद्दमे की पैरवी भी अच्छी तरह नहीं कर सकेगा। निर्दोष होने पर भी बेचारा कैद हो जायगा। उसके उद्धार का उपाय धर्मपाल बाबू मन ही मन सोचने लगे।

रैनकलाल की आखिरी चिट्ठी पढ़कर उन्होंने जाना कि हरिदास के मुकद्दमे की तारीख पुस बदी २ मुकर्रर हुई है। आज अगहन सुदी १४ है। इसके भीतर ही कोई उपाय करेंगे—

यह निश्चय करके वे भीतर गये और तुरन्त मोतीलाल के नाम से अर्जेन्ट तार दिया—

"आप के भाई सख्त बीमार हैं, शीघ्र आइए।

धर्मपालसिंह

लाल कोठी, इलाहाबाद।"

    

दो दिन बाद साँझ होने के कुछ पहले मोतीलाल अपनी भावज के साथ इलाहाबाद स्टेशन पर रेलगाडी से उतरे। दोनो दिन भर के भूखे थे। उस पर घोर दुश्चिन्ता अलग सताये हुए थी। दोनो के मुँह सूख गये हैं। साथ में एक नौकर और नौकरनी है। कुली पर असबाब लादकर फाटक के बाहर आतेही पण्डो ने उन्हे चारो ओर से घेर लिया। गाँव, नाम, जिला, जाति, दादा-परदादा का नाम इत्यादि दर्जनों प्रश्न होने लगे। पण्डे का नाम पूछा जाने लगा। बड़ी मुशकिल से मोती-लाल ने उन लोगो से अपना पिण्ड छुडाकर घोड़ागाडी की और गाडीवान से कहा लाल कोठी चलो—

गाडी चलने पर मनोरमा ने कहा —"छोटे बाबू।" इसके आगे वह कुछ न बोल सकी। उसका गला भर आया।

"क्या है भाभी ?"

"तार में क्या लिखा था ?"

मनोरमा इसके पहले भी यही बात दो तीन बार पूछ चुकी है। मोतीलाल ने उत्तर भी दिया है। और समय होता तो

शायद मोती इससे नाराज हो उठता किन्तु इस समय की अवस्था को समझ कर उसने फिर स्नेह-भरे स्वर से तार का आशय कह सुनाया ।

मनोरमा ने कहा—कैसी बीमारी है, कुछ समझ मे नहीं आया । आप क्या अनुमान करते हैं?

"मैं कैसे कहूँ । अब तो अधिक विलम्ब नहीं है—अभी मालूम हो जायगा ।"

दो मिनट बाद मनोरमा रोकर बोली—छोटे बाबू, उन्हे देख तो सकूँगी?

मोती ने कहा—देखे ईश्वर क्या करते हैं । वे जो करेंगे वही होगा ।

मनोरमा काँपते हुए करुणकण्ठ से बोली—मैं रास्ते भर सत्यनारायणजी से प्रार्थना करती आई हूँ, रास्ते भर गोहराती आई हूँ । क्या वे मेरे मुँह का पानी न रक्खेंगे!

मोतीलाल के नेत्रों से दो बूँद आँसू टपक पड़े । वह भी एकाग्र मन से भगवान् के चरणों मे इसलिए प्रार्थना करने लगा जिसमे भाई को अच्छी हालत में देखे ।

बीस बाईस मिनट के बाद गाडी एकाएक फाटक पर जा खडी हुई । मोतीलाल ने झाँक कर देखा कि बागीचे के बीच मे एक लाल रङ्ग की कोठी है । गाडीवान ने दरवाजा खोल कर कहा—बाबू, यही लाल कोठी है ।

गाडी से उतर, फाटक खोल कर, मोतीलाल भीतर गया। सामने के बरामदे में एक नौकर बत्ती जला रहा था। उससे पूछा—बाबू धर्मपालसिंह यहीं रहते हैं ?

यह सुनकर धर्मपाल बाबू ने कमरे से निकल कर पूछा—आप कहाँ से आ रहे हैं ?

"कमलपुर से। मेरा नाम मोतीलाल है।"

"अच्छा! आइए मोती बाबू। मैंने ही आपको तार दिया था।"

"भैया कैसे हैं ?"

"और दिन से आज कुछ अच्छे हैं।"

"क्या शिकायत है ?"

"ज्वर आता है। गाडी में और कौन है ?"

"मेरी भाभी।"

धर्मपाल—अरे बैजू, गाडीवान से कह दे कि भीतर ला कर अन्दर के दरवाजे पर गाडी लगावे।

बैजू कहने गया। पीछे पीछे मोतीलाल ने भी जाकर अपन भाभी से कहा—भैया आज कुछ अच्छे हैं। कोई डर नहीं।

लौट कर मोतीलाल ने पूछा—भैया कहाँ हैं ?

"आइए"—कह कर धर्मपाल मोतीलाल को एक कमरे के भीतर ले गये। देखा तो गोपी बाबू सोये हैं। चारपाई के पास ही कुरसी पर मोतीलाल जा बैठा। धर्मपाल बाबू पैरों की

आहट बचा कर बाहर हो गये। उसी थोड़े शब्द से गोपी बाबू आँख खोल कर बोले—कौन है?

"भैया मैं हूँ मोती, अब आप कैसे हैं"—कह कर मोतीलाल खड़ा हो गया। भाई के पैर छू कर उसने प्रणाम किया।

"अच्छा हूँ। और कौन आया है?"

"भाभी आई हैं।"

"कहाँ है?"

इसी समय मनोरमा ने दूसरे द्वार से कमरे में आ कर स्वामी के पैरों पर अपना सिर रक्खा। उसकी आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। मोती बाहर चला गया।

तब मनोरमा चारपाई के नीचे बैठ कर स्वामी के पैरों पर हाथ फेरते फेरते बोली—अब कैसी तबियत है?

"अच्छा हूँ। तुमको देखतेही मेरी आधी बीमारी जाती रही।" गोपी बाबू की आँखों में भी आँसू भर आये।



पचासवाँ परिच्छेद

एक सप्ताह के बाद गोपी बाबू को पथ्य दिया गया। मोती-लाल को घर का कुल भार सौंप कर, उसी दिन, तीन बजे की ट्रेन से धर्मपालसिंह किसी काम से बनारस गये। एक सप्ताह में वे वहाँ से लौटे।

सवेरे चाय पीने के अनन्तर गोपी बाबू और धर्मपालसिंह, सामने के बरामदे में, आरामकुरसी पर बैठे थे। गोपी बाबू हुक्का पी रहे थे और धर्मपालसिंह अपने परोक्ष में आई हुई एक सप्ताह की डाक खोल कर देख रहे थे। मनोरमा के साथ मोती-लाल त्रिवेणी नहाने और वेणीमाधव के दर्शन करने गया था।

धर्मपाल बाबू जब डाक देख चुके तब गोपी बाबू ने कहा—बाबू साहब, मेरी बीमारी के समय आपने जो उपकार किया है उसे मैं इस जन्म में न भूल सकूँगा। आप न रहते तो मैं विदेश में अनाथ की तरह बेमौत की मौत मरजाता।

धर्मपाल बाबू को विनय-सूचक प्रतिवाद करते देख गोपी बाबू ने रोक कर कहा—नहीं, नहीं, आप ऐसा न कहें। आपने जैसी मेरी सेवा-शुश्रूषा की है वैसी मेरा भाई कर सकता या नहीं, इसमें सन्देह है। बहूजी ने जो कुछ किया है उससे यही जान पड़ता है कि वे मेरी पूर्वजन्म की माँ थीं। किन्तु बाबू साहब, एक बात मेरे मन में बहुत खटक रही है। मैंने

आप लोगों को अपना नाम गोपीलाल बतलाया था और मैंने यह कुछ भी जाहिर नहीं किया था कि मैं कौन हूँ, मेरा घर कहाँ है तथा मेरे कहाँ कौन हैं। फिर आपने यह सब कैसे जाना ? जब से मोती आया है तभी से मैं इसी उधेड़-बुन में हूँ। बात खुल जाने की लज्जा से, और एकान्त में बात करने का अवसर न पाने के कारण, मैंने यह बात अब तक आप से न पूछी थी।

धर्मपालसिंह बागीचे की ओर देख कर मुस्कुराने लगे। फिर बोले—गोपी बाबू, इस चर्चा को छेड़ने की इच्छा मुझे भी कई बार हुई थी, किन्तु मैं भी सकोचवश पूछ न सका था। मुझसे एक भारी अपराध हो गया है। उसके लिए मैं आप के निकट क्षमाप्रार्थी हूँ।

गोपीकान्त ने बड़ी उत्सुकता के साथ पूछा—बतलाइए, क्या हुआ है ?

तब धर्मपालसिंह ने गोपी बाबू की उस समय की अचेत अवस्था और अपनी घबराहट का वर्णन करके बतला दिया कि किस तरह, निरुपाय होकर, बक्स से चिट्ठी निकाल कर पढ़ी थी। फिर कहा—उन चिट्ठियों के पढ़ने ही से आप-का असली नाम, पता और आपके भाई का नाम मालूम हो गया, तथा इस बात का भी भेद खुल गया कि आप किस कारण से अपना नाम बदल कर तीर्थाटन करने के बहाने घूमते

फिरते हैं। और यह भी ज्ञात होगया कि आप एक शातिर बदमाश के पञ्जे मे फँस गये हैं।

गोपी बाबू ने पूछा—कैसे ?

"यह जो आपका रौनकलाल है—यह बडा भयानक मनुष्य है। पहले यह मेरे ही यहाँ नौकर था। पता लगाने पर मुझे रत्ती रत्ती हाल मालुम होगया है कि आपके यहाँ यह किस मतलब से नौकरी करने गया है और आपके साथ उसने क्या क्या दगाबाजी की है।

गोपीकान्त आरामकुरसी पर तन कर बैठ गये और दम साध कर बोले—कहिए मामला क्या है ?

धर्मपालसिंह ने रौनकलाल का पूर्व वृत्तान्त और हरिदास पर उसने जो अत्याचार किया था वह सब समाचार सुनाकर कहा—

"आपकी चिट्ठी पढ कर ही मैं समझ गया था कि हरिदास को झूठे मुकदमे मे फँसाने का जो कारण रौनकलाल ने आपको लिखा है वह बिलकुल झूठ है। असल में अपने शत्रु को दबाने के लिए ही उसने यह काम किया है। जिस दिन मैंने मोती बाबू को तार दिया उसके दूसरे ही दिन मैंने आजमगढ़ के एक जमींदार—अपने पुराने मित्र—बाबू महेन्द्रसिंह को रजिस्टरी करके १००) भेज दिये और लिखा कि पूस बदी २ को हरिदास के नाम पर ४११ दफा का मुक़दमा पेश होनेवाला है। वह मेरी पुरानी रिआया है। उसकी तरफ से

किसी अच्छे वकील-मुख्तार को नियुक्त कर देना जिसमें मुक़द्दमा खराब न होने पावे । मैं भी अवकाश पातेही वहाँ पहुँचूँगा । जब उस चिट्ठी का उत्तर मिला तब मोती बाबू यहाँ आचुके थे । उक्त तारीख को मुद्दई हाजिर न हुआ, इससे उस पर वारंट जारी हुआ है । १२ तारीख को मुक़द्दमा फिर पेश होगा । आपको जिस दिन पथ्य दिया गया उस दिन जो मैं काशी गया था, वह आजमगढ जाने ही की नीयत से । पेशी के दिन भी मुकद्दमा पेश नहीं हुआ । धनीराम मुद्दई हाजिर हुआ था किन्तु उस दिन डिपटी मैजिस्ट्रेट की तबीयत ठीक न रहने के कारण मुकद्दमा फिर मुलतवी रहा । अब २२वीं तारीख को मुक़द्दमा फिर पेश होगा । महेन्द्र बाबू के मकान पर मैं चार दिन तक रहा । कुछ स्वय, कुछ गुप्त चरों के द्वारा, बहुत सी बातों का पता लगा लाया हूँ । बखूबी मालूम हो गया है कि सिर्फ रौनकलाल की बदमाशी से आपने नाहक इतनी तकलीफ झेली है—आपके बहुत रुपये भी उसने ठग लिये हैं ।"

गोपी बाबू आश्चर्य से विह्वल होकर बोले—आपको क्या मालूम हुआ है ?

"आपको रौनकलाल ने लिखा था, हरिदास लीलावती को लेकर आजमगढ में आप पर नालिश करने गया था । कुलदीपलाल को मुख्तार करके उसने मुकद्दमा भी दायर किया था, लेकिन वह डिसमिस् हो गया ।"

"हाँ लिखा तो था ।"

"पर कुलदीपलाल नाम का कोई मुख़तार तो आजमगढ में हई नहीं। पहले भी उस नाम का कोई मुख़तार वहाँ न था। न आजमगढ में ही है और न उस जिले की किसी भी तहसील में। गत तीन महीने के भीतर लीलावती नाम की किसी औरत ने, किसी शख्स के ऊपर, नालिश भी दायर नहीं की है। जब नालिश ही नहीं हुई तब फिर डिसमिस काहे की? मेरे मुख़तार ने मैजिस्ट्रेट की नालिशो का रजिस्टर (काज-लिस्ट) अच्छी तरह देख कर यह बात मुझसे कही थी।"

गोपी बाबू ने त्रस्त होकर कहा—मुख़तार से आपने क्या कहा था?

"धर्मपालसिंह ने हँस कर कहा—डरने की कोई बात नहीं। मैंने आपका नाम नहीं लिया था और न यही बताया था कि मुकद्दमा कैसा है। मैंने इस सम्बन्ध मे जो कुछ जाना है वह बडे कौशल से। किसी को भी आपके नाम या घटना का पता नहीं दिया। मुख़तार से सिर्फ इतनाही कहा था—लिस्ट मे जाकर देख तो आइए, इन तीन महीनो के भीतर लीलावती नाम की किसी औरत ने किसी के नाम नालिश दायर की है या नहीं? यदि की है तो वह किस दफा का मुकद्दमा है और उसका फैसला क्या हुआ है?"

यह सुन कर गोपी बाबू आश्वस्त हुए। बोले—और किन किन बातों का पता लगाया है?

"रौनक ने आपसे कहा है कि हरिदास और आपके भाई

मोतीलाल, दोनों मिल कर उस स्त्री को बागीचेवाले मकान से भगा ले गये–यह बात भी सरासर झूठ है। हरिदास ने मेरे पैर छू कर शपथ खाई है, धनीराम से किसी भी रिश्ते में उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। मुक़द्दमे के पूर्व वह उसे जानता भी न था, लीलावती का नाम तक उसने कभी नहीं सुना।"

गोपी बाबू ने कहा—इसीसे तो मैं सोच रहा था कि हरिदास यदि धनीराम का इतना बड़ा मित्र है–नातेदार है–तो फिर धनीराम ही हरिदास के ऊपर झूठा मुकदमा चलाने को राजी क्योंकर हुआ? रौनक ने लिखा है–धनीराम को दो सौ रुपये देकर अपने काबू मे करके थाने में उससे रपट कराई है।

धर्मपालसिंह ने हँस कर कहा–वह दो सौ रुपये रौनक-लाल के ही पेट मे समा गये। इसको घूस दी, उसको घूस दी, कह कर उसने क्या कम रुपया आपका खाया है। हाँ, क्या कह रहा था। हरिदास ने कहा, एक वकील के बेटे बाबू राम-कुमार ने दिवाली के कुछ दिन पूर्व, उसके हाथ मोती बाबू के पास एक चिट्ठी भेजी थी और जबानी भी कहला भेजा था कि काली पूजा के दिन आजमगढ में हिन्दू-सभा होगी, उस दिन मोती बाबू को अवश्य साथ लिये आना। आपके घर आकर उसने वह चिट्ठी मोती बाबू को दी थी–और दूसरे दिन साँझ को फिर चिट्ठी का जवाब लेने गया था। दिवाली के एक दिन पहले वह आजमगढ को रवाना हुआ। उसी दिन साँझ को उसने राम-कुमार बाबू को मोती के हाथ की लिखी चिट्ठी दी। यह बात राम-

कुमारजी ने मुझसे स्वयं कही है। काली-पूजा के दिन सवेरे मोती-लाल वहाँ आ पहुँचे । उनसे मिलने को हरिदास आठ बजे रामकुमार वावू के घर गया था। यह भी रामकुमार वावू ने कहा। रात को आजमगढ से कमलपुर जाकर लीलावती को छुडाना और फिर सवेरे वहीं लौट आना उसके लिए क्या सम्भव है ?

गोपी वावू—बिलकुल असम्भव है।

"और भी देखए-रौनक ने लिखा था, दिवाली के दूसरे दिन बडे तडके उसने थाने में जाकर देखा कि हरिदास उस औरत को लेकर रपट करने के लिए वड के पेड के नीचे खडा है-यह बात भी कल्पित है। क्योंकि रामकुमार वावू ने कहा—और उनके पिता वकील साहब ने भी कहा—दिवाली के बाद भी दो तीन दिन तक हरिदास उन्हीं के मकान पर था।

गोपी वावू हाथ पर गाल रख कर हतबुद्धि हो चार पाँच मिनट तक कुछ न बोले। तब धर्मपालसिंह समाचारपत्र के पन्ने उलटाने लगे। अन्त में गोपीकान्त ने कहा—उस स्त्री का क्या हुआ, इसकी भी कुछ खबर लगी ?

"मैंने एक जासूस को, भेद लेने के लिए, देवीपुर भेजा था। उसने आकर कहा—गाँववाले कहते हैं कि धनीराम की छोटी वहू लीलावती रूठ कर वाप के घर चली गई थी। दो तीन महीने में दिवाली के दिन वहाँ से आई है।"

यह सुनकर गोपी वावू मनही मन वहुत खुश हुए। सोचा—

जो हो, मैं बदनामी से तो बचा । लोगों में मेरी बदनामी नहीं हुई । किन्तु लीलावती किस तरह भागी, और उसने अपनी बात लोगों में जाहिर क्यों नहीं की, यह एक कठिन समस्या मन में उलझ पड़ी । बहुत सोच विचार कर उन्होंने स्थिर किया—अपनी कार्य-सिद्धि के लिए रौनक ही उसे किसी उपाय से निकाल लाया होगा—और अपनी इज्जत बचाने के विचार से उस औरत ने सच्ची बातें लोगों से न कही होंगी ।

कुछ देर बाद गोपी बाबू ने कहा—हरिदास के मुकदमे की क्या हालत है ?

धर्मपाल—हालत कुछ बुरी नहीं है । हरिदास की जिस गोशाला में पयाल के नीचे बर्तन निकले हैं उस घर की दीवार कुछ टूटी सी है । बाहर का कोई आदमी सहज ही वहाँ जा कर बर्तन छिपा सकता है । मैंने वकीलों से राय ली है, उन्होंने कहा है कि इस कारण से हरिदास का बेलाग छूट जाना सम्भव है । फिर भी कौन जानता है क्या हो ? फौजदारी मुकद्दमा है । आखिरी फैसला क्या होगा, यह अभी कुछ नहीं कहा जा सकता । सुना है, धनीराम भी झूठा इजहार देना नहीं चाहता । झूठी गवाही देनेही के डर से वह पहली बार भाग गया था, पेशी पर हाजिर न हुआ था । मेरी राय तो यह है कि उसके ऊपर कुछ दबाव डाल कर उससे सच सच बातें कहलाई जायँ । इससे हरिदास साफ बच जायगा और रौनकलाल फौजदारी सुपुर्द होगा । उसको अपने किये का फल

कुमारजी ने मुझसे स्वय कही है। काली-पूजा के दिन सवेरे मोती-लाल वहाँ आ पहुँचे । उनसे मिलने को हरिदास आठ वजे रामकुमार वावू के घर गया था। यह भी रामकुमार बावू ने कहा। रात को आजमगढ से कमलपुर जाकर लीलावती को छुडाना और फिर सवेरे वहीं लौट आना उसके लिए क्या सम्भव है ?

गोपी वावू—विलकुल असम्भव है।

"और भी देख़ण-रौनक ने लिखा था, दिवाली के दूसरे दिन वडे तडके उसने थाने में जाकर देखा कि हरिदास उस औरत को लेकर रपट करने के लिए वड के पेड के नीचे खडा है—यह वात भी कल्पित है। क्योंकि रामकुमार वावू ने कहा—और उनके पिता वकील साहब ने भी कहा—दिवाली के बाद भी दो तीन दिन तक हरिदास उन्हीं के मकान पर था।

गोपी वावू हाथ पर गाल रख कर हतबुद्धि हो चार पाँच मिनट तक कुछ न बोले। तब धर्मपालसिंह समाचारपत्र के पन्ने उलटाने लगे। अन्त में गोपीकान्त ने कहा—उस स्त्री का क्या हुआ, इसकी भी कुछ खबर लगी ?

"मैंने एक जासूस को, भेद लेने के लिए, देवीपुर भेजा था। उसने आकर कहा—गाँववाले कहते हैं कि धनीराम की छोटी वहू लीलावती रूठ कर वाप के घर चली गई थी। दो तीन महीने में दिवाली के दिन वहाँ से आई है।"

यह सुनकर गोपी वावू मनही मन वहुत खुश हुए। सोचा—

गोपीकान्त मन ही मन सोचने लगे, भाई के ऊपर इतने दिन वृथा ही सन्देह करते रहे । जो हो, मोती इस सन्देह की बात नहीं जान सका, यही कुशल है । बीमारी के समय मोतीलाल की अविश्रान्त सेवा-शुश्रूषा से उस पर गोपीकान्त प्रसन्न हो गये थे । अब इस अनुचित सन्देह की बात का स्मरण करके उनका स्वाभाविक भ्रातृस्नेह एकबारगी उथल पड़ा । अब मोती के साथ व्यवहार में भी वह भाव प्रकट होने लगा। मोतीलाल अपने भाई का बदला हुआ स्वभाव देखकर कुछ अचम्भे में आ गया । मनोरमा भी देवर पर स्वामी के इस भाव-परिवर्तन से मन ही मन बहुत प्रसन्न हुई ।

१९ तारीख को धर्मपालसिंह गोपी बाबू को साथ ले आजमगढ़ गये ।

मिलनाही उचित है। जेल न जायगा तो रौनकलाल न जाने फिर कितने घरो का घालेगा।

"सच बात कहने से धनीराम विपत्ति में तो न फँसेगा?"

"विपत्ति मे तो फँसेगाही, किन्तु हाकिम उसके सत्य-भाषण का खयाल करके, उसका साधारण अपराध समझ, नाम मात्र का दण्ड दे कर छोड देगा।"

"वह सच बोलने को राजी होगा भी?"

"आप उसके मालिक हैं। वह आपकी प्रजा है। अगर आप उसे बुलाकर स्वय समझा देंगे तो वह झूठ क्यों बोलेगा वह तो रौनकलाल के द्वारा झूठ बोलने को विवश किया गया है। इसलिए हम लोगो को ऐसा यत्न करना चाहिए जिसमें हाकिम के नजदीक वह झूठा इजहार न दे।"

"अच्छा, मैं यत्न करूँगा। जिस दिन आप कहें—यहाँ से हम लोग कमलपुर जाकर—"

धर्मपालसिंह—नहीं, कमलपुर जाने से कुछ न होगा मुकद्दमा २२ तारीख को है। हम और आप दोनो जाकर महेन्द्र बाबू के यहाँ ठहरेंगे। तारीख के एक दिन पहले धनीराम को बुलाकर सब ठीक ठाक करना होगा। रात को उसे अपने पास रख कर दूसरे दिन अदालत मे हाजिर करना होगा। पेशी के बहुत पहले ठीक करने से, कितनेही लोग उसे कितनी ही प्रकार की सलाह देंगे—भय दिखावेंगे। इससे काम बिगड़ जायगा।" आखिर आजमगढ़ जाने की ही राय ठीक हुई।

धर्मपालसिंह ने उन्हें रोक कर कहा—आप क्रोध न करें। मैं इसे समझाये देता हूँ। धनीराम, तू हम लोगों से कोई बात क्यों छिपाता है। हम तो सब जान ही चुके हैं। तू ने गाँव के गुमाश्ता, रौनकलाल, की सलाह से ही यह काम किया है। कँसेरे से गवाही दिलाने के लिए तू पहले ही से बर्तनों की मरम्मत करा लाया था। अपने घर में स्वयं सेंध लगाई थी। तू थाने में जाकर दारोगा को बर्तन दे आया था। और दारोगा का एक आदमी, रात को, हरिदास के टूटे घर में वे बर्तन पयाल के नीचे छिपा कर रख आया था। बोल, ये बातें झूठ हैं या सच?

बातें सुन कर धनीराम दङ्ग हो गया। गोपी बाबू के दोनों पैर पकड़ कर कहने लगा—हजूर मैं मूरख ग्वाला हूँ, मेरा कोई अपराध नहीं। जिलेदार रौनकलाल ही सब बखेड़े की जड़ है। जेल का डर दिखला कर उसने मुझसे यह सब काम करवाया है। हजूर, मेरा कोई दोष नहीं। मैं हजूर का पैर छूकर कहता हूँ, मेरा कोई कसूर नहीं। मुझे माफ कीजिए।

गोपी बाबू—अगर तू कल अदालत में सब सच सच कह दे तो तुझको माफ कर सकता हूँ।

धनीराम खड़ा हो गया। हाथ जोड़ कर बोला—अगर अब सच्ची बात कहूँगा तो मेरी क्या दशा होगी?

धर्मपालसिंह—अरे दुष्ट! क्या तुझे पाप पुण्य का विचार नहीं है? बेचारा हरिदास बिलकुल निरपराधी है। किसी का वह कभी बुरा नहीं चेतता। खेती करके अपने बाल-बच्चों को

इक्कावनवाँ परिच्छेद

साँझ का समय है। महेन्द्र बाबू के एक कमरे में गोपी-कान्त और धर्मपालसिंह बैठे हैं। एक आदमी धर्मशाला से धनीराम को बुला लाया।

अपने मालिक को यहाँ बैठा देख धनीराम ने भय से काँप कर उन्हें प्रणाम किया।

धर्मपालसिंह ने गम्भीर भाव से कहा—धनीराम, हम लोग सब जान चुके हैं। बर्तनो की चोरी होने की बात बिलकुल झूठ है।

धनीराम ने एक बार गोपी बाबू के मुँह की ओर और एक बार धर्मपालसिंह के मुँह की ओर चकित दृष्टि से देख कर कहा—हुजूर को नहीं पहचाना!

गोपी बाबू ने कहा—ये गाजीपुर जिले के एक बडे जमींदार और मेरे मित्र हैं। तू ने जिस हरिदास पर झूठा मुकदमा दायर किया है वह पहले इन्हीं की रैयत था। ये उसको छुडाने के लिए आये हैं। तू ने यह झूठा मुकदमा क्यो दायर किया है?

धनीराम ने कुछ ठीक उत्तर न दे सकने पर हाथ जोडकर कहा—झूठा कैसे सरकार!

गोपी बाबू ने क्रोध से कडक कर कहा—हरामजादे, पाजी!—

धर्मपालसिंह ने उन्हें रोक कर कहा—आप क्रोध न करें। मैं इसे समझाये देता हूँ। धनीराम, तू हम लोगों से कोई बात क्यों छिपाता है। हम तो सब जान ही चुके हैं। तू ने गाँव के गुमाश्ता, रौनकलाल, की सलाह से ही यह काम किया है। कसेरे से गवाही दिलाने के लिए तू पहले ही से बर्तनों की मरम्मत करा लाया था। अपने घर में स्वयं सेंध लगाई थी। तू थाने में जाकर दारोगा को बर्तन दे आया था। और दारोगा का एक आदमी, रात को, हरिदास के टूटे घर में वे बर्तन पयाल के नीचे छिपा कर रख आया था। बोल, ये बातें झूठ हैं या सच?

बातें सुन कर धनीराम दङ्ग हो गया। गोपी बाबू के दोनों पैर पकड़ कर कहने लगा—हजूर मैं सूरत खाता हूँ, मेरा कोई अपराध नहीं। जिलेदार रौनकलाल ही सब काम की जड़ है। जेल का डर दिखला कर उसने मुझसे यह सब काम करवाया है। हजूर, मेरा कोई दोष नहीं। मैं हजूर का पैर छूकर कहता हूँ, मेरा कोई कसूर नहीं। मुझे माफ कीजिए।

गोपी बाबू—अगर तू कल अदालत में सब सच सच कह दे तो तुझको माफ कर सकता हूँ।

धनीराम खड़ा हो गया। हाथ जोड़ कर बोला—अगर अब सच्ची बात कहूँगा तो मेरी क्या दशा होगी?

धर्मपालसिंह—अरे दुष्ट! क्या तुझे [illegible] जरा नहीं है? बेचारा हरिदास बिलकुल निरपराध [illegible] वह कभी बुरा नहीं चेतता। खेती

पालता है। कैद होने पर उसे पत्थर तोड़ने पड़ेंगे, चक्की चलानी होगी, कोल्हू मे जुतना पड़ेगा। इस दशा मे वह कितने दिन जियेगा? अगर वह जेल में मर जायगा तो क्या तुझे हत्या न लगेगी? तू अपने बाल-बच्चों के साथ सुख से रहेगा और उसके बाल-बच्चे भूखों मरेंगे—क्या इसका पाप तुझे न लगेगा? क्या तू अमर है? क्या एक दिन तुझे दुनिया से राम राम न करनी पड़ेगी? तू इस पाप के फल से घोर रौरव नरक में जायगा। यमदूत तुझे भाँति भाँति की यन्त्रणा देंगे।

धनीराम कुछ देर तक नीचा सिर किये खड़ा रहा। फिर सिर उठाकर बोला—हजूर, जो होने को था वह तो हो ही गया। अब क्या करने की आज्ञा होती है?

धर्मपालसिंह—कल अदालत में सब सच सच कह देना।

"बाबू, साँच मे आँच क्या है—परन्तु दारोग़ा ने कहा है, ऐसा करोगे तो तुम्हीं बाँधे जाओगे।"

धर्मपालसिंह—यह हो सकता है।

"तो मैं सच कैसे कहूँगा? जान बूझ कर आपही अपने पैर पर कुल्हाड़ी कैसे चलाऊँगा?"

गोपीकान्त बोल उठे—चुप रह पाजी! अपने जेल जाने का इतना डर, और एक निरपराधी को जेल भेजना चाहता है! झूठ इजहार देगा तो मैं तुझे बरबाद कर दूँगा। अपने इलाके से निकाल दूँगा।

धर्मपालसिंह ने कहा—ठहरिए, ठहरिए। क्रोध मत

कीजिए। अगर यह झूठी गवाही दगा दी तो क्या बच जायगा ? सुनो धनीराम, जो मैं कहता हूँ उसे अच्छी तरह विचार कर देखो। धोखा देकर हम लोग तुझे फँसाना नहीं चाहते। अगर यही हमारा उद्देश्य होता तो कह देते—'नहीं, तुझको जेल क्या होगा—तुझे कुछ न होगा।' परन्तु यह तो हम कहते नहीं। सच बात कह देने से, झूठी नालिश करने के अपराध में, तुझे बहुत कम सजा मिलेगी। यदि झूठी गवाही देगा तो क्या तू इनसे बच जायगा ? आजमगढ़ के जितने बड़े बड़े वकील हैं, सब को हम ने हरिदास की तरफ कर दिया है। वे लोग जब तुझ से जिरह करने लगेंगे तब तू अपने बाप तक का नाम भूल जायगा, समझ रख। जिरह में तेरे चिथड़े चिथड़े उड़ जायँगे, तेरी झूठी बात कब तक टिकेगी ? वकील लोग गवाहों के पेट में पैठ कर सच्ची बात बाहर कर लेते हैं। बड़े बड़े विद्वान् और चालाक लोग भी जिरह के चक्कर में पड़ कर घबरा जाते हैं, तू तो मूर्ख गँवार ग्वाला है। फल यही होगा—मुकद्दमा झूठा प्रमाणित हो जायगा। हरिदास रिहाई पावेगा, उलटे तुम्हीं पर झूठी नालिश करने और झूठा इजहार देने का मुकद्दमा चलेगा। तेरे पास कितने रुपये हैं ? उस समय तू वकील मुख़्तारों को क्या देगा ? देकर भी नहीं बच सकेगा।

धनीराम ने सोच कर देखा, बाबू का कहना बेजा नहीं है। अगर मुझ पर मुकद्दमा चले तो एक वकील की फीस देने ही में मेरे हल-बैल बिक जायँगे।

धनीराम बहुत डर कर बोला—तो मुझे कितने दिन के लिए जेल होगा ?

धर्मपालसिंह—तुम्हारा मुक़द्दमा झूठा साबित हो जाने पर, झूठी नालिश करने के लिए, कम से कम एक वर्ष और झूठी गवाही देने के लिए एक वर्ष कुल दो वर्ष के लिए जेल होगा।

"अगर मैं सच बात कह दूँ तो ?"

"अगर सच कहेगा तो हाकिम जरूर ही रहम करेगा। जब हाकिम सब बाते सुनेगा तब वह समझेगा—तू ने अपराध किया है सही, किन्तु दूसरे के दबाव में पड कर। इसलिए महीने दो महीने या बहुत हुआ तो तीन महीने के लिए जेल होगा। इससे ज्यादा नहीं।"

"अगर मुझे तीन महीने कैद की सजा हुई तो इतने दिनों तक मेरे बाल-बच्चे क्या खायँगे ?"

गोपी बाबू—सुन धनीराम, अगर सब बात सच सच कहने से तुझको जेल होगा तो जितने दिन तू क़ैदखाने में रहेगा उतने दिन तक मैं तेरे बाल-बच्चों के खाने पीने के लिए २५ रुपया माहवार दिया करूँगा। और तेरी खेती बाड़ी का सब इन्तजाम भी करा दूँगा। इसके अलावा इस साल का हाल बकाया सब लगान माफ़ कर दूँगा। अगर इजलास पर झूठ बोलेगा तो मेरे इलाके में नहीं रह सकेगा।

धनीराम कुछ देर तक चुप खड़ा रहा, फिर बोला—जब मुझ पर मुक़द्दमा चलेगा तब मैं वकील को फीस कहाँ से दूँगा।

"अच्छा वह भी हमीं दे देंगे। अब कहो, सच सच बोलोगे या नहीं?"

"हुजूर का हुक्म मैंने कभी टाला है? जो आज्ञा होगी वही करूँगा। आप ही मेरे मा-बाप हैं। मैं अदालत में सब बातें सच सच कहूँगा। किन्तु दास की एक प्रार्थना है।"

"क्या?"

"मेरे कैद होने पर हजूर ने जो २५) रु० मासिक मेरे बाल-बच्चों के खाने पीने के लिए देने की आज्ञा की है वह रुपया जेल से आने पर मुझे ही दिया जाय। घर में जो धान चावल है उससे किसी तरह बाल बच्चों की गुजर हो ही जायगी। रुपया अगर मेरी घरवाली के पास पहुँच जायगा तो वह तुरन्त सुनार को बुला कर गहना गढ़ाने को देदेगी। मुझे कौड़ी भी न मिलेगी। इससे बेहतर होगा कि कैद से छूट आने पर मैं हजूर से रुपया लेकर एक जोड़ी बैल खरीदूँगा। मेरी स्त्री बड़ी बद जात है, उसके हाथ में रुपया न दीजिएगा।"

यह सुनकर धर्मपाल बाबू के होठों पर हँसी आगई। गोपीकान्त ने कहा—अच्छा यही होगा।

धनीराम रात को वहीं रहा।

दूसरे दिन अदालत में हाज़िर होकर धनीराम ने आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त सच सच कह दिया। पुलिस की तरफ

से कोर्ट इस्पेक्टर जिरह करने उठे। गत रात्रि में उसे गोपी बाबू ने बुला भेजा था, तथा गोपीकान्त और धर्मपालसिंह के साथ उसकी जो बातचीत हुई थी, उसको जिरह में धनीराम ने स्वीकार कर लिया। इससे उसकी बात पर हाकिम को दृढ विश्वास होगया।

हाकिम ने हरिदास के वकील से पूछा—यह रौनकलाल, अभियुक्त को फँसाने के लिए, इतनी चेष्टा क्यो कर रहा है?

तब वकील ने धर्मपालसिंह के मुँह से जो सुना था, सब कह दिया।

हाकिम ने अब दारोगा का इजहार लिया। उसके बयान से जाहिर हुआ कि जिस घर में पयाल के नीचे से बर्तन निकले थे उस घर की एक दीवार टूटी हुई है—बाहर से आदमी सहज ही उस राह से भीतर घुस सकता है।

और किसी की गवाही बिना लियेही डिपटी ने हरिदास को उसी घडी छोड दिया। वकील से कहा—धर्मपाल बाबू कहाँ हैं? उनकी गवाही लेकर धनीराम और रौनकलाल के ऊपर २११ दफा के अनुसार मुकद्दमा चलाया जाय।

बाबू धर्मपालसिंह खडे हुए। उन्होंने हलफ लेकर रौनकलाल और हरिदास के सम्बन्ध की सारी घटना वर्णन की। तब हाकिम ने दोनों के विरुद्ध कार्रवाई करके धनीराम को हाजत में रक्खा और रौनकलाल के नाम गिरफ्तारी का हुक्म जारी किया।

कचहरी से बाहर आकर हरिदास ने धर्मपालसिंह और गोपीकान्त बाबू के पैरों की धूल सिर में लगा कर कहा—आपही की कृपा से आज मेरा पुनर्जन्म हुआ है। आप न होते तो आज मेरी क्या दुर्दशा न हो जाती।

सब लोग कहने लगे—देखो, कलिकाल में भी धर्म ही की जय हुई।

बड़ी खुशी से दोनों व्यक्ति बातचीत करते करते महेन्द्र-सिंह के घर की ओर चले। हरिदास भी उनके पीछे पीछे चला। गोपी बाबू धर्मपालसिंह को साथ ले उसी रात कमल-पुर को रवाना हुए। वहाँ एक दिन रह कर दोनो फिर प्रयाग जायँगे।

किन्तु कमलपुर पहुँच कर प्रयाग की व्यवस्था बदल गई। गोपी बाबू के पास प्रयाग से एक चिट्ठी आई है। मनोरमा ने लिखी है। पत्र यह है—

प्राणनाथ,

प्रणाम। आज सबेरे छोटे बाबू को आप का पत्र मिला। आप कुशल-पूर्वक आजमगढ़ पहुँच गये, यह सुन कर हम अत्यन्त प्रसन्न हुई।

आज आपको एक शुभ संवाद सुनाती हूँ। कहिए, इसके लिए मुझे क्या इनाम मिलेगा? आपके भाई को मैंने ब्याह कराने के लिए राजी किया है। जिस दिन आप गये

उस दिन रामेश्वर बाबू के घर की स्त्रियाँ मुझसे मिलने आई थीं, यह आप देख ही गये हैं। कल मैं और धर्मपाल बाबू की दुलहिन उनके घर गई थी। रामेश्वर बाबू की व्याहने योग्य एक सुन्दरी लडकी है। उनकी स्त्री ने बड़े आग्रह से विनती करके मुझसे कहा—इस लडकी का व्याह तुम अपने देवर से करा दो। मैंने कहा—जो ऐसा होता तो बडा अच्छा होता, किन्तु मेरे देवर व्याह नहीं करना चाहते, यही अडचन है। रामेश्वर बाबू की गृहिणी के बहुत जिद करने पर मैं वादा कर आई कि उन्हें फिर समझाने-बुझाने की कोशिश करूँगी। साँझ को छोटे बाबू से इसकी चर्चा चलाई। अनेक तर्क वितर्क, अनुनय-विनय के पश्चात् छोटे बाबू ने कहा—"अगर तुम सब मेरा व्याह करना ही चाहती हो तो यहाँ नहीं, मैं एक दूसरी जगह व्याह कर सकता हूँ।" मैंने पूछा—"कहाँ? उस जगह का नाम भी तो सुनूँ?" छोटे बाबू ने कहा—"आजमगढ के नजदीक मदनपुर गाँव है। बलदेव बाबू वहाँ के जमींदार हैं। वे पहले डिपटी मैजिस्ट्रेट थे। अब पेंशन लेकर अपनी जमींदारी का काम देखते हैं। उनके एक लडकी है। नाम है कनकलता। लोग उसे सुधा कहते हैं। उस लडकी के साथ मैं व्याह कर सकता हूँ।" मैंने कहा—"लडकी वाले की राय हो तब तो।" छोटे बाबू ने कहा—दिवाली के बाद दो सप्ताह तक मैं उनके घर पर ठहरा था। सुधा का भाई नारायणप्रसाद मेरा सहपाठी और हार्दिक मित्र है। उस समय सुधा की माँ ने

मेरे साथ सुधा के विवाह का प्रस्ताव भी किया था, किन्तु मैं राजी न हुआ।

लडकी बडी सुन्दरी और सुशीला है। इसलिए मैं चाहती हूँ कि यहाँ लौटने के पहलेही आप मदनपुर जाकर लडकी को देखले और व्याह की बात पक्की कर आवे। हो सके तो धर्मपाल बाबू को भी साथ लेते जाइए। व्याह का मुहूर्त्त समीप ही स्थिर कर लीजिएगा। क्योंकि विलम्ब होने से छोटे बाबू का मत फिर वदल जाय तो बडी मुश्किल होगी।

हम सब कुशल पूर्वक हैं। धर्मपाल बाबू की स्त्री और बाल बच्चे भी अच्छी तरह हैं। आप यहाँ कब तक लौटेंगे? लिखिएगा। लडकी को देख आने में विलम्ब न होना ही अच्छा है। माघ महीने में यदि व्याह का मुहूर्त्त अच्छा हो तो स्थिर कर आइएगा।

सेविका—मनोरमा।

पत्र पढ कर गोपीकान्त का चेहरा खुशी से खिल उठा। वे आनन्द से उल्लसित स्वर में बोले—महाशय, आज तो हम लोगों का जाना रुक गया।

"क्यों?"

"यह देखो"—कह कर गोपीकान्त ने मनोरमा की चिट्ठी धर्मपाल बाबू के हाथ में दे दी।

चिट्ठी पढ़ कर धर्मपालसिंह ने प्रसन्न हो करके कहा—

अच्छा तो मैं भी आपके साथ चलूँगा । कल सबेरे ही हम लोग यहाँ से रवाना हो जायँ ।

घोड़ा-गाड़ी ठीक करने के लिए उसी समय सिपाही दौड़ा दिया गया । दूसरे दिन यथा-समय दोनों मदनपुर पहुँच गये । बलदेव बाबू ने इनका बड़ा आदर-सत्कार किया । कन्या को देख कर गोपीकान्त बड़े प्रसन्न हुए । व्याह का दिन माघ सदी ६ स्थिर हुआ ।

बावनवाँ परिच्छेद

ज्योंही धनीराम के गवाह देवीपुर पहुँचे त्योंही सब बात जाहिर हो गई। रौनकलाल के पास भी यह खबर पहुँची। सुनते ही उसके होश उड गये। कलेजा धडकने लगा। झट अपना रुपया पैसा ले कर वह घोडे पर सवार हो थाने की ओर लपका।

आधे रास्ते में जाकर रौनक ने सोचा—मैं यह क्या कर रहा हूँ। वारट तो दारोगा ही के पास आवेगा। इतनी देर में आ भी गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। थाने में पहुँचते ही दारोगा मुझे गिरफ़ार कर लेगा। २११ दफा के मुक़द्दमे मे जमानत भी नहीं है। मुझे बाँध कर कल आजमगढ में मैजिस्ट्रेट के पास भेज देगा। अगर मैजिस्ट्रेट वहाँ जमानत पर छोट देने का हुक्म भी देगा तो मेरा जामिन कौन होगा? मैं खुद आजमगढ जाकर वकील से जमानत की दरखास्त लिखा करके अदालत में हाजिर हो जाऊँ तो अच्छा है। अगर कोई जामिन होना क़बूल न करेगा तो ज़मानत का नक़द रुपया जमा कर दूँगा। अगर जमानत का रुपया बहुत माँगा जाय तो? पाँच सौ या हजार? इतना रुपया तो साथ नहीं है। जाता हूँ कमलपुर। वहाँ घर में जो रुपया गाड कर रख आया हूँ वह भी साथ लेता जाऊँ।

इस तरह सोच विचार कर रौनकलाल ने घोड़े को लौटाकर कमलपुर की ओर चलाया। घोड़े को अपने मन से धीरे धीरे चलने दिया, क्योंकि पहर रात के पूर्व कमलपुर में प्रवेश करना उसे स्वीकृत न था।

कुछ दूर जाकर उसने फिर सोचा, अगर पुलिस वारट लेकर मुझे गिरफ़ार करने के लिए देवीपुर जाय और मुझे वहाँ न पाकर कमलपुर आवे तो? तब तो घर से बाहर होते ही मैं रुपये-पैसे समेत पकड़ा जाऊँगा। इससे बेहतर होगा कि कुछ अँधेरा होते ही मैं कमलपुर पहुँचूँ और रुपया-पैसा लेकर रातो रात वहाँ से निकल भागूँ।—इसलिए उसने घोड़े को फिर दौड़ाया।

रात के आठ बजे हैं। सोने के कमरे के ईशान कोण में रौनकलाल का जो अन्याय से उपार्जित द्रव्य गड़ा हुआ था उसे वह खोद कर निकालने लगा। दरवाजे में भीतर से साँकल लगी हुई थी। बाहर से कोई किवाड़ खटखटाने लगा।

रौनक ने पूछा—कौन है?

"किवाड़ खोलो।" रौनक ने बसन्ती का कण्ठस्वर पहचान लिया। झटपट बिछौने से उस खोदी हुई जगह को ढककर द्वार के पास गया। कहने लगा—बसन्तो, अभी जाओ।

"क्यों जाऊँ?"

"आज मेरी तबीयत अच्छी नहीं है। कल आना।"

बसन्ती स्वर बिगाड़ कर बोली—हाँ हाँ, बातें बनाना खूब जानते हो। कल आना। भले आदमी की तरह किवाड़ खोलो, नहीं तो मैं अभी शोर-गुल मचाऊँगी—लोगों को पुकारूँगी। मुझे तुम्हारी सब करतूत मालूम हो गई। जल्द किवाड़ खोलो।

रौनक़ ने देखा कि नहीं खोलता हूँ तो बसन्ती अभी बखेड़ा खड़ा करेगी। इसलिए हाथ में लालटेन ले किवाड़ खोल कर बाहर निकलना चाहा किन्तु बसन्ती उसे ठेल कर भीतर ले गई। बिछौने के पास जाकर बोली—यह क्या है?

"है क्या, बिछौना है।"

"क्या खोद रहे थे?"

"खोदूँगा क्या?"

"नहीं, कुछ नहीं खोदते थे। जैसे मैं कुछ जानती ही नहीं। मैं किवाड़ के छेद से सब देख रही थी।"—कहकर बसन्ती ने ज़ोर से बिछौने को खींच कर अलग फेंक दिया। भीतर से एक मिट्टी का बर्तन निकला जिसका मुँह ढकने से बन्द था। "रौनक़, यह क्या है। यह क्या है" कहते कहते बसन्ती ने हाँडी के मुँह का ढकन हटा डाला। रुपये और नोटों से हाँड़ी भरी हुई थी।

बसन्ती ने खड़ी होकर कहा—मेरा ढाई सौ रुपया गिन कर दे दो। तुम्हारे मन्त्र से कुछ बढ़ा हो तो वह भी दे दो।

"तुम्हारा रुपया तो बक्स में है।"

"होगा, इससे क्या । वह रुपया तुम्हीं ले लेना । मुझे इसी में से दे दो ।"

तब रैनक ने गिडगिडाकर स्निग्ध स्वर मे कहा—यह रुपया कैसे दे दूँ ?—यह तो सरकारी रुपया है । यह रुपया अभी ले जाकर खजाञ्ची के पास जमा करना है । तुम्हारा वह बक्स तो देवीपुर में है । अगर कहो तो कल मँगवा दूँ । अपना रुपया ले लेना ।

बसन्ती—चलो रहने दो यह चालाकी । कल ये मुझको रुपया मँगा देंगे, जैसे मुझे मालूम ही न हो कि तुम्हारे नाम से वारण्ट जारी हुआ है । तुम रुपया-पैसा लेकर भागने के लिए आये हो । बाबू लोग आपस में बात चीत कर रहे थे कि वारट का नाम सुन कर रैनक कहीं फरार न हो जाय । मैंने यह बात किवाड की आड में खडी होकर सुन ली थी। तब मेरे मन में चेत हुआ कि अरे दादा, उसके भागने के पहले ही अपना रुपया-पैसा उससे ले आना चाहिए । मैं तुम्हारे आने के इन्तजार में यहीं छिपी बैठी थी । जब तुमने अन्दर जाकर भीतर से सदर-दरवाजा बन्द कर दिया तभी मैं यहाँ फौरन पहुँच गई और लोहे की काँटी से धीरे धीरे साँकल खोलकर दबे पैरों आँगन में आई। किवाड के छेद से झाँक कर देखा तो तुम अपने शयन-गृह का द्वार बन्द कर खुरपी से मिट्टी खोद रहे हो, तब मेरे कान खडे हुए । "अब जहन्नुम में जहाँ जाना हो, जाओ । मेरा ढाई सौ रुपया दिये जाओ । अभी दो—नहीं तो मैं अभी

दौड़ो दौड़ो, खून किया रे, मार डाला रे" कह कर इतने ज़ोर से चिल्लाऊँगी कि मुहल्ले भर के लोग दौड़ आवेंगे, नहीं तो चुपचाप रुपया गिन दो।

रौनक़ ने देखा, रुपया देने के सिवा और कोई उपाय नहीं है। इस पाप को झटपट विदा न करे तो भागने में भी विलम्ब होगा। इसलिए रौनक़ रुपया गिन गिन कर बसन्ती के आँचल में देने लगा।

बसन्ती—नोट के बदले में नोट ही लूँगी।

रौनक़ ने अनुनय के स्वर में कहा—कुल रुपये ही लेलो। नोट लेकर भागने में मुझे सुभीता होगा। रुपये का भारी बोझ मैं कहाँ लिये फिरूँगा।

"अच्छा, रुपया ही दो।"

रौनक़ ने बसन्ती को २५०) रु० देकर कहा—यह लो, ढाई सौ हो गया। अब इसे लेकर चुपचाप चली जाओ। अगर अभी पुलिस आ जाय तो मुझे भी पकड़ेगी और तुझे भी।

"अच्छा, मैं जाती हूँ परन्तु तुम खूब सावधानी से भागना जिसमें पकड़े न जाओ।" कह कर बसन्ती चली गई।

रौनक़ ने सोचा—अब क्या करना चाहिए। आजमगढ़ जाकर हाज़िर हो जाऊँ या भाग जाऊँ? पकड़े जाने पर दो वर्ष से तो कम क़ैद की सज़ा न होगी। इस उम्र में क्या फिर चक्की पीसनी होगी। अभी हज़ार रुपये मेरे हाथ में

हैं। यह रकम लेकर गयाजी, काशी, मथुरा, वृन्दावन या और
ही किसी तीर्थ में जा रहूँगा और नाम बदलकर कोई दूकान
खोल दूँगा। यही अच्छा होगा। बुढ़ापे में अब क़ैदख़ाने के
पत्थर नहीं तोड़ सकूँगा। आश्चर्य की बात तो यह है कि यह
बात मुझे पहले नहीं सूझी थी। भाग्य से बसन्ती ने कहा। मैं
इतने लोगों को सलाह देता हूँ किन्तु अपनी बेर बुद्धि छूमन्तर
हो गई थी। बसन्ती बड़े मौके पर आई। बसन्ती, मैं तुम्हारा
यह गुण कभी न भूलूँगा।

रुपये-पैसे को अच्छी तरह कमर में बाँध कर रौनक़ ने घोड़े
को वहीं बँधा छोड़ दिया और आप अँधेरे में ग़ायब होगया।
पुलिस ने अब तक उसका पता नहीं पाया।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

यथासमय धनीराम का मुक़दमा पेश हुआ। सब बातों की
भली भाँति विवेचना करके दयालु हाकिम ने उसे छ: सप्ताह की
की आज्ञा दी।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

माघ महीने में, शुभ मुहूर्त में, कनकलता के साथ मोती-
लाल का ब्याह होगया। इस विवाहोत्सव के उपलक्ष्य में बल-
बानू के घर अनेक सम्बन्धियों और मित्रों का समागम हुआ
था। कौतुकागार (कोहबर) में सुहागिन युवतियों ने आधी
रात तक मङ्गलगीत गा कर मोतीलाल का मनोरञ्जन किया

फिर सुधा की एक सहचरी उठकर ग्रामोफोन ले आई। जिन रेकार्डों में सुधा के गाये हुए गीत भरे थे उन्हें क्रमशः ग्रामोफोन के द्वारा गवा कर सबको सुना दिया। प्रत्येक गीत के अन्त में "मेरा नाम सुधा" यह सुन कर सुधा मारे लज्जा के सिमट जाती थी। सुधा का मधुर गान सुन कर सभी लोग आनन्दस्रोत में डुबकियाँ लेने लगे। रमणियों के इस विनोद भरे कौतुक से मोतीलाल के मन में जो आनन्द हुआ उसका वर्णन नहीं हो सकता।

———